प्रारम्भिक नागरिक शास्त्र

पहला भाग

(नागरिक शास्त्र के सिद्धान्त)

लेखक

आनन्द प्रकाश पी० ई० एस० (रिटायर्ड)

भूतपूर्व स्पेशल ऑफिसर इन पोस्टवार एजुकेशनल स्कीम्ज़

पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त

तथा

सत्य प्रकाश एम० ए० बी० टी०

लेक्चरर इन् सिविक्स

डी० ए० वी० हायर सेकेन्डरी स्कूल नई दिल्ली

संशोधित तथा परिवर्द्धित संस्करण

यंग मैन एण्ड कम्पनी

पुस्तक प्रकाशक दिल्ली ६

द्वितीयावृत्ति

मूल्य ३)

विषय-सूची

—०—

भूमिका

१. वर्तमान युग प्रजातन्त्रात्मक है। म्युनिसिपल कमेटी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभायें और केन्द्रीय संसद् के सदस्य साधारण जनता द्वारा निर्वाचित महानुभाव व्यक्ति होते हैं। यदि साधारण जनता पारिवारिक, समाजिक तथा राजनैतिक जीवन के नियमों से परिचित हो, राजशासन में अपने उत्तरदायित्व का अनुभव करे, अपने वोट के महत्व को समझे, और केवल सदाचारी, निःस्वार्थी और योग्य व्यक्तियों को भिन्न २ संस्थाओं के सदस्य बनने के लिए निर्वाचित करे, तो देश में सुख और शान्ति का राज्य हो और यहां की आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक उन्नति हो इस कारण देश की साधारण जनता में नागरिक ज्ञान का संचार आवश्यक है और बालकों और नवयुवकों के लिए तो अनिवार्य है। जो बालक और नवयुवक आज स्कूलों और कालिजों में शिक्षा पा रहे हैं, कल वे सुशिक्षित हो कर देश के राजशासन की बागडोर सम्भालेंगे।

२. यह प्रारम्भिक नागरिक शास्त्र" नामक पुस्तक उत्तरी भारत के उन हाई स्कूलों और हायर सेकेन्ड्री स्कूलों के विद्यार्थियों के लिए लिखी गई है जहां नागरिक शिक्षा का प्रबन्ध है। पुस्तक लिखते समय विशेष ध्यान देहली, राजपूताना और उत्तर प्रदेश के हायर सेकेन्ड्री शिक्षा बोर्डों द्वारा नियत पाठ्यक्रम की ओर दिया गया है परन्तु पंजाब के हाई स्कूलों के पाठ्यकमको भी दृष्टि से ओझल नहीं किया गया। इस कारण सारे उत्तरी भारत के विद्यार्थी इस पुस्तक से लाभ उठा सकेंगे।

३. अब भारत स्वतन्त्र है, और उसका अपना संविधान बन चुका है, परन्तु देश के राजशासन पर परतन्त्र भारत में प्रचलित राजनैतिक रीतियों का प्रभाव विद्यमान है। स्कूलों के पाठ्यक्रम की अवस्था भी

ऐसी ही है । इन विचित्र परिस्थितियों में देश के शासन सम्बन्धी विधियों और संस्थाओं का वर्णन सुगम नहीं। परन्तु प्रयत्न किया गया है, कि देश की शासन प्रणाली समझने में विद्यार्थियों को किसी प्रकार की कठिनाई न हो

४. पुस्तक दो भागों में है । पहले भाग में नागरिक शास्त्र के सिद्धान्तों की व्यवस्था की गई है । इस के अतिरिक्त राष्ट्रवाद, साम्राज्यवाद और अन्तर्राष्ट्रवाद के उद्देश्यों, गुणों और हानियों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है । अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री सम्बन्धों को उन्नत करने और विश्व सुख और शान्ति के साधनों के सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) के उद्देश्यों और कार्यक्रम का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है । दूसरे भाग में भारत के नागरिक जीवन से सम्बन्धित आर्थिक और भौगोलिक तथा सामाजिक तत्वों और देश के शासन प्रबन्ध का वर्णन है । इस भाग में देश में शासन प्रबन्ध के विकास और नूतन संविधान और स्वतन्त्र भारतीय राजशासन की व्याख्या सरल ढंग से की गई है ।

५. पुस्तक का नाम प्रारम्भिक नागरिक शास्त्र है, और वास्तव में इस में नागरिक शास्त्र का केवल प्रारम्भिक परिचय कराया गया है । इस पुस्तक में समग्र नागरिक शास्त्र का ज्ञान देने की प्रत्युचित नहीं की गई, अपितु यह विद्यार्थियों की अध्ययन पुस्तक (text-book) है और इस के लिखने की विधि भी ऐसी ही है । लेखन शैली सरल रखी गई है, और विषयक्रम स्वाभाविक है । फिर भी शास्त्र के विभिन्न सिद्धान्तों और विषयों की व्याख्या और समालोचना पर्याप्त विचार से की गई है । आशा की जाती है कि अध्यापक और छात्र दोनों इस पुस्तक को लाभप्रद पाएंगे और इस से पूरा लाभ उठाएं ।

—लेखक

पहला अध्याय

नागरिक शास्त्र का परिचय

१. मानव जीवन की समस्याएं
(Problems of Human Life)

१—मनुष्य जीवन के विकास और उन्नति के विचार से बीसवीं शताब्दी अधिक महत्व-पूर्ण है। इस शताब्दी में मनुष्य ने जीवन की हर एक दिशा में पर्याप्त उन्नति की है और उसकी सभ्यता भी उन्नति के ऊंचे शिखर पर पहुँच गई है। मनुष्य ने जल, वायु, भाप, बिजली, आदि प्राकृतिक शक्तियों (powers of nature) को बड़ी सीमा तक अपने आधीन कर लिया है। वह जल में राजहंसों के समान तैरता है, हवाई जहाज में बैठ कर पक्षियों के समान उड़ान करता है, भाप द्वारा रेलगाड़ियों और कारखानों को चला कर अपने लिए उपयोगी वस्तुएं बनाता है, बिजली से गलियां, बाजार आदि जगमग २ कर रहे हैं। इसी बिजली की शक्ति से हजारों कल कारखानों का संचालन हो रहा है और वायरलेस (wireless) के आविष्कार ने सारे संसार को उसके समीप ला रखा है और अब वह सारे संसार को अपना कुटुम्ब मानने लग गया है। मानो मनुष्य ने प्रकृति को अपनी दासी बना लिया है और उनसे हर प्रकार की सेवा ले रहा है। प्रतिदिन नये से नये आविष्कार (inventions) हो रहे हैं और मानव-जीवन की सुविधाओं में प्रतिक्षण वृद्धि हो रही है। मिलों और कारखानों के चालू हो जाने के कारण उपज (production) में कल्पनातीत वृद्धि हो गई है। साथ ही मनुष्य की आर्थिक आवश्यकताएं बढ़ गई हैं और जीवन बहुत विचित्र और जटिल (पेचीदा) हो गया है।

२—मनुष्य की आदिम अवस्था और वर्तमान अवस्था को यदि तुलना की जाए तो दोनों अवस्थाओं में हम दिन रात का अन्तर पाएंगे। आदिम अवस्था में मनुष्य का जीवन बहुत सादा था, वह वन में अपने आप उगने वाली तरकारियों, फलों और शाक पात (roots and herbs) से अपनी भूख शान्त कर लेता था, वृक्षों की छाया अथवा पर्वतों की गुफाएं (caves) उसका रम्य निवासस्थान (favourite haunt) था। उस काल में न उसका कोई घर था, न कुटुम्ब था न समाज था, न बस्तियाँ थीं और न बड़े २ नगर थे। जीवन की समस्याएं (problems भी इतनी जटिल (पेचीदा) नहीं थीं। ज्यों ज्यों सभ्यता का विकास होता गया मनुष्य का जीवन अधिक जटिल होता गया। वातावरण (environments) का प्रभाव हमारे मन पर भी पड़ता है, उससे हमारे मन में विचित्र प्रकार की इच्छाएं उत्पन्न होती हैं और इन इच्छाओं को पूरा करने के लिए हम भिन्न २ प्रकार के उपाय भी सोच लेते हैं। स्वभावतः इन विचारों तथा उपायों का परिणाम भिन्न २ शास्त्रों (sciences) और कलाओं (arts) की उत्पत्ति हुई।

३—किसी विषय का क्रम-बद्ध ज्ञान शास्त्र कहलाता है। अध्ययन की सुविधा के लिए इन शास्त्रों को दो श्रेणियों में बांटा गया है— [१] सूक्ष्म बौद्धिक तथा सैद्धान्तिक (Abstract and Theoratical) और [२] मूर्त तथा क्रियात्मक (Concrete and practical)। इसी प्रकार कलाओं को भी दो श्रेणियों में बांटा गया है—ललित कलाएं (Fine arts) और क्रियात्मक कलाएं या शिल्प (Practical arts or Industries)। मनुष्य जीवन के भी कई भाग हैं, इन भागों के सूक्ष्म अध्ययन के कारण शास्त्र की भी कई शाखाएं और उपशाखायें बन गई हैं। आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के संबंध में जो शास्त्र ज्ञान देता है, उसे अर्थशास्त्र (Economics) कहते हैं। जिस शास्त्र में राज शासन सम्बन्धी विषयों की व्याख्या

की जाती है, उसको राजनीति शास्त्र या राजनैतिक शास्त्र (Politics) कहते हैं। इसी प्रकार इतिहास (History), भूगोल (Geography), शरीर विज्ञान (Physiology), मनोविज्ञान (Psychology), वनस्पति विज्ञान (Botany), गणित (Arithmetic) तथा आचार शास्त्र (Ethics) आदि कई शास्त्र हैं, जो हमारे जीवन को सफल और सुखी बनाने मे सहायक होते हैं।

४—फ्रांस की क्रांति और अमेरिका की स्वतन्त्रता के युद्धों के अनन्तर धीरे २ पैतृक शासकों (hereditary rulers) की शक्ति सारे यूरोप और अमेरिका में कम होती गई और शासकों, राजाओं और सरदारों से छीनी हुई शक्ति साधारण जनता के हाथों में आती गई। इस प्रकार निरंकुश राज शासन (Despotism) का स्थान प्रजातान्त्रिक राज शासन (Democracy) ने ले लिया। यही कारण है कि उन्नीसवीं शताब्दी को प्रजा-तान्त्रिक युग के उदय या आरम्भ का काल मानते हैं। इस युग में साधारण जनता के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह राज शासन सम्बन्धी कार्यों, शासन के अंगों, अपने कर्तव्यों और अधिकारों और सफल जीवन के उपायों से भली-भांति परिचित (वाकिफ़) हो। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए एक नूतन शास्त्र-नागरिक शास्त्र (Civics)— का निर्माण हुआ जिसका उद्देश्य (aim) मनुष्य जीवन को सफल, सुन्दर और चतुर बनाना है और जन-साधारण (masses) को प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों (democratic theories) और रीतियों (rules) से भली भांति परिचित करना है।

२. नागरिक शास्त्र की परिभाषा

(Meaning of Civics)

१—यद्यपि इस शास्त्र का ज्ञान आधुनिक आवश्यकता को हल करने के लिये है परन्तु इसका नाम बहुत प्राचीन है। नागरिक शास्त्र अंग्रेजी शब्द (Civics) का अनुवाद है और लैटिन शब्दों सिविस

(civis) और सिविटस [civitas] से निकला है। सिविस का अर्थ नागरिक [citizen] और सिविटस का अर्थ नगर-राज्य [city-state] है। प्राचीन ग्रीस और रोम में, जो आधुनिक यूरोपीय सभ्यता के जन्मदाता माने जाते हैं, हर एक नगर एक स्वतन्त्र राज्य [free state] था और सामाजिक तथा राजकीय जीवन का केन्द्र था, जहां नगर वासियों को समाज तथा शासन सम्बन्धी सिद्धान्तों और नियमों का ज्ञान दिया जाता था। ऐसा ज्ञान नागरिक जीवन को सफल और सुखी बनाने के लिए था। इस शास्त्र का, जो समाज और राज्य के प्रति अधिकारों और कर्त्तव्यों की विवेचना करता था, नागरिक शास्त्र [Civics] नाम पड़ा।

२—आधुनिक काल में राज्यों का विस्तार नगर से बहुत बढ गया है। एक एक राज्य मे बहुत से नगर और लाखों गांव होते हैं। सिनेमा और रेडियो और समाचार पत्रों ने नगर और गांव को एक दूसरे के समीप लाकर खड़ा कर दिया है। नगर और गांव के जीवन समान हो रहे हैं और एक राज्य मे रहने वाले सभी नर नारी [चाहे वे नगर में रहते हैं या गांव में] अपने राज्य के सामाजिक वा राजनैतिक जीवन में एक जैसा भाग ले रहे हैं। दूसरे शब्दों में यों कहिए कि अब नगर वा गांव का प्रश्न नहीं, बल्कि देश वा राज्य का प्रश्न है। प्राचीन नगरों का स्थान राज्यों(states)ने ले लिया है,और प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह नगर में रहता हो वा गांव में अपने राज्य का नागरिक कहलाने का अधिकारी होगया है। इस कारण जो शास्त्र नागरिकों के व्यक्तिगत पारिवारिक सामाजिक तथा राजकीय अधिकारों तथा कर्तव्यों का ज्ञान देता है, नागरिक शास्त्र [Civics] के नाम से प्रसिद्ध है।

३. नागरिक शास्त्र का क्षेत्र
[Scope of Civics]

१—नागरिक शास्त्र मनुष्य के ज्ञान की वह शाखा है, जिसमें

मनुष्य के सारे कार्यों को एक नागरिक के रूप में बताया जाता है। नागरिक शास्त्र का क्षेत्र बड़ा फैला हुआ है और इसकी पहुँच [limits] में मानो सम्पूर्ण समाज आ जाता है। हम में से हर एक व्यक्ति का एक परिवार है जिसमें हमारे माता, पिता, भाई, बहिन आदि शामिल हैं। बहुत से लोगों की एक बिरादरी होती है, जिसमें उनके विवाह आदि सम्बन्ध होते हैं। हर एक मनुष्य किसी गांव या नगर में रहता है, जहां उसके पड़ोसियों या दूसरे लोगों से अनेक प्रकार के सम्बन्ध होते हैं। हर एक मनुष्य का किसी धार्मिक सम्प्रदाय [religion] से सम्बन्ध होता है और उसका उस सम्प्रदाय तथा अन्य सम्प्रदायों के मानने वालों से उचित व्यवहार रखना पड़ता है। इसके अतिरिक्त हर एक मनुष्य अपनी जीविका के लिए कोई न कोई व्यवसाय भी करता है। कोई वैद्य है, कोई डाक्टर है, कोई अध्यापक है, कोई किसान है और कोई दुकानदार है। हर एक मनुष्य किसी राज्य में रहता है और उसको सुविधाओं को भोगता है, कर देता है और उसके शासन विधान के नियमों [कानूनों] का पालन करता है। वास्तव में सारे मनुष्य एक दूसरे से और भिन्न २ संस्थाओं से कई प्रकार से जुड़े हुए हैं। इन सभी सम्बन्धों का अध्ययन करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य हो जाता है।

२—नागरिक शास्त्र के क्षेत्र का विषय भूत वर्तमान और भविष्य तीनों कालों पर आधारित है। प्रत्येक परिस्थिति का अध्ययन तीनों कालों के सम्बन्ध से किया जाता है। एक विषय विशेष का प्राचीन काल में क्या स्वरूप था, प्राचीन काल के अनुभव से उसके आधुनिक स्वरूप के निर्णय करने में क्या सहायता मिलती है, तथा भविष्य में उसके स्वरूप को लाभदायक रूप में रखने के लिये क्या २ उपाय सोचे जा सकते हैं? उदाहरण के लिये नगरों में स्वास्थ्य, सफाई और हरिजन उत्थान के विषय को लें और विचार करें कि आधुनिक वैज्ञानिक युग में सफाई के पुराने तरीकों.

में क्या २ परिवर्तन किए जाएं, जिससे सफाई का प्रबन्ध भी पहले से अच्छा हो जाए और हरिजनों की अवस्था को इस दर्जे तक सुधारा जाए कि छुआछूत [अस्पृश्यता] के कलंक का टीका भी भारत माता के मस्तक से दूर हो जाए।

३—नागरिक जीवन की सभी दिशाओं, शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यवसाय, धर्म, राजनीति, आदि का अध्ययन [study] केवल व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, तथा राष्ट्रीय जीवन के ही रूप *में नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय जीवन के रूप में भी आवश्यक है।* यातायात के साधनों में सुगमता और विज्ञान के वर्तमान आविष्कारों [modern inventions] के कारण सारी पृथ्वी एक कुटुम्ब के सदृश हो गई है, और भूमण्डल के सारे देशों तथा राज्यों का सामाजिक, आर्थिक और राष्ट्रीय जीवन एक दूसरे पर निर्भर हो गया है। यदि एक देश की आर्थिक तथा राष्ट्रीय संस्था में त्रुटियां आ गई हैं तो उसका सुधार दूसरे देशों की ऐसी संस्थाओं की देख रेख और तुलना से सुगमता से हो सकता है। इस विचार से प्रत्येक नागरिक विशाल मानव समाज का अङ्ग है, उसके सुख दुःख, उन्नति, अवनति का प्रभाव सारे मानव समाज पर चाहे वे उसके अपने देश में हों, चाहे अन्य देशों के वासी हों, पड़ता है। उसको अपना दृष्टिकोण अपने देश तक सीमित न रखना होगा, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय उन्नति और वैभव को ध्यान में रख कर जीवन गुजारना होगा।

४—स्पष्ट है कि नागरिक शास्त्र का क्षेत्र मनुष्यमात्र के सारे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय जीवन को ढांप (cover) लेता है और इसका अध्ययन भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों में सम्बन्ध कराता है। इस का ध्येय [object] ऐसे नागरिकों को बताना है जो अपनी नागरिकता को जागृत, जीवित और सक्रिय बनायें, जो अपने गांव की उन्नति और

सम्पन्नता (prosperity) के लिए कार्य करें, अपने प्रान्त तथा राज्य की सेवा तन मन धन से करें और मनुष्य मात्र की सर्वांगीण उन्नति में सहयोग दें। अतः नागरिक शास्त्र के क्षेत्र में नीचे लिखी हुई मुख्य बातों का समावेश हो।

[१] नागरिक की परिभाषा, उसके अधिकार और कर्तव्य,

[२] समाज की परिभाषा, उसका सङ्गठन, सामाजिक संस्थायें,

[३] समाज तथा देश का आर्थिक संगठन, और उन्नति,

[४] समाज की उन्नति के साधन और उनका प्रयोग—शिक्षा कलाकौशल आदि,

[५] राज्य [State] की परिभाषा, उसकी उत्पत्ति, और उसका संगठन,

[६] सरकार [Government) की परिभाषा, शासन विधान [Constitution], सरकार के प्रकार, राजनैतिक संस्थायें और वर्तमान शासन प्रणाली (present form of Govern ment)

४-नागरिक शास्त्र का अन्य शास्त्रों से सम्बन्ध

(Relation of Civics with other Sciences)

१—जिस प्रकार वृक्ष एक होता है, परन्तु इसकी शाखायें अनेक होती हैं, इस प्रकार जीवन [life] एक है परन्तु इसके विभिन्न अंग [aspects] हैं। हर एक अंग का ज्ञान तथा समग्र जीवन [collective life] का ज्ञान जीवन को सफल और सुखी बनाता है। इस प्रकार ज्ञान एक है और इसका विभाजन [division] नहीं हो सकता। परन्तु जीवन के विभिन्न अंगों की व्याख्या करने के कारण ज्ञान की कई शाखायें और उपशाखायें हैं और भिन्न २ शास्त्रों के नाम से प्रसिद्ध हैं। अब हम ने सोचना है कि ज्ञान के अनन्त भंडार में नागरिकशास्त्रों का स्थान क्या है। हर एक जीवन शास्त्र मानव जीवन के प्राकृतिक वातावरण [physi-

cal environment] के किसी विशेष अंग का वर्णन स्पष्टतया करता है। इस शास्त्र मे प्रगट किये हुए तथ्यों [facts] के आधार पर नागर जीवन की उन्नति और सुख के साधनों पर विचार किया जा सकता है। तर्क शास्त्र (Logic) और गणित [Arithmetic] सूक्ष्म विज्ञान [Pure Science) कहलाते हैं और वे नागरिक जीवन में विशेष सहायता नहीं देते। भौतिक विज्ञान [Physics], रसायन [Chemistery] और भूगर्भविद्या [Geology] *प्राकृतिक विज्ञान कहलाते हैं और ये प्राकृतिक* जगत के विशेष अंगों का ज्ञान देते हैं और इनका हमारे सामाजिक जीवन पर कुछ प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार वनस्पति शास्त्र (Botany) तथा जीवन शास्त्र (Zoology) में वनस्पति तथा पशु पक्षी आदि जीवधारियों के जीवन का वर्णन है और इन शास्त्रों के विचार से मनुष्य जीवन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। मनुष्य भी एक प्रकार का जीवधारी पशु है। घोड़ा, गौ आदि पशुओं को घरेलू बनाने और खेती तथा बागवानी की कलाओं के उपयोग के कारण वनस्पतियों तथा पशु-पक्षियों ने मनुष्य के खान पान, व्यवसाय तथा स्वभाव पर बड़ा भारी प्रभाव डाला है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य आवश्यक शास्त्र हैं जो सामाजिक शास्त्रों (Social Sciences) के नाम से प्रसिद्ध हैं। नागरिक शास्त्र, राजनीति, इतिहास, अर्थशास्त्र, आचार शास्त्र और समाज शास्त्र (Sociology) सामाजिक शास्त्रों में सम्मिलित हैं। इन शास्त्रों का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। नागरिक शास्त्र बहुत सीमा तक इन शास्त्रों का ऋणी है। इस कारण इन शास्त्रों से इसके सम्बन्ध का वर्णन अत्यावश्यक है।

५. राजनीति और नागरिक शास्त्र का संबंध

(Relation of Politics with Civics)

१—राजनीति में राज्य (State) तथा सरकार (Government) का अध्ययन पूर्ण रूप में होता है। इसमें राज्य की उत्पत्ति

तथा विकास का विवरण होता है। शासन, रक्षा, शान्ति, व्यवस्था, कानून आदि राजनीति के अंग हैं परन्तु प्रधानता शासन तथा शासन विधान की रहती है। किसी शासन का उसके नागरिकों पर यथेष्ट प्रभाव पड़ता है या नहीं। राजनीति बताती है कि नागरिकों को राज्य में किन परिस्थितियों में रहना पड़ता है।

२—नागरिक शास्त्र भी राजनैतिक संस्थाओं (political institutions) का अध्ययन करता है। वह राज्य में रहने वाले व्यक्ति को बताता है कि वह राज्य का आदर्श नागरिक कैसे बन सकता है। इस कार्य्य के लिए नागरिक शास्त्र राजनैतिक संस्थाओं के अध्ययन के अतिरिक्त सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक (cultural) संस्थाओं का अध्ययन भी करता है। इस प्रकार नागरिक शास्त्र का क्षेत्र राजनैतिक शास्त्र से कहीं अधिक फैला हुआ है।

३—बहुत से लोग नागरिक शास्त्र को राजनैतिक शास्त्र का एक साधारण प्रारम्भिक रूप मानते हैं। परन्तु यह उनकी भूल है। इस में कोई सन्देह नहीं कि नागरिक शास्त्र में बहुत से राजनैतिक विषयों का समावेश है। इस कारण राजनैतिक विषयों का अध्ययन नागरिक शास्त्र के अध्ययन के लिए बहुत उपयोगी है परन्तु नागरिक शास्त्र को राजनैतिक विषयों के अतिरिक्त पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक आदि संस्थाओं का अध्ययन भी करना पड़ता है। इस विचार से राजनीति नागरिक शास्त्र का अङ्ग मात्र है। यद्यपि अपने विशेष क्षेत्र में राजनैतिक शास्त्र अपने विषय के अध्ययन में गहरा जाता है, तथापि हम कह सकते हैं कि राजनैतिक शास्त्र का क्षेत्र नागरिक शास्त्र के क्षेत्र से कम फैला हुआ परन्तु अधिक गहरा है।

४—इस अन्तर के होते हुए भी दोनों शास्त्रों का आपस में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है और एक दूसरे के बड़े उपयोगी हैं। दोनों समाज के निर्माण से उत्पन्न होते हैं और दोनों के विकास का मार्ग भी एक है। नागरिक शास्त्र नागरिक को अपने कर्त्तव्यों तथा अधिकारों

से परिचित करता है और राजनैतिक शास्त्र उस पर आचरण करने का अवसर देता है। अगर किसी देश में नागरिकता की उन्नति हो और लोग अपनी सामूहिक अवस्था को उन्नत करें तो इसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि देश के शासन क्षेत्र में शांति रहेगी। दोनों शास्त्र बतलाते हैं कि मनुष्य का एक दूसरे के प्रति और समाज के प्रति क्या कर्तव्य हैं। दोनों का अन्तिम उद्देश्य अमन और शांति है। दोनों से भिन्न २ सामाजिक संस्थाओं की नींव पड़ती है। यदि किसी देश की सरकार रक्षा का प्रबन्ध भली प्रकार न करे तो नागरिक अपने कर्तव्य का पालन भली प्रकार नहीं कर सकता। जब नागरिकता की उन्नति होगी, तभी देश और जाति के अन्दर कर्तव्य परायण (dutiful) नेताओं की उत्पत्ति होगी और उनके द्वारा देश के राजशासन का संचालन भली भांति होगा।

६. अर्थ शास्त्र और नागरिक शास्त्र का सम्बन्ध
(Relation of Economics with Civics)

१—अर्थ शास्त्र का मुख्य विषय धन का उत्पादन (production), विभाजन (distribution) और व्यय (consumption) है। समाज के सफल तथा सुखी जीवन के लिए आवश्यक है कि दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक वस्तुओं को पर्याप्त मात्रा में तैयार किया जाए। इन वस्तुओं को इस प्रकार बांटा जाए कि समाज के प्रत्येक नर-नारी को आसानी से मिल सकें। इन वस्तुओं को देश के कोने २ में पहुँचाने के लिए यह जरूरी है कि यातायात के साधनों, उपयुक्त मण्डियों और लेन देन की सुविधा के लिए स्थान २ पर बैंकों का प्रबन्ध सन्तोषजनक हो। इन वस्तुओं को मोल लेने के लिये धन की आवश्यकता है। धन कमाने के साधनों का प्रबन्ध करना भी आवश्यक है, गांव के किसानों और नगर के मज़दूरों को दरिद्रता के चंगुल से छुड़ाना भी परम आवश्यक है। पूँजीपतियों (capitalists) और ज़मीदारों (landlords) ने मज़दूरों और किसानों को

निरुत्साहित और बरबाद कर रखा है। इस बरबादी को रोकना भी आवश्यक है। खेती बाड़ी के सफल उपायों का प्रयोग और सस्ती वस्तुओं की उत्पत्ति के साधनों पर विचार भी आवश्यक है। देश की इन समस्याओं को हल करने के साधन ढूंढना अर्थशास्त्र का क्षेत्र है। नागरिक शास्त्र चरित्र निर्माण (character-building) तथा देश सेवा का प्रचार और आदर्श जीवन का संचार करता है। परन्तु रोटी का प्रश्न पहिले आता है, और जब तक कोई व्यक्ति शारीरिक आवश्यकताओं और रुपये पैसे की चिन्ता से स्वतन्त्र नहीं, वह चरित्र निर्माण और आदर्श जीवन के तत्वों को समझने में असमर्थ होता है।

२—इस के अतिरिक्त नागरिक शास्त्र के कई विषय ऐसे हैं जिन का अर्थ शास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है। उदाहरण रूप में नागरिकों के अधिकारों की व्याख्या करते समय स्वभावतया प्रश्न उत्पन्न होता है कि इनको कोई आर्थिक अधिकार भी हैं या नहीं? यदि हैं तो क्या व्यक्तिगत सम्पत्ति होनी चाहिए वा नहीं? यदि होनी चाहिए तो किस रूप में? इस प्रकार राज्य को कर देना एक नागरिक का कर्तव्य है। कौन कर उपयुक्त (proper) और न्याय-संगत (just) है और कौन सा अन्याय पूर्ण। इसकी व्याख्या भी आवश्यक है। ऊपर की आलोचना से नागरिक शास्त्र को भली प्रकार अध्ययन करने के लिए अर्थ शास्त्र की उपयोगिता (utility) सिद्ध है।

३—परन्तु नागरिक शास्त्र और अर्थ शास्त्र में महत्वपूर्ण अन्तर भी है। दोनों के क्षेत्र स्पष्ट रूप से अलग २ हैं। अर्थ शास्त्र का मुख्य विषय एक निर्जीव पदार्थ अर्थात् धन है और नागरिक शास्त्र का मुख्य विषय मनुष्य और उसके सामाजिक चरित्र का निर्माण है। दूसरा अन्तर यह है कि अर्थ शास्त्र यथार्थवादी (factist) है, इस का कार्य वर्तमान आर्थिक व्यवस्था को यथार्थ रूप से निबाहना है। इसके विरुद्ध नागरिक शास्त्र आदर्शवादी (idealist) है, इस की दृष्टि सुन्दर जीवन के आदर्शों पर

लगी रहती है और यह प्रयत्न करता है कि समाज का आचार ऊंचा हो, जीवन सुखी हो और देश में रामराज्य हो।

४—यह तो हर एक भली प्रकार जानता है कि धन का जीवन से गहरा सम्बन्ध है। धन नहीं तो जीवन नहीं। समाज का पूरा ढांचा धन ही से चल रहा है। सुखी और सफल जीवन धन के ऊपर निर्भर है और नागरिक जीवन के पैर दरिद्रता की दलदल में फंसे हुए हैं। जब तक कोई नागरिक रुपये पैसे की चिन्ता से मुक्त नहीं, उस समय तक अपने कर्तव्यों का ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ है। समाज में सुख और शांति स्थापित नहीं हो सकती जब तक लोगों के पास खाने पीने का सामान न हो। समाज में संगठन नहीं हो सकता जब तक देश सम्पन्न (prosperous) न हो और लोग एक दूसरे की सहायता के लिए उद्यत न हों। सच्ची बात यह है कि धन और कर्तव्य की उत्पत्ति एक साथ हुई है, और जो शास्त्र धन का अध्ययन करे, उसका नागरिक शास्त्र पर, जो कर्तव्यों और आदर्श जीवन का प्रतीक है, बड़ा भारी ऋण है।

७. समाज शास्त्र और नागरिक शास्त्र का सम्बन्ध

(Relation of Sociology with Civics)

१—समाज शास्त्र समाज के भूत तथा वर्तमान स्वरूप की विवेचना करता है और सामाजिक संस्थाओं में प्रचलित रीति, नीति और संस्कृति का अध्ययन करता है। यह एक छायादार वृक्ष के समान विस्तृत है और इतिहास, राजनीति, आचार, अर्थ, नागरिक आदि सभी समाज सम्बन्धी शास्त्र इसके अन्तर्गत हैं। इस विचार से नागरिक शास्त्र मानो समाज शास्त्र के एक अंग के समान है। परन्तु इन दोनों में तीन बड़े अन्तर हैं। एक अन्तर यह है कि नागरिक शास्त्र मुख्यतया सामाजिक और राजनैतिक संस्थाओं के वर्तमान स्वरूप को ही अध्ययन करता है, परन्तु समाज शास्त्र उनकी

उन्नति, विकास, पूर्व इतिहास आदि सब बातों पर प्रकाश डालता है। दूसरा अन्तर यह है कि समाज शास्त्र समाज की सभी अच्छी और बुरी प्रवृत्तियों (activities) का अध्ययन करता है, परन्तु नागरिक शास्त्र अपने अध्ययन के लिए उन प्रवृत्तियों का चुनाव करता है जो समाज के हित की हैं और जिन से समाज की उन्नति और वृद्धि में सहायता मिलती है। यह शास्त्र नागरिक को इस बात के लिये तैयार करता है कि वह बुराइयों को निकाल कर भलाइयों को ही समाज में दाखिल करे। तीसरा अन्तर यह है कि समाज शास्त्र का विषय सारे संसार के देशों की संस्थाओं का अध्ययन करना है और नागरिक शास्त्र प्रायः परिवार गांव और पड़ोसियों से ही सम्बन्ध रखता है। इस में सन्देह नहीं कि मनुष्य होने के कारण इसके कर्तव्य सारे संसार के साथ सम्बन्धित हो जाते हैं। इस लिए पारिवारिक कर्तव्यों के अतिरिक्त इसके लिए राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय कर्तव्यों का पालन भी आवश्यक हो जाता है।

८. इतिहास और नागरिक शास्त्र का सम्बन्ध

[Relation of Civics with History)

१—इतिहास मानवजाति के पुराने अनुभवों का कोष है, जिस में इसको सामाजिक, आर्थिक, राष्ट्रीय तथा आध्यात्मिक विकास का समाधान होता है। इतिहास हमें बताता है कि हमारी वर्तमान अवस्था कैसे और क्यों बनी और हमारी सामाजिक उन्नति में आरम्भ से लेकर आज तक कौन २ से विघ्न आए। प्राचीन काल के अनुभव से हमारा मार्ग प्रदर्शन होता है और प्राचीन इतिहास के प्रकाश से वर्तमान काल में उपयोगी संस्थाओं का निर्माण और संगठन होता है। उदाहरण के लिए जाति प्रथा का अब तक का अनुभव हम को बतलाता है कि अमुक प्रथा किस प्रकार और किस समय तक हमारी उन्नति और अवनति का कारण बनी और नवीन

भारतवर्ष में इस संस्था का क्या स्वरूप होना चाहिए। इसी प्रकार ग्रीस, रोम, चीन, भारतवर्ष आदि देशों की बडी २ संस्थाओं का कैसे उदय हुआ और किस प्रकार इतने समय के उपरान्त उनकी अवनति हुई। इतिहास में अवनति के कारणों के पढने तथा शासकवर्ग की विलास प्रियता, स्वार्थान्धता, प्रजा पर *अत्याचार अथवा युद्धों की अधिकता के वर्णन पढने से* निरंकुश शासन (despotism) के दोष सामने आ जाते हैं। जिस प्रकार दूध को मथ कर मक्खन निकाला जाता है उसी प्रकार इतिहास की घटनाओं के अध्ययन से नागरिक शास्त्र के बहुत से नियम बनाए जाते हैं। इस लिए यह कहना ठीक होगा कि इतिहास नागरिक शास्त्र की प्रयोगशाला (laboratory) है। किसी देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दशा को समझने के लिये उस देश के इतिहास को जानना बहुत आवश्यक है। इतिहास ही तो एक ऐसा वातावरण है जिस में उस देश की भिन्न २ संस्थाओं की उत्पत्ति और पुष्टि होती है।

अंग्रेजी राज्य तथा इण्डियन नेशनल कांग्रेस का इतिहास पढ़े बिना हम देश की वर्तमान शासन पद्धति (राज्य करने के ढंग) को कैसे समझ सकते हैं। हमारी वर्तमान अवस्था हमारे भूतकालीन कर्मों का फल है और इसी में हमारे भविष्य का बीज भी छुपा हुआ है। इसलिए अच्छा नागरिक बनाने के लिए अपने नेताओं के महान कार्यों का अध्ययन अति आवश्यक है

२—इसमें सन्देह नहीं कि इतिहास और नागरिक शास्त्र का घनिष्ठ सम्बन्ध है और नागरिक शास्त्र को इतिहास से बड़ी सहायता मिलती है, परन्तु यह न समझ लेना चाहिए कि यह दोनों शास्त्र एक ही हैं। इन दोनों शास्त्रों में बड़ा भारी अन्तर है। इतिहास मुख्यतया वर्णनात्मक (narrative) है

और इनमें अच्छी और बुरी घटनाएं वर्णन की हुई होती हैं परन्तु नागरिक शास्त्र विचारात्मक (reflective) है और ऐतिहासिक घटनाओं के मथन से अच्छे नागरिक बनने के नियमों का निर्माण होता है। दूसरा अन्तर यह है कि इतिहास का क्षेत्र नागरिक के क्षेत्र से अधिक विस्तृत है और इस मे घटनाओं का यथार्थ वर्णन होता है, परन्तु नागरिक शास्त्र आदर्शवादी है और एक विशेष आदर्श को सामने रखकर भिन्न २ घटनाओं तथा संस्थाओं का अध्ययन करता है।

६. आचार शास्त्र और नागरिक शास्त्र का सम्बन्ध
(Relation of Civics with Ethics)

१—आचार शास्त्र का मुख्य उद्देश्य अच्छे और बुरे कार्यों का स्वरूप निश्चय कराना और उनमें भेद कराना है। दूसरे शब्दों मे आचार शास्त्र अच्छे कर्मों का वा सत्याचरण का आदर्श हमारे सामने उपस्थित करता है और बतलाता है कि मानव जीवन का परम उद्देश्य क्या है। हमारे कार्य सर्वदा व्यक्ति तथा समाज को भलाई के अनुकूल नहीं होते, इस कारण आचार-शास्त्र अच्छे और बुरे कार्यों का अन्तर दिखाकर सुन्दर जीवन व्यतीत करने का उत्साह बढ़ाता है। आचार शास्त्र मे इस बात पर जोर दिया जाता है कि दूसरे लोगो से दयानतदारी, नम्रता, सचाई और सहानुभूति से व्यवहार करें। ऐसा व्यवहार हमारे आचार को ऊंचा करना है, हमारी आत्मा को शुद्ध करता है और हमारे अन्दर दैवी शक्ति का विकास करना है। जिस समाज का निर्माण ऐसी उच्च भावनाओं, विचारो तथा कर्मों वाले व्यक्ति से हुआ हो, वह समाज सुखी, शांत और सुन्दर जीवन बिताता है। इसलिए आचार शास्त्र अच्छे शहरी बनाने में नागरिक शास्त्र की बड़ी भारी सेवा करता है।

२—आचार शास्त्र किसी कार्य्य के परिणाम (effect) की अपेक्षा इसकी भावना (motive) की ओर अधिक ध्यान देता

है। किसी कार्य्य का परिणाम कुछ ही क्यों न निकले यदि उस कार्य्य के करने की भावना अच्छी है तो कार्य्य अच्छा गिना जाता है। परन्तु नागरिक शास्त्र मे भावना की अपेक्षा परिणाम को अधिक महत्व दिया जाता है। यदि किसी कार्य्य का परिणाम अच्छा निकल पडे तो उसकी भावना निकृष्ट होने की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। परन्तु भावना और परिणाम को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। इनका परस्पर अटूट सम्बन्ध है, इसलिए आचार-शास्त्र और नागरिक शास्त्र एक दूसरे से सम्बन्धित हैं।

२--स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि देश सेवा में झूठ बोलना, धोखा देना, हत्या करना उचित है वा अनुचित ? कुछ लोगों का विचार है कि देश सेवा में झूठ, धोखा, हत्या, आदि कर्म घृणित (contemptible) नहीं हैं। इटली के देशभक्त तथा नीतिज्ञ कैवूर (Cavour) ने अपने एक मित्र को लिखा कि जो २ कर्म हमने देश के लिये किये हैं, यदि वे कर्म हम अपने स्वार्थ के लिए करते तो जगत मे हमें सबसे बडा दुष्ट माना जाता। इस कथन का अभिप्राय यह है कि हिंसा, झूठ, छल, व्यक्तिगत जीवन में अनुचित कार्य्य हैं परन्तु देश सेवा के सम्बन्ध में ये कार्य क्षम्य (pardonable) हैं। इसके विपरीत प्राचीन ग्रीस के ऋषि अरस्तु का कहना है कि अच्छे मनुष्य और अच्छे नागरिक में कोई भेद नहीं। अर्थात् जिस सदाचार और शिष्टाचार के पालन से एक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवन को उच्च बनाता है, राष्ट्र सेवा के लिए एक अच्छे नागरिक को भी उनका परित्याग नहीं करना चाहिए। भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने देश स्वतंत्रता का युद्ध सत्य और अहिंसा के शस्त्रों से लड़ा और भारत के आचार और महत्व को उज्वल किया। महात्मा जी के विचार अनुसार ध्येय (end) और साधन (means) दोनों पवित्र हों और किसी ध्येय की प्राप्ति में सत्य को कदाचित नहीं छोड़ना चाहिये। नागरिक शास्त्र सफल जीवन का वकील है,

और सफल जीवन की व्याख्या के लिए आचार शास्त्र की सहायता लेना अति आवश्यक है

१०. नागरिक शास्त्र विज्ञान और कला दोनों है।
(Civics is both Science and Art)

१—नागरिक शास्त्र का आधार इतिहास, राजनीति, आचार, अर्थ, समाज आदि शास्त्र हैं। इन सब से थोड़ी २ सामग्री लेकर इसका निर्माण होता है। भिन्न २ कालों में जो २ सामाजिक संस्थाएं और व्यवस्थाएं पाई जाती हैं, उन सब के निरीक्षण (observation) और तुलना (comparison) से नागरिकता के सिद्धांत और नियम निश्चित किए जाते हैं। जीवन का कोई भाग नहीं जहां इसकी पहुँच न हो। सुखी, सभ्य और सुन्दर जीवन की कोई सीमा नहीं। समय २ पर इस सम्बन्ध में नई-नई समस्याएं सामने आ खड़ी होती हैं और इन समस्याओं का सुलझाव समय और स्थान के अनुसार किया जाता है। इसलिए नागरिक शास्त्र के अध्ययन का ढंग निरीक्षणात्मक (observational) और वैज्ञानिक (scientific) है। परन्तु नागरिक जीवन की घटनाओं के निरीक्षण, विश्लेषण और सम्मिश्रण (cbservation, analysis and generalisation) से नागरिकता के जो सिद्धान्त और नियम निश्चित किये जाते हैं, वे पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण (gravitation) के समान यथार्थ नहीं होते, क्योंकि मनुष्य का स्वभाव विचित्र है और एक व्यक्ति का दूसरे से बर्ताव समय के अनुसार बदलता रहता है। इस कारण नागरिक शास्त्र केवल साधारण रूप में विज्ञान (Science) है।

२—केवल नागरिकता के सिद्धान्तों और नियमों की खोज से नागरिकता का उद्देश्य पूरा नहीं होता। जब तक नागरिकता के नियमों का व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में भली भांति प्रयोग न किया जाए, उतने तक इस शास्त्र का उद्देश्य

पूरा नहीं होता। परिवार से लेकर पड़ोसियों, गांव वालों, नगर वालों और सारे देश वासियों के जीवन का अध्ययन कर के जीवन के साधनों का पता लगाना और समाज तथा राज्य की उन्नति करना नागरिक का कर्त्तव्य है। नागरिक शास्त्र का ध्येय अच्छे नागरिक बनाना है, इसलिए समाज में रहते हुए हर एक नर नारी से प्रेम, सहानुभूति और सहयोग के पाठ पढ़ाना और सब देशवासियों के साथ समता और बन्धुता का बर्ताव करना और सारे नागरिकों में नेक और पवित्र विचारों का प्रचार करना और उच्च जीवन व्यतीत करने का ढंग सिखाना इस शास्त्र का प्रधान उद्देश्य है। इसलिए नागरिक शास्त्र केवल विज्ञान (Science) नहीं बल्कि जीवन की कला (Art) भी है।

११. नागरिक शास्त्र की अध्ययन पद्धति

१—पहले वर्णन हो चुका है कि नागरिक शास्त्र विज्ञान और कला दोनों हैं। यह नागरिकता का विज्ञान और सुन्दर जीवन की कला है, इसलिए इसकी अध्ययन पद्धति बौद्धिक (theoratical) और क्रियात्मक (practical)दोनों प्रकार की है। वैज्ञानिक अध्ययन के लिए यह अति आवश्यक है कि सामाजिक जीवन की समग्र घटनाओं का संग्रह किया जाय। अर्थात् भूत और वर्तमान कालीन सामाजिक संस्थाओं और व्यवस्थाओं का अध्ययन किया जाए; और उनकी परस्पर तुलना (comparison) से नागरिकता के सिद्धान्त और नियम स्थापित किए जाएं। इस महान कार्य के लिए नागरिक शास्त्री के अन्दर स्वतन्त्र विचार शक्ति की प्रबलता का होना नितान्त आवश्यक है, जिसके द्वारा वह व्यक्तियों तथा समूहों की विचारवृत्तियों या विचार धाराओं का संग्रह (collection) कर सके और सुन्दर सामाजिक जीवन के नियमों का निर्माण कर सके। नागरिक विज्ञान के अध्ययन के लिए विद्यार्थी के अन्दर पुरुषार्थ, विचार स्वातन्त्र्य, मेधाबुद्धि

(discriminative faculty) और मानव जाति से सहानुभूति आदि सद्गुणों का होना आवश्यक है। इन गुणों से विभूषित विद्यार्थी नागरिकता के नियमों का निर्माण समय अनुसार भली भांति कर सकेगा।

२—परन्तु नागरिकता के सिद्धान्तों और नियमों की खोज से नागरिकता का उद्देश्य पूरा नहीं होता, क्योंकि नागरिक शास्त्र न केवल विज्ञान है बल्कि सुन्दर जीवन की कला भी है। नागरिक शास्त्र का ध्येय मनुष्य का अध्ययन करना है। अतएव यह आवश्यक है कि हम स्वयं समाज में रहकर नागरिकता के नियमों का क्रियात्मक रूप में प्रयोग करें। परिवार से लेकर पड़ोसियों, गांव वालों, नगर वालों तथा सम्पूर्ण देशवासियों के साथ प्रेम और सहानुभूति से बर्ताव करना सीखें, राजशासन सम्बन्धी कार्यों में भाग लें और अपने वोट का म्युनिसिपल बोर्ड तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आदि संस्थाओं के चुनाव में उचित प्रयोग करें। इस सारे कथन का अभिप्राय यह है कि हम नागरिकता के नियमों का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करें और उन का प्रयोग अपने दैनिक जीवन को सफल बनाने के लिए क्रियात्मक रूप से करें।

१२. नागरिक शास्त्र का महत्व

१—हमारा युग विज्ञान का युग है और मनुष्य ने प्रकृति को अपनी दासी बना लिया है। आकाश में वह पक्षियों के समान उड़ सकता है, और समुद्र में मछलियों के समान गोते लगा सकता है। परमाणुबम (atom bomb) और हाइड्रोजन बम (hydrogen bomb) के आविष्कार ने इसका अहंकार बढ़ा दिया है। इन बमों से लाखों नर-नारियों का संहार एक क्षण में हो सकता है। परन्तु बड़ा शोक है कि इस प्रकार आर्थिक उन्नति करने में समर्थ होते हुए भी मनुष्य अपने सुख तथा शान्ति के लिये कोई उपाय न निकाल सका, बल्कि अन्याय और संघर्ष का वातावरण उत्पन्न हो गया है। व्यक्तिगत

और सामाजिक जीवन की जड़ें खोखली हो चुकी हैं। इसका कारण यही हो सकता है कि मानव समाज अपने कर्त्तव्यों को समझने से रह गया है। ऐसी अवस्था में नागरिक शास्त्र, जिसका उद्देश्य मानव जीवन को सुन्दर, सुखी और शान्त बनाना है, के अध्ययन की बड़ी आवश्यकता है।

२—हम जिस समाज और राज्य में रहते हैं, उसके प्रति अपने कर्त्तव्यों तथा अधिकारों को जाने बिना उन्नति नहीं कर सकते। आजकल जनसत्तात्मक (democratic) शासन का युग है। देश की सरकार जनता के दिये हुए वोटों के अनुसार बनती है। जो मनुष्य अपने कर्त्तव्यों, अधिकारों और देश की समस्याओं को नहीं जानता, वह वोट भी ठीक नहीं दे सकता, वोट की महत्ता पञ्चायती राज्य की सबसे बड़ी शक्ति है। ऐसे समय नागरिक शास्त्र लोगों में जागृति, त्याग और उदारता का सञ्चार करेगा और उत्तरदायित्व का ज्ञान कराएगा।

३—राज्य को दृढ़ करने के लिए साम्प्रदायिक भेद भाव को मिटाना अति आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म में श्रद्धा रखते हुए भी राज्य की सेवा कर सकता है। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, आदि सब की राजनैतिक तथा आर्थिक समस्याएं एक हैं और सब साम्प्रदायों का असली उद्देश्य मनुष्य मात्र को शान्ति और सुख की ओर ले जाना है। समाज को इस प्रकार शिक्षित और सभ्य बनाना नागरिक शास्त्र का विषय है। नागरिकशास्त्र का ज्ञान ही भिन्न भिन्न विचारों वाले लोगों को परस्पर संगठित कर सकता है और राज्य को दृढ़ बना सकता है!

४—नागरिक शास्त्र में भिन्न भिन्न संस्थाओं की तुलना की जाती है और इनके गुणों और दोषों की विवेचना की जाती है। इससे हमारी आलोचना शक्ति (critical faculty) और अच्छे बुरे में अन्तर निकालने या विवेक शक्ति (discriminative faculty)

का विकास होता है और इस प्रकार नागरिक शास्त्र हमारे मस्तिष्क को भी पुष्ट और परिष्कृत करता है।

५—नागरिकशास्त्र का इतिहास, राजनीति, अर्थ, आचार; विधान तथा अन्य समाज आदि शास्त्रों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। नागरिक शास्त्र का विद्यार्थी अपने देश तथा अन्य देशों के मानव विचारों की तुलना करके मानव हितैषी नियमों का निर्माण करता है। इस प्रकार मानव समाज को बड़ा लाभ होता है और साथ ही उसका मनोविनोद होता रहता है।

६—प्रो० गेडीज (Gaddes) का कथन है कि नागरिक शास्त्र सार्वदेशिक (universal) सामाजिक संस्थाओं के समन्वय से मनुष्य को मानव समाज की सेवा में लगाता है। देश देशान्तरों की राजकीय, आर्थिक, धार्मिक और समाजिक संस्थाओं के विस्तृत और पक्षपात रहित अध्ययन से मानव हितैषी नियमो का निर्माण होता है, जिससे मानव समाज उत्तरोत्तर सभ्य बनता है और उन्नति के शिखर पर आरूढ़ होता है।

१३. शिक्षालयों में नागरिक शास्त्र का अध्ययन

१—स्वर्गीय पण्डित मदन मोहन जी मालवीय का कहना है कि "जाति के वालक उसकी सम्पत्ति है।" एक दूसरे नेता का कहना है कि "आज के विद्यार्थी कल के नागरिक होंगे।" दोनों वाक्यों में एक बड़ी भारी सच्चाई छुपी है। इसका अभिप्राय यह है कि देश में शिक्षा का ऐसा प्रबन्ध किया जाए जिससे हमारे विद्यार्थी आदर्श नागरिक बन सकें। स्कूलों और कालेजों का यह कर्तव्य है कि वे विद्यार्थियों को इस योग्य बनाएं कि वे जीवन संग्राम में योग्य नागरिकों के रूप में भाग. ले सकें। सच तो यह है कि वह शिक्षा व्यर्थ सिद्ध होगी जो अपने देश के बालकों को सफल जीवन व्यतीत करने के योग्य नहीं बना सकती।

२—आधुनिक युग में नागरिक जीवन बहुत जटिल हो गया है। नागरिकों के कर्तव्य भी कई प्रकार के हो गए हैं। एक साधारण व्यक्ति

के लिए बिना नागरिकता की शिक्षा प्राप्त किए कठिन हो गया है कि वह नागरिक रूप में अपने कर्तव्यों का पालन भली-भांति कर सके। शिक्षा ही एक ऐसी प्रणाली (method) है जो किसी व्यक्ति को नागरिक जीवन में उपयोगी बना सकती है। विद्यार्थियों के हृदय सरल होते हैं, और जिस प्रकार की शिक्षा उनको दी जाए वह उनके हृदयों में स्थायी हो जाती है। इसलिए स्कूल और कालेज नागरिक शिक्षा के लिए उपयुक्त स्थान हैं।

३—दो हज़ार वर्ष से अधिक समय बीत चुका है जब कि यूनान के ऋषि अरस्तू ने कहा था कि बिना किसी संशय या भय के राज्य को अपना मुख्य ध्यान नवयुवकों की शिक्षा की ओर देना चाहिए। इस कर्तव्य से विमुखता (neglect) राज्य के लिए घातक सिद्ध होगी। पाठशालाओं तथा कालेजों की पाठ्यप्रणाली में व्यक्ति और समाज के लिए अन्य किसी विषय का अध्ययन इतना लाभप्रद नहीं जितना कि नागरिकशास्त्र का, और अन्य किसी विषय का अध्ययन न करना इतना हानिकारक नहीं जितना कि नागरिक शास्त्र का। नागरिक शास्त्र भिन्न २ संघों के सदस्य के रूप में मनुष्य जीवन का अध्ययन करता है। मनुष्य के अपने परिवार तथा अन्य संघों के प्रति भिन्न २ कर्तव्य हैं और इन कर्तव्यों की व्याख्या नागरिकशास्त्र का विषय है। अपने कर्तव्य भली प्रकार पालने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य के अन्दर परस्पर प्रेम, सहानुभूति, सहयोग आदि गुणों का संचार हो। इस कार्य्य के लिए योग्य स्थान केवल कालेज और स्कूल हैं जहां खेलों, स्काउटिंग, सहायता-समितियों, ग्राम-सुधार सभाओं तथा अन्य परिषदों द्वारा नागरिकता की शिक्षा क्रियात्मक रूप में दी जा सकती है। इंगलैण्ड के विख्यात जनरल नैलसन जिसने वाटलू के युद्ध क्षेत्र में नेपोलियन को हरा दिया था, एक भाषण में प्रगट किया कि वाटलू की लड़ाई ईटन (Eton) के खेल के मैदान में जीती गई। इस भाषण का तात्पर्य्य यह है कि अनुशासन (discipline) और

आत्मोत्सर्ग (self sacrifice) के पाठ पाठशाला के अन्दर सीखे जाते हैं। इसी प्रकार हम कह सकते हैं कि सफल नागरिक जीवन की नींव केवल शिक्षा केन्द्रों में ही रखी जाती है।

४—किसी देश की भविष्य की आशा का केन्द्र वहां के विद्यार्थी गण हैं। इनमें से योग्य विद्यार्थी बड़े होकर देश के राज्य शासन में भाग लेंगे, केन्द्रीय, प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं तथा कार्य्य कारिणी सभाओं और स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं के सदस्य बनेंगे। प्रजातान्त्रिक राज्य में हर समय अच्छे नागरिकों की सेवा की आवश्यकता रहती है। अपने अधिकारों, कर्तव्यों और देश की समस्याओं को जानने वाले व्यक्ति ही राज्य (state) और राष्ट्र (nation) की योग्य सेवा कर सकते हैं। इस प्रकार की योग्यता प्रदान करने के लिये स्कूलों और कालेजों मे नागरिक शिक्षा का प्रबन्ध बहुत जरूरी है।

Questions (प्रश्न)

1. Define Civics and discuss its relation with History, Economics, Politics and Ethics.
नागरिक शास्त्र की परिभाषा करो, और इसके इतिहास, अर्थ शास्त्र, राजनीति और आचारशास्त्र से सम्बन्ध का वर्णन करो।

2. Is Civics Science or Art? Discuss.
स्पष्ट रूप से विवेचना करो कि नागरिक शास्त्र विज्ञान है या कला?

3. Explain the scope and purpose of Civics.
नागरिक शास्त्र के कार्य्य क्षेत्र तथा ध्येय का वर्णन करो।

4. What are the uses of studying Civics in schools and colleges?
पाठशालाओं और कालेजों में नागरिक शास्त्र के अध्ययन के लाभ वर्णन करो।

5. Explain the method of studying Civics.
नागरिक शास्त्र की अध्ययन पद्धति का वर्णन करो।

द्वितीय अध्याय

मनुष्य और समाज

(Man and Society)

१. समाज की परिभाषा और महत्व

(Meaning and Importance of Society)

१—स्वभाव से मनुष्य को मनुष्य का संग भाता है, वह अकेला नहीं रह सकता। उसकी खाना, पीना पहिनना आदि आवश्यकताएं ऐसी हैं कि दूसरों के सहयोग के बिना पूरी नहीं हो सकती। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सदा उसे दूसरों का आश्रय लेना पड़ता है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त उसका जीवन किसी न किसी रूप में दूसरों पर आश्रित है। मनुष्य संतान जन्म लेते समय बहुत दुर्बल होती है और वर्षों तक अपने पालन पोषण और रक्षा के लिए अपने माता पिता और दूसरे सम्बन्धियों पर निर्भर रहती है। बालक माता पिता की गोद में रहकर दूसरे लोगों से बोलता और आसपास की वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करता है। जब वह कुछ बड़ा हो जाता है तो पाठशाला जाता है और अपने सहपाठियों के साथ पढ़ता, खेलता-कूदता और खाता-पीता है। उनके अच्छे अथवा बुरे कार्यों तथा विचारों का प्रभाव उस पर पड़ता है। जवान होकर वह समाज में प्रवेश करता है, वणिज व्यापार, नौकरी-चाकरी अथवा कोई और व्यवसाय (धन्धा) करके अपनी जीविका का प्रबन्ध करता है और समाज के अच्छे वा बुरे प्रभावों के अनुसार अपना जीवन सुखी वा दुःखी बनाता है। जब उसकी मृत्यु होती है तो उसके अपने सम्बन्धी व पड़ोसी उसका मृतक संस्कार करते हैं। इन बातों से स्पष्ट है कि मनुष्य जीवन

की सफलता दूसरों की सहायता और सहयोग पर अवलम्बित है। इस कारण वह समूहों में रहता है। असभ्य अवस्था में भी वह समूहों में रहता था। मनुष्य मात्र के समूह को चाहे वह संगठित (organised) हो अथवा असंगठित (unorganised) हो, समाज कहते हैं।

२—यह एक प्रसिद्ध कहावत है कि मनुष्य सामाजिक जीव है! इसका अर्थ यह है कि मनुष्य समाज में जन्म लेता है, समाज में ही इसका पालन पोषण होता है और समाज ही इसके जीवन का व्यवहार क्षेत्र है। मनुष्य अकेला रहने से घबराता है और अकेला रहने से उसके अन्दर सचाई, दयानतदारी, नम्रता, पुरुषार्थ, लोकसेवा, महानुभूति और सहयोग आदि सद्‌गुणों का विकास नहीं होता। प्रत्येक मनुष्य में ये गुण होते हैं, परन्तु किसी में अधिक और किसी में नाम मात्र को। इन गुणों को विकसित होने का अवसर एक दूसरे से मिलने जुलने से होता है। सामाजिक जीवन सरल और प्राकृतिक जीवन है। समाज की कड़ी आलोचना से मनुष्य का आचार और व्यवहार सुधरता है। दीन और दुःखी लोगों की सेवा समाज में ही रह कर हो सकती है। मनुष्य अपने ध्येय का अनुभव भी समाज में रह कर ही कर सकता है। वह अपने अनुभवों से समाज के दूसरे लोगों पर प्रभाव डालता है और दूसरों के आचार विचार से प्रभावित होकर अपना दृष्टि-कोण निश्चित करता है। इसके अतिरिक्त खाना-पीना सर्दी-गर्मी से बचाव, जंगली हिंसक पशुओं और शत्रुओं से रक्षा आदि आवश्यकताएं ऐसी हैं कि इनकी सन्तोषजनक पूर्ति केवल समाज में ही हो सकती है। समाज में ही रह कर मानव वंश (human race) विनाश से बच सकता है।

३—मनुष्य के विभिन्न सामाजिक कार्यों और सम्बन्धों के समूह को सभ्यता कहते हैं। सब से अच्छा मनुष्य वह है जिसमें सभ्यता के सम्पूर्ण श्रेष्ठ अङ्गों का विकास हो चुका हो और सब से श्रेष्ठ सभ्यता

वह है जिसमें हर एक मनुष्य को अपनी शक्तियों के विकास का अवसर मिल सके। इतिहास के अनुशीलन से पता लगता है कि आदिम अवस्था (primitive stage) में भी मनुष्य सामाजिक जीवन व्यतीत करता था। इसमें सन्देह नहीं कि उस युग का समाज प्रारम्भिक वा अविकसित (elementary or rudimentary) अवस्था में होगा और उसमें वर्तमान समाज के समान सरलता, स्पष्टता और स्वतन्त्रता न होती होगी। किन्तु यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि हर एक अवस्था में मनुष्य समाज के अन्दर रहता आया है। मनुष्य का स्वभाव और उसकी आवश्यकताएं उसको समाज के अन्दर रहने पर विवश करती हैं और वह मनुष्य जीवन के आदर्श को केवल समाज में ही रह कर दूसरों के सहयोग से ही प्राप्त कर सकता है।

२. समाज का विकास
(Evolution of Society)

१—इतिहास से यह पता नहीं लगता कि सबसे पहले किस समय पर सामाजिक जीवन का आरम्भ हुआ, परन्तु यह निश्चित है कि मनुष्य अपनी आदिम (primitive) अवस्था में भी समूह वा समाज में रहता था, चाहे वह समाज वर्तमान समाज से बहुत सी बातों में विभिन्न होगा। आदिम समाज की परिधि (circle) बहुत संकुचित थी और अनुमान है कि समाज का सबसे पहिला स्वरूप परिवार वा कुटुम्ब था। स्त्री और पुरुष में परस्पर आकर्षण हुआ और वह एक स्थान पर रहने लगे। परिवार वा कुटुम्ब स्त्री, पुरुष और उनके बच्चों का सामूहिक नाम है।

२—प्राचीन काल में परिवार प्रायः दो प्रकार के थे। मातृ-प्रधान (matriarchal) और पितृ-प्रधान (patriarchal)। मातृ प्रधान परिवार में लोग परस्पर भाई-बहिन के सदृश होते थे। न कोई पति था और न कोई पत्नी। वे परस्पर विवाह नहीं कर सकते थे। विवाह सम्बन्ध दूसरे समूह वालों में होता था और

विवाह होने पर भी स्त्री अपने घर में रहती थी। पति कभी २ सुसराल में जाया करता। सन्तान होने पर उस की देखभाल और पालन पोषण माता के परिवार में ही होता था। पिता की कोई जिम्मेदारी न थी। इसलिए इस प्रणाली में माता का अधिक महत्त्व था। इसमें पुरुष का कोई विशेष अधिकार नहीं था। दायभाग (जायदाद) की स्वामिनी भी लड़की हुआ करती थी।

३—पितृ-प्रधान परिवार में पुरुष ही घर का स्वामी होता था। घर की स्त्रियां, बालक और नौकर आदि सब उसके आधीन होते थे। वही सारे घर के लिए कमाता था और सबका पालन करता था। इस प्रणाली में परिवार की स्त्रियों के अधिकार कम होते थे। पुत्र ही पिता के अनन्तर जायदाद का मालिक होता था। प्रायः माता को भी पुत्रों की सहमति पर चलना पड़ता था। आजकल के परिवार प्रायः इस प्रणाली के हैं।

४—इस युग में समाज का अस्तित्व परिवारों वा कुटुम्बों के रूप मे था। परिवार वा कुटुम्ब में जनसंख्या का बढ़ना स्वभाविक है। होते २ परिवार के लोग इस प्रकार बढ़ गए कि उनके लिए एक घर में सुखपूर्वक रहना कठिन हो गया। इस प्रकार एक परिवार कई परिवारों मे बंट गया। परन्तु जीवन की आवश्यकताओं के लिए परस्पर मेल-जोल रखना आवश्यक था इस कारण एक ही पूर्वज की सन्तान से बने हुए कई परिवार मेल-जोल से रहते थे। इन परिवारों के समूहों से वंश (clan) की उत्पत्ति हुई। एक ही परिवार के रीति-रिवाज, खानपान, और विवाह-शादि समान थे और परस्पर प्रेम और सहयोग के कारण उनका जीवन सुखी था।

५—युग (ज़माना) बदलने पर वा जीवन की समस्याओं से विवश (मजबूर) होकर एक वंश के लोग दूसरे वंश के लोगों के साथ मिल कर रहने लगे अथवा बलवान वंश ने निर्बल वंश को जीतकर अपने आधीन कर लिया। इस प्रकार समाज का

क्षेत्र बढ़ गया और उसने जाति (tribe) का रूप धारण कर लिया। ये जातियां असभ्य लोगों के समान शिकार करके अपना निर्वाह (गुज़ारा) करती थीं अथवा गौ, भेड़, बकरी आदि पशुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर ले जाकर चराया तथा फिराया करती थीं। कुछ समय के पश्चात् उन्होंने कुछ प्रदेशों पर अपना अधिकार जमा लिया और वहीं पर रहने लगीं। इस प्रकार बस्तियों और ग्रामों का जन्म हुआ। इस युग के लोग पहिले की अपेक्षा कुछ सभ्य हो चुके थे और अपने हानि-लाभ को समझने लग गये थे। अब लड़ाई झगड़े का स्थान सहयोग ने ले लिया था और लोग पहिले की अपेक्षा सुखी जीवन व्यतीत करने लगे। सम्पत्ति के लोभ और आवश्यकताओं को पूरा करने के कारण समाज का क्षेत्र बढ़ गया। इस प्रकार नागरिक जीवन का आरम्भ हुआ, व्यापार और व्यवसाय बढ़ने लगे, यातायात के साधनों और मार्गों की उन्नति हुई और परिवार ने राज्य (state) का रूप धारण कर लिया। इस से स्पष्ट है कि समाज का क्षेत्र सम-केन्द्र वृत्तों (concentric circles) के समान परिवार से वंश, वंश से जाति और जाति से राज्य तक पहुँच गया।

६—समाज के विस्तार का काम अब भी समाप्त नहीं हुआ। मनुष्य एक विचार शील प्राणी है। उसकी आवश्यकताओं और अभिलाषाओं के अनुसार समाज के क्षेत्र में विस्तार, उन्नति और परिवर्तन होते रहते हैं। इस परिवर्तन पर मनुष्य का सुख और उन्नति निर्भर है। आज कल देश भक्ति के स्थान पर विश्व प्रेम (universal love) की भावना प्रबल हो रही है। रेल, हवाई जहाज, समुद्री जहाज इत्यादि की यात्रा की सुविधाओं और डाक, तार, रेडियो और प्रेस के प्रचार ने सारे संसार को एक ही समाज का रूप दे रखा है।

३. व्यक्ति और समाज का परस्पर सम्बन्ध

(Relation between the Individual and the society)

१—समाज व्यक्तियों के समूह का नाम है, इसलिए व्यक्ति समाज के अंग हैं। समाज वृक्ष और व्यक्ति उसकी शाखाएं हैं। दोनों एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते। व्यक्ति और समाज की उन्नति और अवनति एक दूसरे की उन्नति और अवनति पर निर्भर है। व्यक्ति एक विचार शील अंग है। समय पाकर वह अपने विचारों से समाज पर प्रभाव डालता रहता है। इस के विपरीत एक अच्छे समाज में रह कर हर एक व्यक्ति को अपने विचारों के विकास का अच्छा अवसर मिलता रहता है और वह समाज द्वारा अपने आपको बहुत शीघ्र ही उन्नत कर सकता है। समाज स्वयं कोई कार्य नहीं कर सकता, भिन्न २ व्यक्तियों के कामों का समुच्चय ही समाज का काम है। जिस समाज में जितने अधिक व्यक्ति वीर और विद्वान् होंगे, वह समाज उतना ही यशीस्व होगा। महात्मा बुद्ध और महात्मा गांधी के विचारों ने भारतीय समाज को बहुत ऊंचा कर दिया है। इस से स्पष्ट है कि व्यक्ति समाज को ऊंचा करते हैं और समाज व्यक्तियों को ऊंचा करने का साधन है।

२—यह मानते हुए कि समाज और व्यक्ति एक दूसरे पर आश्रत हैं, इस बात का निर्णय करने के लिए कि इन में से कौन महत्वपूर्ण (impoitant) है, नीतिज्ञ दो समूहों मे विभक्त हैं—व्यक्तिवादी और समाजवादी। व्यक्तिवादी (Individualists) व्यक्ति को ही प्रधान स्थान देते हैं और कहते हैं कि समाज का कार्य प्रत्येक व्यक्ति को अधिक से अधिक सुख पहुंचाना और उसके विकास के साधनों का यथा सम्भव प्रबन्ध करना है। समाज और समाजिक संस्थाओं का लाभ केवल इतना है कि वे हर एक व्यक्ति को सुखी और उन्नत बनाने में सहायता दें। यदि कोई समाज या सामाजिक संस्था इस कर्तव्य को पूरा नहीं कर सकती तो वह अपना अस्तित्व खो बैठती है और जनता का कर्तव्य है कि उसे तत्काल समाप्त कर दे या उसमें समुचित परिवर्तन करे, इससे समाज में रहने

वाले व्यक्तियों को लाभ होगा।

३—समाजवादी (Socialists) समाज को प्रधान स्थान देते हैं और व्यक्तियों को समाज की उन्नति का साधन समझते हैं। वे कहते हैं कि व्यक्तियों की उन्नति और उनकी शक्तियों के विकास का क्षेत्र केवल समाज है। जब समाज उन्नत और सुखी होगा तो समाज का निर्माण करने वाले व्यक्ति अवश्य सुखी होंगे। इस लिए यदि किसी व्यक्ति का सुख और उन्नति समाज के सुख और शान्ति में बाधा डालें तो उस व्यक्ति के सुख और उन्नति को समाज के लिए बलिदान कर दिया जाए।

४—परन्तु यदि हठ का त्याग करके देखा जाय तो मनुष्य मात्र की भलाई के लिए समाज और व्यक्ति दोनों आवश्यक हैं। दोनों की भलाई और उन्नति के लिये मध्यम मार्ग (middlepath) या via media) श्रेष्ठ है और वह यह है कि समाज का निर्माण इस प्रकार हो कि हर एक व्यक्ति को अपने विकास का पूरा अवसर मिले और समग्र समाज भी अधिक से अधिक कल्याण और उन्नति को प्राप्त कर सके। इस लिए न्याय संगत मार्ग तो यही है कि न तो व्यक्ति को पूर्ण रूप से समाज के अधीन कर दिया जाए और न ही समाज का इतना पतन हो कि वह प्रत्येक व्यक्ति के भोग भोगने का अखाड़ा बन जाय। राज्य के विधान तथा शासन में ऐसा प्रबन्ध किया जाय कि समाज और व्यक्ति दोनों अपने अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए परस्पर सहायक हों।

५—समाज का सबसे बड़ा ध्येय (aim) व्यक्ति की उन्नति के साधनों का प्रबन्ध करना है। समाज का निर्माण इस प्रकार किया जाए कि हर एक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व और शक्तियों के विकास का पूरा २ अवसर मिले। आत्मविकास (self-development) और स्वार्थ (selfishness) में बड़ा अन्तर है। किसी व्यक्ति को दूसरों को हानि पहुँचा कर उन्नत होने

का कोई अधिकार नहीं बल्कि हर एक व्यक्ति को सारे व्यक्तियों के सामूहिक हित में सहयोग देना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति का पूर्ण विकास त्याग के अन्दर छिपा हुआ है। स्वार्थ को समाज के हित के आधीन करने से व्यक्तित्व का विकास होता है। सेवा भाव सबसे ऊंचा सामाजिक आदर्श है और इस की प्राप्ति उस अवस्था में हो सकती है जब कि स्वार्थ त्याग द्वारा आत्मविकास किया जाए। निष्कर्ष यह है कि समाज और व्यक्तियों में पूरा २ सहयोग हो। इस सहयोग द्वारा ही समाज अपने आदर्श को प्राप्त कर सकता है। समाज का आदर्श एक तो यह है कि सारे देश और राष्ट्र के हित को ध्यान में रखते हुए व्यक्तियों के विकास का अच्छा प्रबन्ध करे और दूसरा आदर्श समाज का यह है कि वह सारे जगत की भलाई को सामने रख कर अपने देश के जीवन, सभ्यता और आदर्शों (ideals) को उन्नत करने का पूरा २ प्रबन्ध करे।

Questions (प्रश्न)

1 Explain the proposition that man is a social animal.
 इस कथन की व्याख्या करो कि मनुष्य सामाजिक जीव है।
2. what is Society and how has it evolved ?
 समाज किसे कहते हैं और इसका विकास कैसे हुआ है ?
3. Discuss the relation between Man and Society
 मनुष्य और समाज के परस्पर सम्बन्ध पर निबंध लिखो।
4. Discuss the functions of the family.
 परिवार के कर्तव्य वर्णन करो।
5. Write short notes on—
 [a] Patriarchal Family.
 [b] Matriarchal Family.

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त नोट लिखो-

(क) पितृ-प्रधान परिवार

[ख] मातृ-प्रधान परिवार

तीसरा अध्याय

मनुष्य और उसके संघ

(Man and his Associations)

१. संघ का अर्थ

[Meaning of Association]

१—पिछले अध्याय में समाज की परिभाषा करते हुए यह कहा गया है कि मनुष्य एक सामाजिक जीव है और मनुष्य मात्र के किसी समूह को, चाहे वह समूह संगठित हो अथवा असंगठित हो, समाज कहते हैं। कुछ तो स्वभाव से और कुछ आवश्यताओं की पूर्ति से मजबूर होकर मनुष्य दूसरे मनुष्यों से मेल-जोल रखता है और इस मेल-मिलाप से समाज का निर्माण होता है। समाज एक व्यापक सगठन है और इसके अन्दर रहने वाले मनुष्य अपने विशेष उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अपने आपको कई छोटे २ समूहों में बांट लेते हैं। ये समूह देश काल और आवश्यकता के अनुसार घटते बढ़ते रहते हैं। इन छोटे समूहों को, जो विशेष उद्देश्यों और आवश्यकताओं को सामने रख कर बनाये जाते हैं, संघ [Associations] कहते हैं।

२—समाज [Society] और संघ [Association] में अन्तर है। समाज एक बहुत बड़ा व्यापक संगठन है और हमारा बड़े से बड़ा संघ अर्थात् राज्य [state] इसके अन्तर्गत तथा इसका अंग है, किन्तु हर एक संघ का एक विशेष सीमित उद्देश्य

होता है। पाठशाला, किसान सभा, मजदूर सभा, रेलवे एम्पलाइज़ एसोसियेशन, ट्रेड यूनियन आदि संघ के उदाहरण हैं। पाठशाला का उद्देश्य केवल शिक्षा देना है, किसान सभा केवल किसानों की व्यवस्था सुधारने के लिये बनाई गई है, मजदूर-सभा केवल मजदूरों के अधिकारों की रक्षा करती है। इसी प्रकार दूसरे संघ अपने विशेष कार्यों को पूरा करने के ज़िम्मेदार हैं। समाज का विकास धीरे २ हुआ है और हम जन्म लेते ही समाज के सदस्य हो जाते हैं। समाज एक स्थायी संस्था है और इसमें रह कर हम प्रसन्न रहते है और अपने जीवन को विकसित करते हैं। परन्तु कुछ संघ अस्थायी होते हैं और जब किसी संघ विशेष का उद्देश्य समाप्त हो जाता है, वह संघ अनावश्यक हो जाता है और तोड़ दिया जाता है।

२. संघों के लाभ
(Advantages of Associations)

१—वर्तमान काल में मानव जीवन की समस्याएं बड़ी जटिल (पेचीदा) हो गई हैं और इन समस्याओं को हल करने के लिए साधारण मनुष्य अनेक प्रकार के संघों में विभक्त हो जाते हैं। इसका परिणाम यह है कि इस समय मनुष्य समाज के अन्दर इन संघो का एक जाल सा बिछा हुआ है। इन संघों के निर्माण से जनता को निम्न लिखित लाभ हैं—

(१) संघ अपने सदस्यों के लिए जो काम करा सकता है, वह काम एक अकेला व्यक्ति सरलता से नहीं कर सकता। एक एक और दो ग्यारह वाली कहावत प्रसिद्ध है। इसका अभिप्राय यह है कि संगठन में बड़ी शक्ति है। संगठन से जो कार्य्य हो जाता है, वह इक्के, दुक्के व्यक्ति से होना सुगम नहीं है।

(२) संघ में सदस्य सहयोग से काम लेते हैं। इस प्रकार करने की शक्ति और समय में काफ़ी बचत हो जाती है। यदि हर

एक व्यक्ति अपना हर एक काम स्वयं करे तो इस में उसे बहुत कष्ट उठाना पड़ता है और पर्याप्त समय भी लगता है। इसके विपरीत जब कुछ व्यक्ति आपस में मिल कर काम करें तो उन का बहुत सा समय बच जाता है और काम को पूरा करने में कष्ट भी नहीं उठाना पड़ता।

(३) सङ्घ में काम लोगों की योग्यता और शक्ति के अनुसार बांटा जाता है। इस प्रकार न केवल काम ही अच्छे ढंग से होता है बल्कि सदस्यों में परस्पर प्रेम और व्यवहार भी बढ़ता जाता है। इसके अन्दर अच्छे गुणों का विकास होता है और समाज की अवस्था उन्नत हो जाती है।

(४) सङ्घ में सदस्यों के विचार का एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता है और संघ का सब से बड़ा भारी लाभ यह है कि व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा पूरे ढंग से होती है। एक साधारण निर्धन मज़दूर अकेला एक धनवान कारखाने वाले से उतनी मज़दूरी नहीं ले सकता जितनी कि मज़दूर सभा उसको अपने संघ के संगठन के कारण दिलवा सकती है।

(५) किसी विशेष संघ के सदस्य एक दूसरे की सहायता भी करते हैं। जब किसी सदस्य पर कोई आपत्ति आ जाए तो दूसरे सदस्य उसको आश्रय देते हैं। इस प्रकार सेवाभाव समाज के अन्दर उन्नत होता जाता है।

३. संघों के प्रकार

(Kinds of Associations)

१—मनुष्य की आवश्यकताएं कई प्रकार की हैं और इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जो संघ बनाए जाते हैं उनकी संख्या भी अगणित है। मनुष्यों की आवश्यकताओं पर विचार करने से पता लगता है कि खाना-पीना आदि आवश्यकताएं ऐसी हैं कि इन की पूर्ति के बिना हम जीवित नहीं रह सकते। इनके अतिरिक्त कुछ आवश्यकताएं ऐसी हैं कि जिन की पूर्ति से मानव जीवन सुखी, सम्पन्न और उन्नत होता

है। 'जीना' और 'भली भांति जीना' में बड़ा अन्तर है। जीवन निर्वाह केवल मात्र झोंपड़ी में भी हो सकता है, परन्तु सुखी जीवन के लिए तो सुन्दर साफ़ सुथरा मकान आवश्यक है। पहली प्रकार की प्राकृतिक और अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जो संघ बनाये जाते हैं वे स्वाभाविक या अनिवार्य संघ (Natural or Compulsory Associations) वे कहलाते हैं। जिन संघों में रहना न रहना मनुष्य के लिए अनिवार्य नहीं, उनको ऐच्छिक संघ (Optional, Man-made or Artificial Associations) कहते हैं। राज्य (state) और परिवार (family) अनिवार्य संघ हैं क्योंकि व्यक्ति इन दोनों संघों का जन्म से ही सदस्य होता है। आर्य समाज, सनातन धर्म सभा, क्रिकेट क्लब, फुटबाल क्लब, विद्यार्थी सभा आदि ऐच्छिक संघ हैं; क्योंकि इनका सदस्य बनना हमारी इच्छा पर निर्भर है। केवल वही लोग इनके सदस्य बन सकते हैं जिनको इनसे लाभ उठाने की इच्छा हो।

२—कभी २ संघों के प्रकार आयु वा काल के अनुसार भी गिने जाते हैं और वे तीन प्रकार के हैं—

(१) अस्थायी संघ (Temporary Associations) --इन संघों का निर्माण विशेष उद्देश्यों के लिए किया जाता है। जब वे उद्देश्य पूरे हो जाते हैं तो इन संघों की आवश्यकता नहीं रहती और फिर तोड़ दिए जाते हैं। अकाल पीड़ित सहायक सभा वा भूकम्प पीड़ित सहायता समिति आदि अस्थायी संघ हैं।

(२) अर्धस्थायी संघ (Semi Permanent Associations) –ये संघ पर्याप्त समय तक काम करते हैं, परन्तु वे मनुष्य मात्र के लिए जीवन पर्यन्त हितकारी नहीं होते और अन्त में आवश्यकता न रहने पर तोड़ दिये जाते हैं। किसान सभा, मजदूर सभा आदि संघ प्रायः स्थायी दिखाई देते हैं, परन्तु किसानों और मजदूरों की अवस्था सुधर जाने पर ये संघ निरर्थक हो जाते हैं और अपने आप काम करने से रह जाते हैं।

(३) स्थायी संघ (Permanent Associations)-ये वे संघ हैं जिनसे जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त मनुष्य का सम्बन्ध रहता है और इनको मनुष्य जीवित रहते हुए त्याग नहीं सकता। परिवार और राज्य (state) स्थायी संघ हैं।

३—कभी २ इन संघों के प्रकार उन उद्देश्यों के अनुसार भी गिने जाते हैं, जिन उद्देश्यों को सामने रखकर उनका निर्माण किया जाता है। ये संघ प्रायः सात प्रकार के होते हैं—

[१] रक्त और वंश सम्बन्धी संघ
(Kinship Associanoit)

१—यह संघ परिवार (family), वंश (clan) और जाति(tribe) से सम्बन्ध रखते हैं। ये संघ स्वभाविक और स्थायी हैं और सब संघों से अधिक महत्वपूर्ण हैं। मनुष्य का अपनी सन्तान से और सन्तान का अपने माता-पिता से प्रेम स्वभाविक है और पशुओं तक में पाया जाता है। इस भाव के बिना सन्तान का पालन पोषण और रक्षा असम्भव है। इसी प्रेमभाव के आधार पर परिवार की उत्पत्ति हुई। परिवार मनुष्य जाति का सबसे पुराना संघ है और यह एक साथ रहने वाले स्त्री-पुरुष और बच्चों से बनता है। इसका उद्देश्य सन्तान का पालन, रक्षण और उन्नति है। कभी २ परिवार में माता-पिता और सन्तान के अतिरिक्त भाई-बहिन और दूसरे रक्त सम्बन्धी भी सम्मिलित होते हैं। इस प्रकार इसका क्षेत्र विस्तृत हो जाता है। भारतवर्ष में संयुक्त परिवार (joint family) की प्रथा है, जो प्राचीन काल से चली आती है। संयुक्त परिवार में कुछ लोग ऐसे हैं, जो स्वयं किसी प्रकार का काम नहीं करते और न ही काम करने वालों का हाथ बटाया करते हैं। ऐसे परिवार में झगड़े बहुत होते हैं। अब पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव के कारण ऐसे परिवार घट रहे हैं। युरोप में जब पुत्र का विवाह हो जाता है तो वह अपने माता पिता से पृथक हो जाता है

और अपना अलग गृहस्थ बना लेता है । इस प्रकार का युरोपीय परिवार केवल माता-पिता और सन्तान पर ही सीमित होता है ।

२—परिवार की सफलता के लिए आवश्यक है कि स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध पवित्र हों, इनका सन्तान से प्रेम हो, सन्तान अपने माता-पिता की आज्ञाकारी हो और परिवार के सभी सदस्य एक दूसरे के सुख और भलाई के कार्य्यों में सहयोग देते हों । पति-पत्नी का परस्पर प्रेम, द्वेष भाव को मिटा देता है और एक शिशु के जन्म लेने पर उनका परस्पर प्रेम और सहयोग अधिक हो जाता है। जो प्रेम माता-पिता अपने बालक के लिए अनुभव करते हैं, वह बहुत ही श्रेष्ठ, उत्तम और निःस्वार्थ होता है । वे अपने बालक के लिये अगणित कष्ट उठाने को तैयार हो जाते हैं और अपने सुख को अपनी सन्तान के सुख पर निछावर कर देते हैं। माता-पिता अपने बच्चों की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति के लिये पूरा २ प्रयत्न करते हैं और अपनी संतान में सच्चाई दयानतदारी, सफाई, पुरुषार्थ, लोक सेवा, कृतज्ञता और कर्त्तव्य पालन आदि सद्गुणों का संचार करते हैं । इससे स्पष्ट है कि देश के होनहार बालकों को परिवार में सब से पहिले सामाजिक और नागरिक जीवन का पाठ पढ़ाया जाता है और उनके अन्दर सभ्य और पवित्र जीवन का संचार किया जाता है । इसके अतिरिक्त परिवार उसे आर्थिक जीवन के सिद्धान्तों और नियमों की शिक्षा भी क्रियात्मक रूप में देता है । परिवार के समर्थ मनुष्य बड़ा परिश्रम करके कमाते हैं और उनकी कमाई से परिवार के सभी सदस्यों (बच्चों बूढ़ों आदि) की आवश्यकता को पूरा किया जाता है। बच्चों को शिक्षा दी जाती है, बूढ़ों और बीमारों की सेवा की जाती है और परिवार के अन्य सदस्यों की आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है। परिवार में कमाने वाले तो कुछ व्यक्ति होते हैं परन्तु कमाने वाले और न कमाने वालों में बिना किसी भेदभाव

के सबकी आवश्यकताओं पर समान रूप से ध्यान दिया जाता है। परिवार का सांझा कोष और यथा शक्ति सबकी आवश्यकताओं को पूरा करना आर्थिक जीवन का आदर्श है। इस प्रकार परिवार अपने अन्दर रहने वाले सब सदस्यों के आर्थिक जीवन में सहयोग, परस्पर सहायता, अल्प व्यय (किफायत शआरी) और उदारता के सद्गुणों का संचार करता है। राजनैतिक विचार से भी परिवार एक छोटा सा राज्य गिना जाता है, परिवार के सबसे बड़े व्यक्ति की आज्ञा को सिर आंखों पर माना जाता है। छोटे २ झगड़ों पर जो निर्णय वे कर दें, सबको स्वीकार करना पड़ता है। परिवार में माता-पिता, भाई-बहिन, बेटा-बेटी आदि के नियत कर्त्तव्य और अधिकार होते हैं। वे सब अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं और अपने अधिकारों के प्रयोग में स्वतन्त्र होते हैं। अतः परिवार सामाजिक व नागरिक जीवन की पहली पाठशाला है, जिसमें सदाचरण, परस्पर प्रेम, सहयोग, आर्थिक और राजनैतिक जीवन के पाठ क्रियात्मक रूप में पढ़ाये जाते हैं।

२—एक ही पूर्वज से निकले हुए कुछ परिवारों के समूह को वंश (clan) कहते हैं और जब निकट रक्त सम्बन्धी कई वंश आपस में मिल जायं तो जाति (tribe) का निर्माण होता है। संघों का उद्देश्य भी विशेष होता है और इसलिए वे एक विशेष व्यक्ति की आज्ञा में काम करते हैं। इनके सदस्यों के रीति-रिवाज, पूजा तथा उपासना के ढंग भाषा तथा वेश भूषा समान होती हैं। हिंदुओं के अन्दर वर्ण व्यवस्था (Caste System) भी इसी प्रकार का संघ है और इसकी स्थापना प्राचीन काल में काम के बंटवारे (division of labour) के सिद्धान्तों पर की गई थी। ब्राह्मण धर्म-सम्बन्धी कर्त्तव्यों का पालन करते थे, क्षत्रिय संघ तथा देश की रक्षा के जिम्मेदार थे, वैश्य कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य व्यापार के स्वामी थे और सेवा करने वाले शूद्र कहलाते थे। उस समय यह बटवारा केवल मात्र कर्त्तव्यों को भली भांति निभाने

के लिए किया गया था और गुण, कर्म और स्वभाव के कारण कोई भी व्यक्ति एक वर्ण से दूसरे वर्ण में जा सकता था, इन वर्णों के आपस में विवाह सम्बन्ध भी हो सकते थे, परन्तु अब इस व्यवस्था में कई दोष आ गए हैं। यही कारण है कि अब वर्ण व्यवस्था कई अवस्थाओं में सुखी और सफल जीवन के मार्ग में बाधा डाल रही है। आशा की जाती है कि शिक्षा और ज्ञान के विस्तार से इस व्यवस्था की हानियों को दूर किया जायगा और इसे सफल और सुखी सामाजिक जीवन के लिए उपयोगी बनाया जायगा।

[२] धार्मिक संघ

(Religious Associations)

१—धार्मिक संघों का प्रयोजन किसी विशेष धर्म सम्प्रदाय वा मत (मज़हब) के मानने वालों का संगठित होकर अपने धर्म सम्बन्धी विचारों और साहित्य का प्रचार करना होता है। इन संघों में सांसारिक जीवन की अपेक्षा आध्यात्मिक जीवन को अधिक महत्त्व दिया जाता है। केवल आर्थिक जीवन की आवश्यकताओं के पूरा हो जाने पर मनुष्य जीवन सुखी नहीं हो जाता बल्कि वह हमेशा आदर्श सुख और आनन्द की खोज में लगा रहता है। सम्पूर्ण धर्म-सम्प्रदायों का उद्देश्य मनुष्य जीवन की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति है। संसार में अधिक संख्या उन लोगों की है जो ऐसी अलौकिक शक्ति मे विश्वास रखते हैं जो इस संसार के अटल नियमों को चला रही है! इस शक्ति को वे ईश्वर, खुदा और गौड आदि नामों से पुकारते हैं और उसकी उपासना करते हैं। उपासना की विधियां—विचार, स्वभाव, रीति रिवाज, काल और स्थानीय परिस्थितियों के भिन्न २ होने के कारण भिन्न २ हैं। यों तो भारत में सैकड़ों सम्प्रदाय हैं परन्तु इन में से प्रसिद्ध हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध, और जैनी हैं और इन सम्प्रदायों की कई शाखाएं और उपशाखाएं हैं। इन धार्मिक संघों का असली उद्देश्य पृथ्वी पर अमन और शांति का राज्य स्थापित करना

है, मनुष्यों के अन्दर ऊंच नीच के भेद भाव को मिटाना है और संसार के कोने २ में यह सन्देश पहुँचाना है! उनका प्रधान मन्त्र है—"सब मनुष्य एक ही परम पिता की सन्तान हैं और आपस में भाई-भाई हैं"। परन्तु यह शोक की बात है कि जहां एक सम्प्रदाय के लोगों में परस्पर प्रेम, त्याग, और सहयोग के सुन्दर दृश्य दिखाई देते हैं वहां दूसरे सम्प्रदाय के मानने वालों के प्रति ईर्ष्या, कठोरता और संकुचित मनोवृत्ति की भावनाओं को प्रगट किया जाता है। सम्प्रदायिक अन्धविश्वास और पागलपन ने मनुष्य जाति पर वे अत्याचार ढाए हैं जिन को पढ़कर मन को ठेस लगती है। इसका परिणाम यह है कि वर्तमान काल में धर्म का हस्तक्षेप राजनैतिक कार्यों में कम हो गया है और आशा की जाती है कि अब ये संघ यथार्थ में मनुष्य समाज की सेवा करेंगे और देश की उन्नति में सहायक बन सकेंगे।

[३] आर्थिक संघ

(Economic Associations)

१—भिन्न २ व्यवसायों (occupations) के लोग अपने २ संघ बना लेते हैं, इस प्रकार वे अपने सदस्यों के अधिकारों की रक्षा करते हैं, उनके लिए अच्छी मजदूरी की मांग पूरी करवाते हैं और अपनी अवस्था को ऊंचा करने का प्रयत्न करते हैं। ये संघ विशेषतया अपने विशेष व्यवसाय के लोगों की अवस्था को और साधारणतया सारे देश की आर्थिक अवस्था को सुधारने में सहायक बनते हैं। ये संघ बहुत पुराने हैं। भारतवर्ष में ये संघ सुनारों, लोहारों, जुलाहों आदि की बिरादरी के रूप में विद्यमान थे, जो अपनी बिरादरी की सामाजिक और आर्थिक उन्नति के साधनों का प्रयोग करते थे। मध्य कालीन युरोप में ये व्यवसायिक संघ गिल्डज (guilds) के रूप में काम करते थे। आजकल ये संघ प्रत्येक स्थान पर ट्रेडयूनियन (Trade Unions), कोआप्रेटिव सोसाइटी (Co-operative Societies), चेम्बर आफ कामर्स (Chamber of Comm-

erce), मज़दूर सभा, किसान सभा आदि के रूप में काम कर रहे हैं। ये सारे संघ काम करने वालों के लिए अच्छी मजदूरी, काम करने के उचित घण्टे, निवास के लिए अच्छे मकान, मज़दूरों के बच्चों के लिए शिक्षा आदि विषयों के सम्बन्ध में इनके अधिकारों की रक्षा करते हैं। इसके विपरीत पूञ्जीपतियों ने एम्प्लायरज असोशियेशन (Employers Associations) आदि संघों का निर्माण किया है, जो काम करने वालों (employees) की अनुचित मांगों को रोकते हैं और पूञ्जीपतियों के अधिकारों की रक्षा करते हैं। इन संघों के प्रायः ये उद्देश्य होते हैं—

(१) हर एक संघ के मिले-जुले और सहयोगी प्रयत्न से उनके व्यक्तिगत और सामूहिक अधिकारों की रक्षा सरलता से हो सकती है।

(२) परस्पर सहयोग से और बातचीत से वह अपनी अवस्था सुधारने के साधन सोच सकते हैं।

(३) आर्थिक उन्नति के अतिरिक्त ये संघ अपने सदस्यों की साँस्कृतिक (cultural) उन्नति में भी बहुत सहायता देते हैं।

इन संघों के कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि हर एक संघ का सदस्य अपने संघ के नियमों पर चले, संघ के नियन्त्रण में रहे, और अपने स्वार्थ को सारे संघ के हित के लिए बलिदान करने को तैय्यार रहे।

[४] राजनैतिक संघ
(Political Associations)

१—जिस प्रकार मनुष्य जीवन के अन्य क्षेत्रों में संघ बनाए जाते हैं, उसी प्रकार देश के शासन के सम्बन्ध में राजनैतिक संघों का निर्माण किया जाता है। स्वयं राज्य (State) एक राजनैतिक संघ है और दूसरे सभी संघों से अधिक महत्व पूर्ण है। राज्य संघ का विरोध करके कोई अन्य संघ जीवित नहीं रह सकता और अन्य संघों के परस्पर झगड़ों का निर्णय भी यही संघ करता है। इस कारण हम

राज्यों को संघों का संघ (Association of Associations) कहते हैं। देश के शासन के सम्बन्ध में लोगों के विचार भिन्न २ होते हैं, इसलिए वे अपने विचारों के अनुसार भिन्न २ राजनैतिक संघों का निर्माण कर लेते हैं, और प्रायः वह राजनैतिक संघ राज्य संघ होता है, जिसको जनता का बहुमत प्राप्त हो जाता है, भारतवर्ष में इस समय सब से अधिक शक्तिशाली राजनैतिक संघ इण्डियन नेशनल कांग्रेस (Indian National Congress) है और देश के शासन की बाग डोर इस समय इस संघ के प्रतिनिधियों के हाथ में है। इण्डियन नेशनल कांग्रेस के अतिरिक्त सोशलिस्ट पार्टी, कम्यूनिस्ट पार्टी, रिपब्लिकन पार्टी, आदि कई राजनैतिक संघ काम कर रहे हैं। इन संघों के उद्देश्य और काम करने के ढंग भिन्न भिन्न हैं, और अपने २ विचारों के अनुसार साधारण जनता में राजनैतिक जागृति पैदा कर रहे हैं

२—देश के विधान के अनुसार हर एक नागरिक को अपने विचारों के प्रगट करने और उनका प्रचार करने का पूरा अधिकार है, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि हर व्यक्ति के विचार देश और जाति के हित के अनुकूल हों। यदि कोई व्यक्ति देश और जाति के हित के प्रतिकूल विचारों का प्रचार करता रहे तो वह अपने देश और मनुष्य मात्र को हानि पहुँचाएगा। अतः हरएक राजनैतिक संघ और उसके हरएक सदस्य को यह स्मरण रहे कि वह सब से पहिले तो मनुष्य समाज का सदस्य है, इससे दूसरे दर्जे पर अपने देश का सदस्य है और तीसरे दर्जे पर अपने राजनैतिक संघ का सदस्य है। इसलिए इसको सब से पहले मनुष्य मात्र के, दूसरे दर्जे पर अपने देश के और तीसरे दर्जे पर अपने संघ के हित का ध्यान रखते हुए काम करना उचित है।

३—किसी देश के विशेष राजनैतिक संघों के अतिरिक्त इस समय संसार में कई अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक संघ काम कर रहे हैं जो भिन्न २ देशों और राष्ट्रों के परस्पर झगड़ों का निपटारा करने का प्रयत्न कर रहे

हैं। राष्ट्र संघ (League of Nations), संयुक्त राष्ट्र संघ (United Nations Organization), कम्यूनिस्ट इन्टर्नेशनल लीग (Communist International League) अन्तर्राष्ट्रीय संघों के उदाहरण हैं और इन संघों के सदस्य राष्ट्र वा राज्य (Nations or States) हैं।

[५] सांस्कृतिक संघ
(Cultural Associations)

१—मनुष्य जाति अनेक युगों के प्रयत्न करने के अनन्तर अपने आप को सभ्य और संस्कृत बनाने में समर्थ हुई हैं। अब भी यह अपनी संस्कृति को उन्नत करने के लिये प्रयत्नशील है और उचित साधनों का प्रयोग करती रहती है। पाठशालाएं, कालेज, विश्वविद्यालय तथा अन्य शिक्षा सम्बन्धी संस्थाएं सांस्कृतिक संघ हैं, जो अपने देश के नागरिकों को सुशिक्षित और सभ्य करने में लगे हुए हैं। इन के अतिरिक्त वाचनालय, पुस्तकालय, साहित्य समिति, नागरी प्रचार समिति, राष्ट्र भाषा-प्रचार समिति आदि अन्य संस्थाएं हैं जो देश के आचार और व्यवहार को उज्वल और उन्नत कर रही हैं। इन संस्थाओं या संघों का उद्देश्य अन्धकार को दूर करना, दृष्टिकोण को विस्तृत करना, उदारता और बन्धुता का संचार करना, सहयोग तथा सेवा की भावनाओं को जागृत करना है। एक संस्कृत व्यक्ति कठिनाइयों में सहिष्णु सहनशील) उदार और दृढ़ होता है और बड़ी होशियारी और चतुराई से जटिल समस्याओं को हल कर लेता है।

२—इस समय संसार की अवस्था बड़ी विचित्र है। सन् १९१४—१८ और १९३९—४५ के विश्व युद्धों के कारण मानव जीवन की नौका अन्धकार रूपी समुद्र की मझधार में डगमगा रही है। राजनैतिक नियमों की अस्थिरता के कारण शान्ति और सुख का अभाव हो रहा है। ऐसे समय पर विश्व संस्कृति के संघों

के निर्माण की अति आवश्यकता है। संयुक्त राष्ट्र संघ का संस्कृति विभाग (U.N.E.S.C.O.) इस सम्बन्ध में कुछ काम कर रहा है। इन के अतिरिक्त महात्मा गांधी के सत्य और अहिंसा के सन्देश को विश्व के कोने २ में पहुँचाने के लिए "सर्वोदय समाज" का निर्माण किया गया है। इस का पहला अधिवेशन सेवा ग्राम में और दूसरा राओ (इन्दौर) में हुआ। इन अधिवेशनों में सर्वोदय समाज के उद्देश्य और उन उद्देश्यों की प्राप्ति के साधनों पर विचार किया गया। सर्वोदय समाज एक प्रकार की आध्यात्मिक बिरादरी (Spiritual Fraternity) है और मनुष्य मात्र को बन्धुता और प्रेम के सूत्र में पिरोना चाहता है। यह सत्य और अहिंसा के स्तम्भों पर खड़ा किया गया है और इसका कार्यक्षेत्र सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों के अनुसार सारे जगत में शान्ति स्थापित करना है।

[६] मनोरञ्जनात्मक संघ
(Recreational Associations)

१—मनुष्य लगातार काम नहीं कर सकता और कुछ घण्टे काम करने के अनन्तर मस्तिष्क और शरीर थक जाते हैं। इस थकावट को दूर करने और अपने आप को दोबारा काम करने के योग्य बनाने के लिए उसको मनो-विनोद और व्यायाम की आवश्यकता को पूरा करने के लिए फुटबाल क्लब, क्रिकेट-क्लब, 'कवि सम्मेलन' 'संगीत सभा' आदि मनोरंजनात्मक संघों का निर्माण किया जाता है। ये संघ मेलों, गीतों, नाटकों, जादू के खेल, समाचार पत्र आदि का प्रबंध करते हैं जिन से इन संघों के सदस्यों का स्वास्थ्य ठीक रहता है और अवकाश (leisure) का सदुपयोग किया जाता है।

[७] लोक सेवा सम्बन्धी संघ
(Philanthropic Associations)

१—सभ्यता के विकास के साथ २ मनुष्य ने दूसरे लोगों से सहानुभूति

करने, उनके दुःखों को दूर करने और सामाजिक सेवा के भाव ग्रहण कर लिए हैं, इस कारण देश में अकाल, भूकम्प आदि हृदय-विदारक घटनाओं के हो जाने पर पीड़ितों की सहायता और रक्षा के लिए जो संघ बनाए जाते हैं वे इस श्रेणी में गिने जाते हैं। देश के धनाढ्य, दानी और दयालु व्यक्तियों का परम कर्तव्य है कि वे इन संघों द्वारा मनुष्य जाति के दुःखों को घटाने मे तन-मन-धन से सहायता दें। इन संघों के कार्य की सफलता के लिये आवश्यक है कि इनके सदस्य दयानतदार, सेवापरायण और निःस्वार्थ हों।

२—बालकों में सामाजिक सेवा के भाव भरने के लिए पाठशालाओं और कालेजों में सेवा समिति, ब्वाय स्काउट ट्रूप और गर्ल गाइड्स का निर्माण किया जाता है। इन संघों द्वारा बच्चों को रोगियों को सेवा, आग बुझाने के उपाय, डूबतों को बचाने के ढंग, मेलों मे प्रबन्ध करने की रीति आदि की शिक्षा क्रियात्मक रूप में दी जाती है और देश के नवयुवकों को सामाजिक सेवा के लिए तैयार किया जाता है।

४. व्यक्ति ही सामाजिक जीवन की इकाई है
(Individual as a Unit of Civic Life)

२—जब हम किसी थियेटर हाउस व सिनेमा भवन में जाते हैं तो हमारे रंगमंच पर अद्भुत प्रकार के दृश्य आते हैं और विचित्र प्रकार के अभिनेता (actors) अपना काम दिखाते हैं। इन दृश्यों और अभिनयों का हमारे मन पर प्रभाव पड़ता है और इससे हमारा नैतिक जीवन अच्छा वा बुरा बनता है। यह जगत भी एक प्रकार की नाट्यशाला है और मनुष्य इसमें एक्टर है जो किसी न किसी प्रकार का अभिनय इस मंच पर कर रहा है। उदाहरण रूप में—हमारे निवास स्थान की बाईं ओर कपास और कपड़े का कारखाना है, जिसमें हज़ारों मज़दूर काम करते हैं। प्रातःकाल हज़ारों की संख्या में मज़दूर कारखाने में प्रविष्ट होते हैं, अपनी उपस्थिति देते हैं और

कारखाने के विभिन्न विभागों में जाकर अपना काम आरम्भ कर देते हैं। कारखाने के संचालक भी साथवाले कार्यालय के कमरे में कपास की लागत तथा बुने हुये कपड़े के बेचने तथा हानि लाभ आदि की गणना में लगे हुए हैं। अकस्मात ही घण्टी बजती है और कारखाने के मजदूर हड़ताल करके बाहिर निकल आते हैं। कारखाने के बाहिर मजदूर सभा के मन्त्री की ओर से एक लम्बा चौड़ा विज्ञापन लगा हुआ है जिसमें मजदूरों के वेतन और काम करने के घण्टों के सम्बन्ध में कई माँगें दर्ज हैं। कारखाने से कुछ आगे एक सुन्दर विशाल मन्दिर के भवन पर 'आर्य समाज मन्दिर' लिखा हुआ है। भवन के अंदर संकीर्तन हो रहा है। इस से कुछ आगे सड़क के समीप पार्क में गीता के उपदेश में कर्मयोग का महत्व वर्णन हो रहा है, श्रोतागण कर्मयोग के सुन्दर और सफल जीवन की कल्पना के चित्र मन में अंकित कर रहे हैं। दूसरी ओर राष्ट्र विद्यालय में सैकड़ों की संख्या में विद्यार्थी अपनी २ श्रेणियों में विद्या ग्रहण कर रहे हैं, वहां बौद्धिक तथा क्रियात्मक रूप से छात्रों को भविष्य में सच्चा नागरिक बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इसी ढंग के कई विचित्र दृश्य परिवारों, गाँव के खेतों, नगरों के बाजारों, क्रिकेट क्लबों, सेवा सदनों, हस्पतालों, मोटर बसों के अड्डों और बड़ी २ मण्डियों आदि के स्थानों पर प्रतिदिन आँखों के सामने आते हैं। इन को देखकर हमारी बुद्धि आश्चर्य से चकित हो जाती है।

२—शायद इन विचित्र दृश्यों को सामने रखकर इंगलैंड का प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपियर कहता है कि जगत एक रंगमंच (stage) है और मनुष्य उसमें प्रधान अभिनेता (chief actor) है। यह सत्य है कि विभिन्न प्रकार के संघ—सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक आदि, जिन का वर्णन पहिले हो चुका है, विचित्र रंगमंच हैं, जिस पर मनुष्य अपने विचित्र स्वभाव और विभिन्न आवश्यकताओं के अधीन होकर विभिन्न प्रकार के खेल और नाटक खेल रहा

है। ये खेल वास्तव में नागरिक जीवन के अधिकारों और कर्त्तव्यों के चमत्कार हैं, जिनका विस्तारपूर्वक वर्णन आगे जाकर किया गया है। भिन्न २ संघों का निर्माण इन अधिकारों को रक्षा के लिये किया जाता है और जब इन अधिकारों का पूंजीपतियों की ओर से दुरुपयोग किया जाता है तो ये संघ अपना नाटक रचा कर उनको सुधारने का प्रयत्न करते हैं। इन सम्पूर्ण संघों की आत्मा मनुष्य है, यदि मनुष्य को इन संघों से निकाल दिया जाए तो सारा जगत श्मशानभूमि बन जाए। इस लिए नि:सन्देह हम कह सकते हैं कि सामाजिक जीवन की इकाई मनुष्य या व्यक्ति है।

३– इन संघों और संगठनो का निर्माण केवल व्यक्ति के सुख और उन्नति के लिए किया जाता है। यदि कोई संघ अपने इस उद्देश्य की पूर्ति में सफल नहीं होता तो यह संघ निरर्थक होकर समाप्त हो जाता है। संघ और व्यक्ति या समाज और व्यक्ति या राज्य और व्यक्ति के सम्बन्ध में नीतिज्ञों के विचार कई समूहों में विभक्त हैं। कई नीतिज्ञ समाज और राज्य को उद्देश्य और व्यक्ति को इसका साधन बताते हैं और कोई नीतिज्ञ व्यक्ति को उद्देश्य और समाज या राज्य को इसकी उन्नति और सुख का साधन मानते हैं, परन्तु तथ्य यह है कि वस्तुतः व्यक्ति ही सामाजिक जीवन की इकाई है। इन इकाईइयों के सुख और उन्नति के जोड को राज्य व समाज की उन्नति और सुख का नाम दिया जाता है। व्यक्ति के महत्व की उपेक्षा बड़ी भारी भूल होगी, परन्तु व्यक्ति को मनमानी करने से रोकना भी समाज या राज्य का कर्त्तव्य है। अतः निष्कर्ष यह है कि समाज या राज्य और व्यक्ति का हित इसी में है कि दोनों अपने परस्परिक सहयोग और सहायता से मनुष्य जीवन को सुन्दर, सुखी और सफल बनाएं।

Questions(प्रश्न)

1. What is an Association? Why does man

more in Associations ?
संघ क्या होता है ? मनुष्य क्यों संघों में रहता है ?

2. What are the main Associations in which a modern community organises itself ?
Discuss briefly the functions of some of these Associations.
संघों के मोटे २ प्रकार लिखो, जिन में आज कल मनुष्य काम करता है। कुछ संघों के कर्त्तव्य संक्षिप्त रूप से वर्णन करो।

3. Discuss that Man is the Unit of Civic Life
मनुष्य सामाजिक जीवन की इकाई है, इसकी आलोचना करो।

4. "The family is the eternal scoool of Social Life." Explain and discuss.
"परिवार सामाजिक जीवन की स्थायी पाठशाला है।" इस की व्याख्या और आलोचना करो।

5. Write short notes on—
(a) Joint family
(b) Caste system
निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त नोट लिखो—
(क) संयुक्त परिवार
(ख) वर्ण व्यवस्था

6. Write down the advantages of Associations.
संघों के लाभों पर निबन्ध लिखो।

चौथा अध्याय

राज्य की परिभाषा, उत्पत्ति और अङ्ग

(Meaning of the State. its Origin and Parts)

१. राज्य की परिभाषा

(Meaning of the State)

१—पिछले अध्यायों में समाज और सङ्घों की व्याख्या की गई है और बताया गया है, कि राज्य भी एक प्रकार का सङ्घ है। साधारणतया हर एक ऐसे देश को, जहाँ राजनैतिक सङ्गठन हो, राज्य (State) कहते हैं। कोई देश कितना ही बड़ा क्यों न हो और उसमें कितने ही सङ्घ क्यों न काम कर रहे हों, यदि वहां राजनैतिक सङ्गठन नहीं है तो वह देश राज्य नहीं कहला सकता।

२—राज्य एक बहुत महत्वशाली सङ्घ है, और उसकी परिभाषा भिन्न २ लेखकों ने भिन्न २ प्रकार से की है। परन्तु वे सब इस बात पर सहमत हैं कि राज्य जनता का एक राजनैतिक सङ्गठित सङ्घ है जो देश के अन्दर रहने वाले मनुष्यों की सामूहिक आवश्यकताओं की पूर्ति, सांझे उद्देश्यों की सफलता और साधारण जनता के सुख, उन्नति और रक्षा के साधनों का प्रयोग करने के लिए बनाया जाता है। प्रधान विल्सन (President Wilson) लिखता है कि "राज्य एक सङ्गठित सङ्घ है जिसको पृथ्वी के किसी विशेष खण्ड या देश में कानून (विधान) चलाने के लिए बनाया जाता है।" एक दूसरे नीतिज्ञ गार्नर का मत है कि राज्य मनुष्यों का एक सङ्घ होता है,जो किसी विशेष भूमिखण्ड पर अधिकार रखते हैं, किसी अन्य देश या राजा के अधीन नहीं होते, जिनकी अपनी सरकार होती है, और जो स्वाभाविक रूप में अपने राज्य

(State) के कानूनों का पालन और नियन्त्रण करते हैं। प्रोफेसर होलैंड (Pro : Holand) राज्य का अर्थ इस प्रकार लिखता है—राज्य मनुष्यों के एक बड़े समूह को कहते हैं जो पृथ्वी के किसी विशेष भाग पर अधिकार किए होता है और जिसमें वहां रहने वालों के बहुमत (majority) या किसी विशेष सङ्घ की इच्छा अनुसार शासन होता है। एक और नीतिज्ञ लिखता है कि राज्य एक शक्ति है जिससे दूसरी शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं। इन सब विचारों का भावार्थ यह है कि राज्य किसी विशेष भूमिखण्ड में एक ऐसा स्वतन्त्र सङ्गठन होता है जिसके द्वारा मनुष्य के अधिकार और कर्तव्य नियत किये जाते हैं, राज-शासन के कानून (विधान) अच्छे सिद्धान्तों के अनुकूल बनाए जाते हैं, और राज्यनिवासी उसविधान या कानून की आज्ञाओं का पालन करते हैं।

२. राज्य की उत्पत्ति
(Origin of the State)

राज्यसंस्था बहुत पुरानी है और इसकी उत्पत्ति का ठीक २ पता लगाना सरल नहीं। इस विषय के सम्बन्ध में बहुत से राजनैतिक विद्वानों ने बहुत कुछ अनुमान और तर्क वितर्क से काम लिया है और राज्य की उत्पत्ति और इसके रूप के कई सिद्धान्त (theories) घड़े हैं। उनमें से कुछ सिद्धान्तों की व्याख्या और आलोचना हम नीचे करते हैं—

[१] बल प्रयोग का सिद्धान्त (Force Theory)—इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य बल प्रयोग से स्थापित होते हैं। शक्तिशाली पुरुष दुर्बल और हीनों को दबाकर अपने अधीन कर लेते हैं। जीतने वाले शासक बन जाते हैं और हारे हुये प्रजा बन जाते हैं। जिसकी लाठी उसकी भैंस (Might is Right) के सिद्धान्त के अनुसार निर्बल पर सबल का शासन होना प्रकृति का नियम है। प्राचीन काल में बलद्वारा एक परिवार दूसरे परिवार के, एक वंश दूसरे वंश के, एक जाति दूसरी जाति के, एक देश दूसरे देश के अधीन हुआ; वर्तमान-

काल में भी विभिन्न राज्य शक्ति वा बल द्वारा चल रहे हैं। हर एक राज्य ने बाहरी शत्रुओं के आक्रमण से बचने के लिये, और देश में शान्ति और व्यवस्था स्थापित करने के लिए सङ्गठित बल अथवा बड़ी संख्या में सेना और पुलिस का प्रबन्ध किया हुआ है। इससे स्पष्ट है कि इतिहास बल प्रयोग के सिद्धान्त की पुष्टि करता है।

समीक्षा—इसमें संदेह नहीं कि प्रायः बहुसंख्यक राज्य बल द्वारा स्थापित किये हुये हैं और बल द्वारा ही चलाए जाते हैं। परन्तु राज्य-सत्ता केवल मात्र पाशविक बल (brute force) पर अवलम्बित नहीं। यदि हम केवल मात्र पाशविक बल को ही राज्य का कारण मान लें तो राज्य करने के अधिकार और राजाज्ञा पालन करने का कर्तव्य आदि सब निरर्थक हो जाते हैं। प्रायः सभी राज्य प्रजा की भक्ति और विश्वास पर ही स्थिर हैं। इङ्गलैंड का प्रसिद्ध नीतिज्ञ ग्रोन बल को नहीं बल्कि प्रजा की इच्छा को राज्य का मूल मानता है। प्रजासत्तात्मक विचारों के फैलने से आधुनिक सम्पूर्ण राज्य प्रायः प्रजा की स्वीकृति (consent) पर स्थिर हैं। जो राज्य जितना ही उन्नतिशील और सभ्य होगा, उतनी ही उसमें बल प्रयोग की न्यूनता होगी और प्रजा की अभिरुचि की अधिकता होगी।

[२] दैवी संभूति सिद्धान्त (Theory of Divine Origin)—मध्य कालीन यूरोप में यह सिद्धान्त बहुत प्रचलित था। हिन्दू धर्म ग्रन्थों में भी इसी सिद्धान्त का उल्लेख है। इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य में ईश्वरीय अंश का विश्वास किया जाता है। इस कारण राजा की इच्छा ईश्वर की इच्छा है और उसकी आज्ञा का पालन प्रत्येक प्रजाजन का कर्तव्य समझा जाता था। यूरोप में तो यह विश्वास इतने तक बढ़ गया था कि लोग राजा को दोनों लोकों का स्वामी मानते थे। इसलिये दोनों लोकों के सुधार के लिए प्रत्येक व्यक्ति को राजाज्ञा का पालन अनिवार्य्य था। होते २ लोगों के विचार इतने प्रभावित हुए कि वे राजा की किसी बात पर आलोचना करना भी पाप

समझते थे। उनका विश्वास था कि राजा का लोगों के प्रति कोई उत्तर-दायित्व नहीं बल्कि वह तो ईश्वर का प्रतिनिधि है और जो कुछ करता है, ठीक करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार राजा जो कानून बनाता है प्रजा उसको मानने को बाध्य है, परन्तु राजा स्वयं उस कानून को माने या न माने, यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। राजा के विरुद्ध विद्रोह करना न केवल अपराध है बल्कि पाप भी है। इसलिए यह सिद्धान्त दैवी संभूति सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

समीक्षा—इस सिद्धान्त का परिणाम बहुत बुरा निकला। राजा प्रजा पर अत्याचार करने लगे, प्रजा से बड़ी मात्रा में कर प्राप्त करने लगे, स्वयं व्यभिचार की दलदल में फंस गए और ऐसे २ न करने योग्य दुराचार और उपद्रव किए जिनको सुनकर हृदय कांप उठता है। इस सिद्धान्त ने साधारण जनता को शासकों के हाथ की कठपुतली बना दिया और शासकों के हाथों में इतने अधिकार दे दिये कि मानव जीवन भी नरक का दृश्य बन गया। ऐतिहासिक विचार से भी यह सिद्धान्त हानिकारक है क्योंकि केवल पक्षपात रहित शासन किसी स्थान पर स्थापित नहीं होता। भारतीय इतिहास में तो राजा सदा देश के निःस्वार्थ और त्यागी ऋषियों की सम्मति से राजशासन करते थे। इस में प्रजा अत्यन्त सुखी था। राम राज्य एक आदर्श राज्य था, क्योंकि राजा प्रजा के हित को अपना धर्म और मुक्ति का साधन मानता था। यदि प्रजा का यह कर्तव्य रहा कि वह राजा की आज्ञा का पालन करे तो राजा का भी अनिवार्य धर्म था कि वह केवल प्रजा के हित और उन्नति के साधनों का प्रयोग करे। ज्यों २ विज्ञान ने उन्नति की और अन्धविश्वास का स्थान विवेक और अनुसन्धान (discrimination & criticism) ने लिया तो लोग इस तत्व को समझने लगे कि मनुष्य मात्र भाई हैं और सब का एक दूसरे के हित में सहयोग देना परम धर्म है। इसका परिणाम यह हुआ कि अब यह सिद्धान्त केवल मात्र कहानी ही रह गया है।

[३] सामाजिक समझौते वाला सिद्धान्त (Social Contract Theory)--यह सिद्धान्त बहुत पुराना है। प्लेटो ने अपनी पुस्तक रिपब्लिक (Republic) में इसका वर्णन किया है। इस सिद्धान्त के प्रसिद्ध समर्थक रूसियो (Rousseau) फ्रांस के प्रसिद्ध दार्शनिक हैं जिसने राज्य की उत्पत्ति और स्वरूप को स्पष्ट करने का पूरा प्रयत्न किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य आदिम अवस्था में वन में अकेला रहता था। उस समय न राज्य था और न समाज। प्रत्येक मनुष्य अपना स्वयं स्वामी था और अपनी इच्छा के अनुसार सब कार्य्य करता था। इस आदिम अवस्था को प्राकृतिक अवस्था(state of nature) का नाम दिया गया है। इस सिद्धान्त के कुछ समर्थकों का विचार है कि प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य अकेला, निर्धन, दीन, मलिन, जङ्गली और थोड़ी आयु वाला था। परन्तु रूसियो और उसके साथी प्राकृतिक अवस्था को पृथिवी पर स्वर्ग का नाम देते हैं और कहते हैं कि उस अवस्था में मनुष्य सुखी, निष्पाप और पूर्णतया स्वतन्त्र था। सब मनुष्य एक समान थे और किसी के कन्धों पर शासक और कानून का बोझ न था। न कोई राजा था और न कोई प्रजा। रूसियो की यह घोषणा है कि "मनुष्य स्वतन्त्र जन्मा था, परन्तु हर जगह पर शृंखलाओं में बंधा हुआ है।"

परन्तु प्राकृतिक अवस्था में स्वतन्त्रता स्थायी और सुरक्षित न थी क्योंकि कोई शासक न था जो अपराधियों को दण्ड देता। इस कारण यह अवस्था बहुत काल तक न रह सकी, क्योंकि जीवन की रक्षा न थी और मनुष्यों को बहुत से कष्टों से संघर्ष करना पड़ता था। इसलिए वे इकट्ठे हुए और आपस में एक समझौता किया, एक बलवान और योग्य व्यक्ति को राजा बनाया, साधारण जनता ने अपनी इच्छा से प्राकृतिक स्वतन्त्रता का त्याग किया और इसके बदले एक संगठित समाज के सदस्य बनकर, अपने जीवन की अन्य आवश्यक-

शाओं की पूर्ति के लाभ के अधिकार प्राप्त किए। इस प्रकार समाज और राज्य की उत्पत्ति हुई।

नीतिज्ञ हाब्स (Hobbes) के मतानुसार साधारण जनता ने अपने सभी अधिकार बिना किसी शर्त के राजा को दे डाले और राजा निरंकुश शासक बन गया। अर्थात् राजा सर्वशक्तिमान् बन गया और प्रजा को इसका विरोध करने का अधिकार न रहा। इस प्रकार इस सिद्धान्त ने निरंकुश राज्य (Autocracy) को जन्म दिया।

नीतिज्ञ लॉक (Locke) के मतानुसार प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य को खाने-पीने के लिए पर्याप्त मिल जाता था और वह स्वतन्त्र और सुखी रहता था। केवल दो असुविधाएं कष्ट का कारण थीं। प्रथम कोई कानून न था, हर एक अपनी मनमानी कर सकता था, और दूसरी न्यायालय का अभाव था, इस कारण अपराधी पर कोई नियंत्रण न था। इन दो असुविधाओं को दूर करने के लिए सामाजिक समझौते वाले राज्य और सरकार का संगठन किया गया और सरकार को ये दो अधिकार (विधान और न्याय) सौंपे गए। सरकार के अधिकार परिमित थे। जभी सरकार इन अधिकारों का उचित प्रयोग न करती थी तो इसको नष्ट करना जनता के हाथ में था। लॉक के विचारानुसार सामाजिक समझौते वाला राज्य-शासन जनता के अधिकारों का रक्षक और नियमित शासन का समर्थक था। दूसरे शब्दों में शासन-शक्ति राजा के हाथ में नहीं बल्कि जनता के हाथ में थी।

रूसियो के मतानुसार प्राकृतिक अवस्था आदर्श अवस्था थी। लोग सीधे-सादे थे और उनकी आवश्यकताएं थोड़ी थीं, वे हर प्रकार स्वतन्त्र थे और अपनी इच्छानुसार भोजन करते थे। जब जन-संख्या बढ़ गई तो लोग खेती-बाड़ी और दूसरे व्यवसाय करने लगे। जब भूमि आदि पर झगड़े आरम्भ हुए, तो धनवान और निर्धन का भेदभाव उत्पन्न हुआ दरिद्रों को धनाढ्य दबाने लगे और लूट-खसूट का बाजार

गर्म हुआ। इन कष्टों से मुक्त होने के लिए लोगों ने समझौते द्वारा राज्य स्थापन किया। क्योंकि यह समझौता लोगों की इच्छानुसार हुआ, इसलिए रूसियो ने इसे जनसाधारण का राज्य या प्रजातन्त्र माना और इसका प्रचार करते रहे।

समीक्षा—इस सिद्धान्त ने अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप और अमेरिका के राजनैतिक विचारों में बड़ी क्रान्ति उत्पन्न की। समझौते के सिद्धान्त में जनता की स्वीकृति का विचार फ्रांस और अमेरिका के लोगों ने बहुत पसन्द किया। फ्रांस की क्रान्ति और अमेरिका की स्वतन्त्रता को इस विचार से पुष्टि मिली। जन्म लेते समय मनुष्य स्वतन्त्र होता है, राज्य करने का अधिकार केवल लोगों की इच्छा वा स्वीकृति से प्राप्त होता है और राज्यशक्ति का प्रयोग केवल साधारण जनता के हित के लिए किया जाता है। इन विचारों का प्रभाव यह होता है कि राज्य केवल प्रजा की इच्छा वा स्वीकृति से स्थापित होता है और राजा को प्रजा पर अत्याचार करने का कोई विचार नहीं रहता।

इस सिद्धान्त में भी कई त्रुटियां हैं। सर्वप्रथम तो इतिहास से इस सिद्धान्त को पुष्टि नहीं होती। इतिहास में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता कि किसी समय पर किसी देश में आदिम मनुष्य ने परस्पर समझौते के द्वारा किसी राजनैतिक संघ की स्थापना की हो। मनुष्य स्वभाव से सामाजिक जीव है, और यह कहना कि किसी काल में मनुष्य सामाजिक अवस्था के बिना रहा है, तर्क और युक्ति विरुद्ध (illogical) है और न ऐसा विचार में आ सकता है। ह्याम ने वर्णन किया कि जंगली मनुष्य किसी प्रकार किसी युग में दूसरे जंगली मनुष्यों के साथ समझौते द्वारा सभ्य और संगठित हो गया होगा क्योंकि सामाजिक जीवन की भलाई को केवल वही समझ सकता वा अनुभव कर सकता है जो समाज में रह चुका हो। यदि यह मान लें कि मनमानी करतूतों के करने वाले, जगली पशुओं के समान जंगल

में भ्रमण करने वाले आदिम मनुष्य ने किसी समय पर ऐसा समझौता कर भी लिया हो, जिस समझौते के द्वारा उसने अपनी स्वतन्त्रता को खो दिया हो, सन्देहास्पद है, और बुद्धि विश्वास नहीं कर सकती। इसके अतिरिक्त राजा का सदस्य होना भी आवश्यक है ऐच्छिक नहीं। इस कारण यह सिद्धांत राजनैतिक ढंग से भी ठीक नहीं सिद्ध होता। गार्नर (Garner) का कहना है कि यह सिद्धान्त केवल ऐसे लोगों के मन का आविष्कार है जो निरंकुश शासन की पुष्टि करते थे और प्रजा की इच्छा या आवाज का दमन करना चाहते थे।

[४] विकासवादी सिद्धान्त—(Evolutionary Theory)-इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य के मूल तत्व पहिले से ही मनुष्य जीवन में उपस्थित हैं और राज्य का वर्तमान स्वरूप इन तत्वों का हजारों वर्षों के क्रमशः विकास का परिणाम है। प्रत्येक देश और काल के मनुष्यों में राज्य किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान था। राज्य न तो ईश्वर निर्मित संस्था है न ही किसी मनुष्य का आविष्कार है बल्कि यह एक प्राकृतिक उपज है। इस सिद्धान्त का केन्द्रीय विचार (central thought) यह है कि राज्य ऐतिहासिक विकास है और इस विकास के सहायक तत्त्व प्रायः तीन हैं—(१) रक्त और वंश का संबंध (kinship) (२) धर्म, मत वा सम्प्रदाय (religion) (३) राजनैतिक जागृति (political consciousness)। आर्थिक समस्याओं ने भी राज्यों और राष्ट्रों को बनाने और बिगाड़ने में भाग लिया है।

(१) राज्य का प्रथम स्वरूप 'परिवार' माना गया है। परिवार दो प्रकार के हैं—मातृ प्रधान और पितृ प्रधान। मातृ प्रधान मत में राज्य का आदिम स्वरूप समूह (horde or pack) था, समूह से विभक्त हो कर वंश (clan) और वंश से विभक्त होकर परिवार (family) और परिवार से विभक्त होकर मातृ प्रधान कुटुम्ब (matriarchal family) बना। पितृ प्रधान मत के अनुसार राज्य

का आदिम स्वरूप पिता का अधिकार और आज्ञाकारी सन्तान था। वह परिवार वालों को मृत्यु तक दण्ड देने और बेच देने का अधिकार रखता था। होते २ एक कुटुम्ब के कई कुटुम्ब बन गए। इन सबको मिलाकर वंश (clan) बना और कई वंशों को मिलाकर कुल (tribe) बना और कई कुलों के मेल से अन्त में राज्य बना। इस प्रकार राज्य कुटुम्ब का ही परिवर्द्धित रूप है।

(२) धर्म या मत ने राज्यों की स्थापना में बड़ा भाग लिया। प्राचीन काल में धर्म, मत और राजनीति में कोई भेद न था। मनुष्य समाज की आरम्भिक अवस्थाओं (stages) में धर्म मत ने मनुष्य के लौकिक जीवन को अपने अधीन रखा, परन्तु अब धर्म मत को राजनीति से पृथक कर दिया गया है। इस समय भारत का नवीन विधान लौकिक (secular) है और इसमें धर्म मत का किसी प्रकार भी प्रवेश नहीं है।

(३) राज्य के विकास में सब से अधिक महत्वपूर्ण तत्व राजनैतिक जागृति है। राजनैतिक जागृति का अभिप्राय यह है कि देश के अन्दर सुख, शान्ति और जीवन की आवश्यकताओं की अधिकता हो, और बाहिरी शत्रुओं के आक्रमण का भय न हो। यह सुविधाएं केवल राजनैतिक सङ्गठन द्वारा प्राप्त हो सकती हैं। राष्ट्रीय राज्य साधारण जनता की सामूहिक इच्छा और स्वीकृति से स्थापित हुये परन्तु राज्य-शासन राजाओं और शक्तिशाली व्यक्तियों के हाथ में रहा। राजनैतिक संस्थाओं ने धीरे २ विकास किया। प्रारम्भिक अवस्था में ये संस्थाएं इतनी असंगठित थीं कि इनको राजनैतिक संस्था का नाम देना भी उचित न होगा। परन्तु ज्यों २ राजनैतिक जागृति बढ़ती गई और जनता को अपने अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान होता गया, यह छोटी छोटी संस्थाएं पूर्ण राज्यों के रूप मे परिवर्तित हो गईं।

समीक्षा—विकासवादी सिद्धान्तों में अन्य सिद्धान्तों की अच्छी अच्छी बातें सम्मिलित हैं। दैवीसंभूति सिद्धान्त ने मनुष्य मे सामा-

जिक जीवन की जागृति उत्पन्न की। इस जागृति द्वारा स्वभावतया वह भिन्न २ संघों में रहने लगा। बल प्रयोगी सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए संगठित बल वा सेना की रूप-रेखा उपस्थित हो जाती है। अर्थात् सबलों ने निर्बलों को पराजित किया और राज्यों की स्थापना हुई। देश को बाहिरी शत्रुओं से बचाने के और राज्य के अन्दर शांति रखने के लिए शक्तिदल की आवश्यकता होती है। इस कारण राजा ने सेना और पुलिस का प्रबन्ध किया। राज्य को स्थिर रखने में साधारण जनता की इच्छा और स्वीकृति (will and consent) ने भी महत्त्वपूर्ण भाग लिया। यदि प्रजा देश के राज्य शासन से असन्तुष्ट हो तो देश में अराजकता फैल जाए और राज्य का सर्वनाश हो जाए। यहां पर सामाजिक समझौते से मौलिक तत्व की सहायता ली गई है कि राज्य को स्थायी बनाने के लिये साधारण जनता की इच्छा और उनके अधिकारों का ध्यान रखना एक अच्छे राज्य का महान् कर्तव्य है। यदि इन बातों के साथ २ समाज और राज्य के विकास के इतिहास का भी अध्ययन किया जाए तो राज्य का अत्यन्त सुन्दर स्वरूप आंखों के सामने उपस्थित हो जाएगा। केवल ऐसा सुन्दर राज्य ही मनुष्य जीवन को सफल और सुन्दर बना सकता है।

३. राज्य के आवश्यक अङ्ग
(*Essential Parts of the State*)

राज्य की परिभाषा में चार वस्तुएं सम्मिलित हैं—भूमि, जनता, शासन और सर्वोच्च सत्ता (Sovereignty)—इन वस्तुओं की अनुपस्थिति में कोई संघ राज्य नहीं कहला सकता। नीचे हम राज्य के इन चारों अङ्गों का वर्णन करते हैं—

[१] जनता—राज्य का पहला और आवश्यक अङ्ग जनता है। एक द्वीप (*island*) जिसमें एक भी मनुष्य निवास न करता हो, राज्य कहलाने का अधिकार नहीं। वस्तुतः राज्य मनुष्यों का एक सङ्घ है परिवार भी एक संघ है परन्तु यह राज्य नहीं कहला सकता, क्योंकि इस राज्य के ##### अङ्ग

पूर्ण रूप में विद्यमान न होंगे। जनसंख्या कितनी होनी उचित है इसका कोई नियत परिमाण नहीं है। प्राचीन काल में यूनान देश में बहुत से छोटे २ राज्य थे और राज्य की जनसंख्या हजारों तक होती थी, परन्तु वर्तमान काल में राज्यों की जनसंख्या करोड़ों की है। जनसंख्या की अधिकता की कोई सीमा नहीं परन्तु कम से कम जनसंख्या इतनी तो हो कि राज्य का प्रबन्ध भली भांति चल सके।

[२] भूमि—राज्य का दूसरा आवश्यक अङ्ग भूमि है। कोई भी बड़ा जनसमूह बिना किसी विशेष भूमि पर अधिकार के राज नहीं कहला सकता। यद्यपि यहूदी यूरोप के प्रायः सभी देशों में फैले हुए थे, उनकी जनसंख्या भी बहुत थी परन्तु भूमि के किसी विशेष भाग पर उनका अधिकार न था, इसलिए वे कोई राज्य स्थापित न कर सके। अब फिलिस्तीन के कुछ भाग पर उनका अधिकार हो गया है और वहां उन्हों ने इस्राईली राज्य की स्थापना की है। अमेरीका और रूस आदि राज्यों ने इस राज्य को स्वीकार कर लिया है। जब राज्य की प्रजा के पास अपने रहने के लिए निवासस्थान न हो तो वे राज्य कैसे चला सकते हैं। इसलिए किसी राज्य के लिए उसके अधिकार में भूमि का होना अनिवार्य है।

[३] सरकार या शासन प्रबन्ध—केवल जनता और अधिकृत भूमि से कोई राज्य स्थापित नहीं हो सकता, जब तक राजनैतिक सङ्गठन नहीं है। राज्य और राजनैतिक सङ्गठन का दृढ़ और अटूट सम्बन्ध है। राजनैतिक सङ्गठन के द्वारा ही राज्य स्थापित होता है। जब यह सङ्गठन टूट जाता है तो राज्य की काया छिन्न-भिन्न हो जाती है और देश में अराजकता फैल जाती है। राजनैतिक सङ्गठन वा राज्यशासन-प्रबन्ध को सरकार भी कहते हैं। सरकार राज्य की मैशीन है। जिस प्रकार मैशीन के बिना कोई मिल चालू नहीं हो सकती, इसी प्रकार सरकार के बिना किसी अवस्था में भी राज्य स्थिर नहीं हो सकता।

सरकार ही राज्य में कानून बनाती है और उस पर आचरण करती और देश के अन्दर शान्ति और व्यवस्था का प्रबन्ध करती है ।

[४] राजसत्ता—राज्य का चौथा अनिवार्य अङ्ग राजसत्ता व सर्वोच्चसत्ता (Sovereignty) है । विशेष भूमि, जनसंख्या और सरकार के अतिरिक्त सर्वोच्चसत्ता ही राज्य की एकता और स्वतन्त्रता को स्थिर रख सकती है । जिस देश की सरकार पूर्ण स्वतन्त्र है, जिस देश में निवास करने वाली जनता देश का कानून बनाने का अधिकार रखती है और उस कानून का पालन पूर्णतया करती है, वही देश राज्य कहलाने का अधिकारी है । सर्वोच्चसत्ता राज्य की सर्वप्रधान शक्ति है । भारत देश १५ अगस्त सन् १९४७ से पूर्व स्वतन्त्र न था और देश की सर्वोच्चसत्ता अंग्रेजों के हाथ में थी । इस लिये अगस्त १९४७ से पहले भारतवर्ष, भूमि, जनसंख्या और सरकार के होते हुए भी राज्य (State) न था ।

४. राजसत्ता का अभिप्राय

हर एक राज्य में अनेक अधिकारी होते हैं परन्तु इन सब की शक्ति समान नहीं होती । छोटे अधिकारी बड़े अधिकारियों की आज्ञा मानते हैं । जो सब से बड़ा अधिकारी होता है उसकी आज्ञा सब मानते हैं । इस सबसे बड़े अधिकारी को अधिराज(Sovereign) कहते हैं और इसकी अधिकार-शक्ति को सर्वोच्चसत्ता कहते हैं । सर्वोच्चसता ही राज्य का सबसे बड़ा और आवश्यक लक्षण है और केवल इसी लक्षण द्वारा राज्यसंघ का अन्य संघों से भेद कर सकते हैं । थोड़े शब्दों में सर्वोच्चसत्ता का अर्थ यह है कि राज्य राज्यभूमि की सीमाओं के भीतर रहने वाले हर एक मनुष्य तथा वस्तु से बड़ा है और बाहिरी नियन्त्रण से भी स्वतन्त्र है । इस प्रकार सर्वोच्च सत्ता अपने आन्तरिक और बाह्य कार्यों में तथा अधिकार में असीम (unlimited) है । अपने राज्य के अन्दर केवल यही शक्ति

विधान की आज्ञाओं का हर एक से पालन करवाने में पूरा अधिकार रखती है, और स्वयं भी अपने बनाए विधानों से ऊंची है।

विभिन्न नीतिज्ञों ने सर्वोच्च सत्ता की परिभाषा भिन्न २ प्रकार से की है। बरगेस(Burgess) के मतानुसार सर्वोच्चसत्ता प्रजा के व्यक्तिगत तथा संगठित जीवन के सम्बन्ध में आदर्श (original) निर्बाध(absolute), असीम (unlimited) और सर्वव्यापी (universal) अधिकार रखती है। नीतिज्ञ बोडिन(Bodin) लिखता है कि सर्वोच्च सत्ता सारे राज्य पर सब से बड़ा अधिकार है, जिसको कोई भी विधान दबा नहीं सकता। डुजिट (Dugit) का कहना है कि सर्वोच्च सत्ता राज्य की शासनशक्ति है और राज्य में संगठित जाति वा राष्ट्र की इच्छा का अवतार है इस लिये राज्य की सीमा में रहने वाले व्यक्तियों को बिना किसी शर्त के आदेश देने का इसे अधिकार है। सर्वोच्चसत्ता की सर्वप्रिय परिभाषा नीतिज्ञ आस्टिन (Austin) ने की है—"जो मनुष्य दूसरों को आज्ञा प्रदान करते हुए स्वयं किसी की आज्ञा मानने के लिए बाध्य नहीं, वह अधिराज है। जिस समाज वा देश में आज्ञाओं का पालन निर्बाध रूप से होता है, वह राज्य कहलाता है। राजा और प्रजा की पूरी व्याख्या स्वतन्त्र समाज वा देश में हो सकती है। सर्वोच्चसत्ता अधिराज की सबसे बड़ी राजनैतिक शक्ति है। इसको न कोई दबा सकता है और न बाहिर निकाल सकता है। सर्वोच्चसत्ता के बिना कोई राज्य जीवित नहीं रह सकता। जिस प्रकार एक परिवार में स्वामी की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार राज्य में भी स्वामी की आवश्यकता होती है। यही स्वामी सर्वोच्च सत्ता का अधिकारी, अधिराज वा राजा कहलाता है। इसी सर्वोच्चसत्ता के अधिकारी के भिन्न २ देशों में भिन्न २ नाम हैं—कहीं अधिनायक वा तानाशाह (Dictator), कहीं राजा (King) और कहीं प्रधान (President)। परन्तु इन सब को एक ही प्रकार की शक्ति प्राप्त होती है

और यह शक्ति सर्वोच्चसत्ता (Sovereignry) कहलाती है।"

हर एक राज्य में सर्वोच्चसत्ताधारी (Sovereign) का अस्तित्व अनिवार्य है और राज्य-शासन के सभी कार्य उसके निर्देश (direction) और संकेत (इशारे) पर होते रहते हैं। भारत का सर्वोच्चसत्ताधारी यहां का राष्ट्रपति (President) है, और शासन सम्बन्धी नियम (कानून) बनाने और उनपर आचरण कराने के लिए ससद (Parliament) and मन्त्रिमण्डल (Cabinet of Ministers) हैं। इस प्रकार भारत राज्य की सर्वोच्चसत्ता (Sovereignty) यहां के राष्ट्रपति, संसद और मन्त्रिमन्डल में स्थित (located) है। यदि गम्भीरता से देखा जाए तो ज्ञात होगा कि वास्तव में सर्वोच्चसत्ता राज्य के इन अधिकारियों में नहीं बल्कि भारत की जनता में केन्द्रित है क्योंकि राष्ट्रपति, संसद के सदस्य और राज्यमन्त्री सब साधारण जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं। स्पष्ट है कि किसी राज्य की सर्वोच्चसत्ता का असली स्थान जनता की इच्छा (general will) है। कोई राज्य केवल उस अवस्था में स्थिर रह सकता और उन्नति कर सकता जब उसके कानून के बनाने और राज्यशासन में जनता की इच्छा का अवलंघन न किया जाय।

५. राज्यसत्ता या सर्वोच्चसत्ता के लक्षण

सर्वोच्चसत्ता के लक्षणों की व्याख्या नीतिज्ञों ने कई प्रकार से की हैं परन्तु इसके ये छः लक्षण सर्वमान्य हैं—

(१) वास्तविकता (Originality)—वास्तविकता का अर्थ यह है कि सर्वोच्चसत्ताधारी (Sovereign) की शक्ति किसी अन्य शक्ति पर निर्भर नहीं बल्कि उसकी शक्ति स्वयं सिद्ध और स्वयम्भू (self-existent) होती है। यदि वह अपनी शक्ति किसी अन्य राज्य व नैतिक समूह से प्राप्त करता है तो वह सर्वोच्चसत्ताधारी नहीं हो सकता। इस अवस्था में तो वह दूसरा व्यक्ति या नैतिक समूह सर्वोच्चसत्ताधारी (Sovereign) होगा।

(२) अनियन्त्रिता (illimitability)—अनियन्त्रिता का अभिप्राय यह है कि सर्वोच्चसत्ता की आज्ञाओं का उल्लंघन न कोई व्यक्ति, न कोई संघ और न कोई अन्य कर सके। यदि कोई भी स्त्री या पुरुष राज्य की सीमाओं के भीतर उसकी सर्वोच्चसत्ता का उल्लंघन किसी रूप में भी करे तो वह दण्ड का भागी होगा। इसी प्रकार राज्य की सर्वोच्चसत्ता को अन्य राज्यों के आक्रमण से सुरक्षित किया जाए।

(३) अविभाज्यता (Indivisibility)—अविभाज्यता का अर्थ यह है कि सर्वोच्चसत्ता के खण्ड नहीं किए जा सकते। यदि सर्वोच्च-सत्ता को दो या दो से अधिक भागों मे बांटा जाए तो उसकी सर्वोच्च-सत्ता नष्ट हो जाती है। यह बात प्रसिद्ध है कि एक वन में दो सिंह और एक राज्य मे दो अधिराज सर्वोच्चसत्ताधारी नहीं रह सकते। यदि राज्य की भूमि पर दो सर्वोच्चसत्ताधारी हो जाएं तो वह भूमि दो राज्यों में बंट जायगी। स्मरण रहे कि किसी राज्य की सरकार के कर्तव्य तो विभाजित हो सकते है परन्तु राज्य विभाजित नहीं किया जा सकता। भारत एक राज्य है, और उसकी सरकार कई भागों मे बंटी हुई है और हर एक भाग का उत्तरदाता एक मन्त्री है।

(४) अदेयता (Inalienability)—सर्वोच्चसत्ता का दान नहीं हो सकता। यदि यह सत्ता किसी और को दो जाए तो राज्य स्थिर नहीं रह सकता। अमेरिका का नीतिज्ञ लाइबर (Lieber) लिखता है कि जिस प्रकार कोई मनुष्य अपनी आत्मा किसी दूसरे के शरीर मे नहीं डाल सकता और कोई पेड़ अपनी हरियाली किसी दूसरे पेड को नहीं दे सकता, इस प्रकार सर्वोच्चसत्ता किसी दूसरे को नहीं दी जा सकती। इसका तात्पर्य यह नहीं कि एक अधिकारी को हटा कर कोई दूसरा अधिकारी उसके स्थान पर नहीं आ सकता। एक अधिकारी के स्थान पर दूसरे अधिकारी का आ जाना सर्वोच्चसत्ता मे परिवर्तन नहीं अपितु सरकार वा राज्य शासन में परिवर्तन है।

(५) स्थिरता (Permanence)—सर्वोच्चसत्ता सर्वदा राज्य

के अन्दर रहती है। बिना सर्वोच्चसत्ता की उपस्थिति के राज्य स्थिर नहीं रह सकता। यदि सर्वोच्चसत्ता का नाश हो जाए तो राज्य भी समाप्त हो जाता है। इङ्गलैंड में यह कथन प्रसिद्ध है कि राजा कभी नहीं मरता। इसका साधारण अर्थ यह है कि सर्वोच्चसत्ता सदा स्थिर रहती है। यह तो सम्भव है कि राजा मर जाए या बदल जाए, फिर भी कोई न कोई व्यक्ति या व्यक्तियों का संघ ऐसा होगा जो राजा के मरने के बाद सर्वोच्चसत्ता को सम्भाले रखेगा। राज्यशक्ति को सम्भाले या उसको स्थिर रखने के बिना राज्य में अराजकता फैल जाएगी और राज्य विनाश को प्राप्त हो जाएगा।

(६) सर्वमान्यता (universality)—किसी राज्य के सर्वोच्च-सत्ताधारी की आज्ञाओं को मानना राज्य के अन्दर बसने वाले हर एक व्यक्ति तथा व्यक्तियों के समूह का कर्तव्य होता है। सत्ताधारी किसी प्रकार का हुकम क्यों न दे, हर एक राज्यवासी को वह हुकम मानना पड़ता है। इस प्रकार सर्वोच्चसत्ताधारी की शक्ति या अधिकार सारे राज्य के लोगों पर लागू होती है और प्रत्येक नागरिक को उसकी आज्ञा का पालन अनिवार्य है।

६. सर्वोच्चसत्ता के स्वरूप

सर्वोच्चसत्ता का किसी राज्य के साथ वह सम्बन्ध है जो मनुष्य की आत्मा का उसके शरीर के साथ है। जिस प्रकार बिना आत्मा के मनुष्य जीवित नहीं रह सकता, उसी प्रकार बिना सर्वोच्चसत्ता के राज्य स्थिर नहीं रह सकता। किसी राज्य के सफल जीवन के लिए सर्वोच्च-सत्ता अनिवार्य है। सर्वोच्चसत्ता के स्वरूप कई हैं, जिनमें से दो तीन का वर्णन हम नीचे करते हैं—

(१) नाम मात्रिक और वास्तविक सर्वोच्चसत्ता (Titular and actual Sovereignty)—जो राजा देश के विधान के अनुसार तो बड़े २ अधिकार रखता हो परन्तु उनका प्रयोग न कर सकता हो, उसको नाममात्रिक अधिराज कहते हैं। इङ्गलैंड का राजा वास्तविक अधिराज

नहीं है। वह तो केवल नाममात्र का शिरोमणि है और राज्य के सारे अधिकार वहां की पार्लियामेंट और मन्त्रिमण्डल में केन्द्रित हैं। जो निर्णय वे करें उस पर सम्राट् स्वीकृति के लिए मोहर अङ्कित कर देता है। इङ्गलैंड में पार्लियामेंट वास्तविक और सम्राट् नाममात्रिक सर्वोच्चसत्ताधारी है। नाममात्रिक अधिकारी केवल वैधानिक राजसत्तात्मक राज्य Limited monarchy) में होते हैं।

(२) वैधानिक और अवैधानिक सर्वोच्चसत्ता (Dejure and Defacto Sovereignty)—जो सर्वोच्चसत्ताधिकारी वा अधिराज देश के विधान और प्रजा की इच्छा से नियत किया गया हो उसको वैधानिक या वास्तविक अधिराज कहते हैं। इसके विपरीत जो व्यक्ति अपने बल से राज्य स्थापन करे और देश का विधान उसके शासन को स्वीकार न करे उसको अवैधानिक या क्रियात्मक (Defacto) अधिराज कहते हैं।

अमानुल्ला अफ़गानिस्तान का वैधानिक राजा था। उसको देश के विधान और प्रजा ने राजा माना था। परन्तु देश में अराजकता फैली और अमानुल्ला देश से भाग गया। बचा सक्का वहां का राजा बन बैठा। बचा सक्का को न तो प्रजा चाहती थी और न विधान उसे मानता था। परिणाम यह हुआ कि कुछ समय के अनन्तर बचा सक्का को नादिर खान ने भगा दिया और उसके स्थान पर नादिरखान स्वयं अफ़गानिस्तान का राजा बन बैठा। बचा सक्का और नादिरखान दोनों अवैधानिक (Defacto) अधिराज थे। कुछ समय बीत जाने पर प्रजा ने नादिरखान को राजा स्वीकार कर लिया। तब नादिरखान अवैधानिक से वैधानिक राजा हो गया।

(३) वैधानिक और राजनैतिक सर्वोच्चसत्ता (Legal and Political Sovereignty)—वैधानिक सर्वोच्चसत्ताधिकारी वह संस्था है जो राज्य में कानून बनाती है और प्रचलित करती है। इङ्गलैंड और भारत में पार्लियामेन्ट वैधानिक सर्वोच्चसत्ताधिकारी है।

इसके विपरीत राजनैतिक सर्वोच्चसत्ताधिकारी वह संस्था है जो वैधानिक सर्वोच्चसत्ता के अधिकारी का नियन्त्रण करती है। इस प्रकार इंगलैंड में वहां के मतदाता (Voters) और भारत में यहांके मतदाता (Voters) राजनैतिक सर्वोच्चसत्ताधिकारी है क्योंकि वे पार्लियामेन्ट के सदस्यों का चुनाव करते हैं और अपनी इच्छा के अनुसार कानून पास करवाते हैं। रिची (Ritchie) और दूसरे लेखकों का विचार है कि वैधानिक सर्वोच्चसत्ता पर साधारण जनता के बहुमत (Majority) का प्रभाव पड़ता है, इसलिये किसी राज्य में जनता ही सर्वोच्चसत्ताधिकारी है। परन्तु जनता एक प्रकार से सोई हुई सर्वोच्चसत्ताधिकारी है और जब कभी वह जाग पड़ती है तो इसकी ध्वनि को वैधानिक सर्वोच्चसत्ताधिकारी को सुनना पड़ता है और उसके अनुकूल काम करना पड़ता है।

Questions (प्रश्न)

1. Describe the different theories of the Origin of the State and explain which of these is the most satisfactory

   राज्य की उत्पत्ति के भिन्न २ सिद्धान्तों का उल्लेख करते हुए बताओ कि इनमें से कौन सा सिद्धान्त सबसे अधिक सन्तोषजनक है।

2. What are the essential elements of a Sovereign State ?

   सर्वोच्च सत्तात्मक राज्य के आवश्यक अंग कौन २ से हैं ?

3. What do you understand by the Sovereignty of the State ?

   राज्य की सर्वोच्च सत्ता के विषय में अपनी विचारधारा लिखो।

4. What are the essential characteristics of Sovereignty ?

   सर्वोच्च सत्ता के आवश्यक लक्षणों का वर्णन करो।

5. Write short notes on—

(a) Titular and actual sovereignty.

(b) Dejuro and defacto sovereignty.

(c) Legal and political sovereignty.

निम्न लिखित पर संक्षिप्त नोट लिखो—

(क) नाम मात्रिक और वास्तविक सर्वोच्च सत्ता

(ख) वैधानिक और अवैधानिक सर्वोच्च सत्ता

(ग) वैधानिक और राजनैतिक सर्वोच्च सत्ता

पांचवां अध्याय

राज्य और नागरिक

(The State and Citizen)

१. नागरिक की परिभाषा

(Meaning of the Citizen)

१—हर एक देश या राज्य में दो प्रकार के लोग रहते हैं। एक वे लोग जो स्थायीरूप में वहां रहते हैं, जहां उनका जन्म हुआ है जहां उनका पालन-पोषण हुआ है,जहां शिक्षा प्राप्त की है,जहां व्यवसाय या नौकरी करते हैं,जो अपने राज्य के भक्त हैं, अपने राज्य की उन्नति पर प्रसन्न और अवनति पर दुखी होते हैं। दूसरे वे लोग हैं जो वास्तव में किसी अन्य देश के निवासी हैं और अस्थायी रूप से कुछ समय के लिए किसी विशेष काम के लिए वहां रहते हैं और काम समाप्त होने पर अपने देश को छोड़ जाएंगे, जो इस देश के भक्त नहीं और जिनको इस देश की उन्नति और अवनति में कोई उत्साह नहीं। ये दूसरी प्रकार के लोग विदेशी (aliens) कहलाते हैं और पहिले प्रकार के लोग जो इस राज्य के स्थाई निवासी हैं और जिनको इस देश से हर प्रकार की चाह है,इस देश के देशी या नागरिक (citizens) कहलाते हैं। नागरिक का शब्दार्थ है नगर में रहने वाला, परन्तु नागरिक शास्त्र की दृष्टि से गांव वाले और नगर वालों में कोई भेद नहीं। हर एक व्यक्ति जो गांव में रहता है या नगर में, अपने राज्य का नागरिक कहलाता है।

२—इतिहास के भिन्न २ कालों में नागरिक शब्द का अर्थ भिन्न २ रहा है। प्राचीन यूनान में बहुत से छोटे २ नगर थे और हर एक नगर आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक दृष्टि कोण से स्वतन्त्र था।

इन नगर-राज्यों (City-States) में रहने वाले सबके अधिकार समान थे और अपने २ राज्य के नागरिक कहलाते थे। परन्तु इन राज्यों में दासों (slaves) विदेशियों और कभी २ स्त्रियों को नागरिक नहीं माना जाता था और न इनके अधिकार अन्य नागरिकों के समान थे। रोम के इतिहास में जिस व्यक्ति को महाराजाधिराज कुछ अधिकार दे देता था, वह रोम का नागरिक बन जाता था, चाहे वह किसी दूर के नगर वा प्रान्त का रहने वाला क्यों न हो। अर्थात् नागरिक बनने के लिए केवल अधिकार आवश्यक थे न कि किसी विशेष स्थान में रहना। रोमन साम्राज्य में रहने वाले किसी व्यक्ति को रोम का नागरिक माना जाता था, चाहे वह रोम नगर में कभी गया भी न हो। इस प्रकार रोम नगर में रहने वाले नागरिकों को जो अधिकार प्राप्त थे, वे सब अधिकार रोमन साम्राज्य में रहने वालों को भी मिल गए। नागरिक शब्द का प्रयोग केवल नगर में रहने वालों तक सीमित न रहा बल्कि रोमन साम्राज्य के सभी लोग नागरिक कहलाने लगे।

३—प्राचीन काल में और वर्तमान काल में बड़ा अन्तर है। आजकल हर एक राज्य की सीमाएं इतनी फैल गई हैं कि उसमें नगरों और गांवों की गणना नहीं हो सकती। यदि यही गति रही तो जल्दी देशी और विदेशी का भाव भी उड़ जायगा। फिर जो परिस्थिति अब है उसके अनुसार नागरिक शब्द की परिभाषा यह हो सकती है कि "किसी देश वा राज्य का नागरिक वह व्यक्ति है जिसको उस देश वा राज्य के साधारण (civil) और राजनैतिक (political) अधिकार प्राप्त हैं और जो अपने देश वा राज्य के प्रति कुछ कानूनी (legal) कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए बाध्य है।"

४—अधिकार उन सुविधाओं को कहते हैं जिनके द्वारा मनुष्य अपने जीवन का विकास कर सकता है और उसको सफल बना सकता है। इसी प्रकार दूसरों के जीवन को सुखी और सफल बनाने के लिए हमको अपने स्वार्थ को किसी सीमा तक त्याग करना पड़ता है और इस त्याग

के सम्बन्ध में हमको अपनी इच्छाओं पर कुछ नियन्त्रण रखना पड़ता है। इस नियन्त्रण के साधनों को कर्त्तव्य कहते हैं। इन अधिकारों और कर्त्तव्यों की सूची तो बड़ी लम्बी है किन्तु किसी व्यक्ति के राज्य के नागरिक होने की पहिचान यह है कि उसको वोट देने का, सरकारी पदों पर नियुक्त होने का और राज्य सेना में सेवा करने का अधिकार है भी नहीं। यदि इसको ऐसे अधिकार प्राप्त हैं तो वह इस राज्य का नागरिक है। नागरिक की कानूनी स्थिति विशेष को नागरिकता कहते हैं और इस स्थिति विशेष का अनुमान नागरिक के अधिकारों और कर्त्तव्यों की समष्टि से किया जाता है। इन सब पहलुओं को ध्यान में रखकर नागरिकता की परिभाषा यह होगी—

नागरिकता किसी व्यक्ति की उस स्थिति विशेष को कहते हैं जिसके अनुसार वह अपने राज्य में साधारण और राजनैतिक अधिकारों को भोग सकता है और तत्सम्बन्धी कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए तैयार रहता है।

२. नागरिकता की जांच के नियम
(Rules of testing Citizenship)

२—कभी २ यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि अमुक व्यक्ति राज्य का नागरिक है या नहीं। उदाहरण रूप मे अंग्रेज माता पिता के एक बालक अर्जेनटाईन मे उत्पन्न हुआ तो वह दोनों देशों इंगलैंड और अर्जेनटाईन की नागरिकता का अधिकारी होगा। नागरिक और अनागरिक में भेद करने के सिद्धान्त सब देशों में एक जैसा नहीं, परंतु साधारणतया निम्न लिखित सिद्धान्तों से नागरिकता का निर्णय किया जाता है—

[१] भूमि सीमा अधिकार (jus soli) सिद्धान्त—इस नियम के अनुसार जिस राज्य में बालक उत्पन्न होता है, वह उस राज्य का नागरिक बन जाता है। यह सिद्धान्त अर्जेन टाईन और कुछ अन्य देशों में पाया जाता है। अर्जेन टाईन की सीमा के अन्दर जो

बालक जन्म लेगा वह वहां का नागरिक समझा जाएगा, चाहे उस के माता-पिता अर्जेन टाईन के रहने वाले हों या न। इस के विपरीत अर्जेनटाईन निवासी-माता का अगर कोई बालक विदेश में जन्म ले तो वह बालक अर्जनटाईन का नागरिक नहीं बन सकता। इस नियम में भूमि (Soil) को जहां बालक जन्म लेता है, महत्व दिया जाता है।

[२] वंश अधिकार (jus Sanguinis) सिद्धान्त — यह सिद्धान्त रक्त सम्बन्ध या वंश के अनुसार बनाया गया है। प्राचीन यूनान और रोम में जन्म से ही नागरिकता की पहिचान की जाती थी। अगर किसी रोमन माता-पिता के किसी बालक का जन्म रोमन साम्राज्य के बाहिर भी होता था तो भी वह रोम का नागरिक माना जाता था। आज भी इटली और फ्रांस में तो इस सिद्धान्त पर आचरण किया जाता है और युरोप के बहुत से देश इस नियम का पालन करते हैं। इस सिद्धान्त में देश के विपरीत वंश को अधिक महत्व दिया गया है।

[३] मिश्रित सिद्धान्त —इंगलैंड और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में यह रीति है कि इन देशों में जन्म लेने वाले बालक चाहे इन के माता-पिता किसी भी देश के क्यों न हों इंगलैंड और अमेरिका की नागरिकता के अधिकार रखते हैं। इतने तक यह भूमि सीमा अधिकार को स्वीकृत करते हैं। परन्तु वे यह भी स्वीकृत करते हैं कि अंग्रेज़ माता-पिता या अमेरिकन माता-पिता से अन्य देशों में जन्म लेने वाले बच्चे भी अंग्रेज तथा अमेरिकन नागरिकता के अधिकारी होते हैं। अर्थात् अपने देश के बच्चों के सम्बन्ध में वह वंश अधिकार को स्वीकृत करते हैं।

३. नागरिकता की प्राप्ति के नियम
(Rules of acquisition of citizenship)

नागरिकता दो प्रकार से प्राप्त होती है। एक जन्म (birth) से और दूसरी राज्य द्वारा दिए जाने (naturalization)

से। पहिली प्रकार के नागरिक स्वाभाविक(natural) नागरिक हैं, और राज्य में जन्म लेने के कारण ही देश के साधारण तथा राजनैतिक अधिकार भोग सकते हैं, जो सजग और सचेत हो कर अपने और समाज के जीवन को उन्नत बनाने का प्रयत्न करते हैं और जो राजभक्त हैं। दूसरी प्रकार के नागरिक वे हैं जो जन्म किसी और देश में लेते हैं, किन्तु यहां आकर निवास कर लेते हैं। प्रत्येक देश में विदेशी व्यापार, शिक्षा, अथवा देशाटन के लिए आते हैं और कुछ समय के लिए ठहर कर अपने देश को लौट जाते हैं। ये अपने ही राज्य के भक्त होते हैं। ऐसे विदेशियों को नागरिकता के केवल साधारण अधिकार मिलते हैं परन्तु राजनैतिक अधिकार नहीं मिलते। सरकार उन के धन और प्राणों की रक्षा करती है और न्यायालय न्याय देते हैं, आने जाने भाषण आदि की उन को स्वतन्त्रता दी जाती है। परन्तु स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं, प्रान्तीय और केन्द्रीय व्यवस्थाओं में वोट देने का अधिकार नहीं प्राप्त होता। दूसरी प्रकार के विदेशी सदा के लिए अपने देश को छोड़ कर विदेश में जाकर बस जाते हैं, वहीं खेती-बाड़ी और व्यापार करते हैं और उस देश को अपना देश बना लेते हैं। ऐसे विदेशी जो अपने देश की नागरिकता खो बैठते हैं, निम्नलिखित नियमों के अनुसार दूसरे देश की नागरिकता प्राप्त कर सकते हैं—

[१] निश्चित काल तक निवास—इंगलैंड तथा संयुक्त राष्ट्र अमरीका में नागरिकता की प्राप्ति के लिए हर एक विदेशी को कम से कम पांच साल तक वहां रहना पड़ता है। पांच साल से पहिले किसी को भी नागरिकता का प्रमाण पत्र (Certificate)नहीं मिल सकता। भिन्न २ राज्यों में यह समय भिन्न २ है। किसी राज्य में ७ वर्ष और किसी में दस वर्ष या इस अवधि को पूरा करने के अनन्तर विदेशी नागरिकता के प्रमाण पत्र के लिए प्रार्थना कर सकता है और प्रार्थना के समय इसे पहिले राज्य की नागरिकता का त्याग करना पड़ता है।

यह प्रमाण पत्र कोई विशेष अधिकारी या न्यायालय देता है।

अमरीका में नागरिक बनने के नियम बहुत कठिन हैं। वहां काले रंग के आदमी नागरिकता प्राप्त नहीं कर सकते। एशिया वासियों को बहुत थोड़ी संख्या में नागरिकता का अधिकार प्राप्त होता है। इंगलैंड में हर एक व्यक्ति को जो वहां रहना चाहे या सरकार की नौकरी करना चाहे नागरिकता का अधिकार मिल जाता है।

[२] विवाह के कारण—स्त्री, जिस देश के पुरुष से विवाह करती है, विवाह के कारण पति के देश की नागरिक हो जाती है।

जापान में ठहरा हुआ विदेशी यदि जापानी स्त्री से विवाह करले तो जापान की नागरिकता का अधिकार प्राप्त कर लेता है।

[३] सरकारी नौकरी—कुछ राज्यों में यह प्रथा है कि जो विदेशी उस राज्य में सरकारी नौकरी कर ले तो उस देश का नागरिक समझा जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका की सेना में जो विदेशी एक साल के लिए नौकरी कर ले वह वहां की नागरिकता के योग्य (qualified) हो जाता है।

[४] विजय—यदि कोई देश किसी देश अथवा उस के किसी भाग को जीत कर अपने देश में मिला ले तो जीते हुए देश के नागरिक जीतने वाले देश के नागरिक हो जाते हैं।

[५] जायदाद का मोल लेना—मैक्सिको में यदि कोई विदेशी भूमि मोल ले ले तो उसे वहां की नागरिकता का अधिकार मिल जाता है।

[६] निश्चित काल का निवास—

कुछ राज्यों में—उदाहरण के रूप में ब्राज़ील में—बहुत काल के लिए रहने से ही विदेशी वहां का नागरिक बन जाता है, यदि वह विदेशी न होने की घोषणा कर दे।

[७] इंगलैंड में यह नियम है कि अंग्रेजी जहाज पर जन्म लेने

वाला बालक चाहे उस के माता-पिता अंग्रेज न हों अंग्रेजी नागरिक बन जाता है।

[८] एक नागरिक पुरुष और अनागरिक स्त्री का कानूनी विवाह करने से पूर्व यदि बालक उत्पन्न हो जाए तो पुरुष और स्त्री के कानूनी विवाह की प्रथा के निबाहने के अनन्तर उस बालक को नागरिकता का अधिकार मिल जाता है।

स्वाभाविक (natural) और बनावटी (naturalized) नागरिकों में कोई भेद नहीं है। वहां की सरकार दोनों को समान दृष्टि से देखती है। राजनैतिक अधिकार दोनों के समान होते हैं। यद्यपि कानून के अनुसार दोनों प्रकार के नागरिकों में कोई अन्तर नहीं रखा गया। फिर भी प्रचलित प्रथा इस अन्तर को मिटा नहीं सकती। यदि कोई भारतीय इंगलैंड की नागरिकता प्राप्त करले तो भी वह हाऊस आफ लार्डज का सभापति नहीं बन सकता। इस प्रकार बनाया हुआ नागरिक अमेरिका का प्रधान वा उपप्रधान नहीं बन सकता।

४. नागरिकता से वंचित होने के कारण
(Loss of Citizenship)

जैसे नागरिकता प्राप्त करने के नियम हैं वैसे नागरिकता से वंचित किए जाने के भी नियम हैं। जन्म से प्राप्त नागरिकता तथा सरकार द्वारा दी हुई नागरिकता निम्नलिखित अवस्थाओं में छीनी जा सकती है—

(१) यदि कोई स्त्री किसी दूसरे देश के नागरिक से विवाह करले तो वह अपने देश की नागरिकता खो बैठती है। यदि कोई हिन्दुस्तानी स्त्री किसी विदेशी से विवाह करले तो वह हिन्दुस्तान की नागरिक नहीं रहती।

(२) किसी २ देश में नागरिकता इसलिए भी छीन ली जाती है कि नागरिक किसी अन्य राष्ट्र में सरकारी नौकरी कर लेता है या अन्य देश की दी हुई उपाधि स्वीकार कर लेता है।

(३) बहुत समय तक देश से बाहर रहने पर भी नागरिकता खोई जाती है। फ्रांस या जर्मनी का कोई नागरिक यदि अपने देश से दस वर्ष तक अनुपस्थित रहा है तो वह अपने देश की नागरिकता से वंचित किया जाता है।

(४) यदि कोई स्वयं अपने देश की नागरिकता छोड़ना चाहे तो छोड़ सकता है, परन्तु रूस और तुर्की प्रायः यह अधिकार नहीं देते।

(५) अपने देश की सेवा से भागा हुआ सिपाही अपने देश का नागरिक नहीं कहा जा सकता।

(६) विद्रोह अथवा किसी भीषण अपराध के कारण भी नागरिकता छीनी जाती है।

(७) विद्रोह के कारण देश से निकाले हुये व्यक्ति को नागरिकता छीनी जाती है।

(८) यदि कोई नागरिक भिक्षावृत्ति स्वीकार कर ले तो वह भी नागरिक नहीं रह सकता। इसी प्रकार साधु, सन्यासी, तथा भिखारी भी नागरिकता के अधिकार से वंचित हैं।

(९) यदि कोई उन्मादी (पागल) हो जाय तो वह भी नागरिकता खो बैठता है।

उक्त सम्पूर्ण नियम किसी एक राज्य में नहीं पाए जाते। प्रत्येक राज्य के नियम इस सम्बन्ध में अलग २ हैं। कोई नागरिक अपने अधिकार दूसरे नागरिक को नहीं दे सकता और न ही नागरिकता का विनिमय या तबादला (exchange) हो सकता है और न ही नागरिकता के अधिकार बेचे जा सकते हैं।

५. भारत में नागरिकता के नियम

१—हमारा देश १५ अगस्त १९४७ ई० को अंग्रेजों की अधीनता से विमुक्त हुआ जब कि यह दो राज्यों—भारत और पाकिस्तान में बांटा गया। १६ नवम्बर १९५२ ई० को भारत राज्य का नया संविधान

स्वीकार हुआ और उसके अनुसार भारत को सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य(Sovereign Democratic Republic) का रूप दिया गया। भारत संविधान में प्रत्येक व्यक्ति को, जो भारत राज्य-क्षेत्र में अधिवास करता है, भारत का नागरिक माना गया है। दूसरे शब्दों में यूं कहिए कि जो व्यक्ति इस संविधान के प्रारम्भ पर भारत में जन्मा था, या जिसके जनकों (parents) में से कोई भारत में जन्मा था, या जो इस प्रारम्भ से कम से कम पांच वर्ष तक भारत में वास कर रहा है, भारत का नागरिक होगा।

२ संयुक्त हिन्दुस्तान के बटवारे के कारण जो व्यक्ति पाकिस्तान के उन प्रदेशों से जो बटवारे से पहिले हिन्दुस्तान के अङ्ग थे, भारत में १९४८ से पहिले प्रव्रजन (migration) कर आए हैं, इस संविधान से भारत के नागरिक माने गए हैं। इसके विपरीत जो लोग १९४७ के मार्च के पहिले दिन के पश्चात् भारत राज्य-क्षेत्र से पाकिस्तान प्रव्रज (migration) कर गये हैं, वे भारत के नागरिक नहीं समझे जायेंगे।

३-१९ जुलाई १९४८ के पश्चात् भारत में प्रव्रज(migration) करने वाले भारत सरकार को प्रपत्र (application) देंगे और यदि ० जिम्मादार न्यायालय उन का प्रपत्र स्वीकार करले तो वे भारत नागरिक बन जायेंगे।

४—यदि कोई व्यक्ति या उसका जनक अथवा महाजनक संयुक्त हिन्दुस्तान से किसी अन्य देश में चला गया था, वह भी भारत सरकार को प्रपत्र (application) देकर और यह विश्वास दिलाकर कि वह भारत वासी है और किसी अन्य देश का नागरिक नहीं बना, भारत का नागरिक बन सकता है। यदि किसी अन्य देश की नागरिकता स्वीकार कर ली है, तो वह भारत का नागरिक न होगा।

६. राज्य और नागरिक का परस्पर सम्बन्ध

१—पिछले अध्यायों में भली भांति वर्णन किया गया है कि मनुष्य एक सामाजिक जीव है और उसके जीवन का आनन्द और सफलता समाज पर निर्भर है। समाज के अन्दर राज्य एक महत्व पूर्ण संघ है, जो समाज और मनुष्यों के सामाजिक और राजनैतिक हित के लिए बनाया जाता है। जिस प्रकार समाज और व्यक्ति में गहरा सम्बन्ध है और एक की उन्नति दूसरे पर निर्भर है, उसी प्रकार राज्य और उसके नागरिकों में अनिवार्य सम्बन्ध है। कुछ नीतिज्ञ कहते हैं कि राज्य उद्देश्य है और उद्देश्य की प्राप्ति के लिये नागरिक साधन है। कुछ नीतिज्ञ कहते हैं कि राज्य की स्थापना केवल नागरिकों के जीवन को सुखी और सफल बनाने के लिए की गई है। दोनों वर्गों की विचारधारा अपने २ पक्ष की पुष्टि में प्रबल है, परन्तु सच्ची बात यह है कि नागरिकों के बिना राज्य का अस्तित्व असम्भव है और राज्य की स्थापना के बिना नागरिकों का जीवन सुरक्षित नहीं। राज्य हर समय ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न करता है जिसके अन्दर नागरिक अपने जीवन का वास्तविक और अच्छा आदर्श प्राप्त कर सकते हैं। किसी नागरिक के जीवन के विकास और आर्थिक उन्नति के लिए अधिकार आवश्यक हैं। जहां तक राज्य का सम्बन्ध है, एक अच्छा राज्य अपने नागरिकों के लिये उन अधिकारों को भोगने की सुविधाओं का प्रबन्ध करता है।

२—यह भी मानी हुई बात है कि समाज के बिना न तो व्यक्ति प्रसन्न रह सकता है और न ही अपने जीवन के उद्देश्य को प्राप्त कर सकता है। इस कारण राज्य व्यक्ति के अधिकारों को समाज के अन्दर मानता है और अगर कोई व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रयोग से दूसरे व्यक्तियों के सुख और उन्नति में बाधा डालता है तो उस अवस्था में राज्य व्यक्ति के ऐसे अधिकारप्रयोग में हस्तक्षेप करता है। अच्छा राज्य अपना शासन विधान ऐसे ढंग से बनाता है जिससे उसके नागरिकों का व्यक्ति-

गत, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक जीवन सुखी और सफल बनता है। जिस प्रकार राज्य के प्रति नागरिकों के अधिकार हैं उसी प्रकार राज्य के प्रति उनके कुछ कर्तव्य भी हैं। राज्य और नागरिक दोनों अधिकारों और कर्तव्यों के सूत्र में एक दूसरे के साथ बंधे हुए हैं। राज्य अपने नागरिकों के जीवन को सफल बनाने के लिये अवसर उत्पन्न करता है और नागरिक राज्य को उन्नत करने में हर प्रकार की सहायता देता है, परन्तु यदि कोई नागरिक समाज के दूसरे सदस्यों के अधिकारों का निरादर करके अपनी मनमानी करता है तो राज्य अपने कानून द्वारा उसको नियन्त्रण भी करता है।

७. नागरिक जीवन पर वातावरण का प्रभाव

किसी राज्य की उन्नति व अवनति उसके नागरिकों के अच्छे वा बुरे आचार व्यवहार पर निर्भर है। यदि नागरिक बलवान, बुद्धिमान, सदाचारी और पुरुषार्थी हैं तो राज्य भी शक्तिशाली उन्नत और प्रभावशाली होता है। हर एक नागरिक का जीवन उस प्रकार बनता है जिस प्रकार के वातावरण में वह पलता है और पुष्ट होता है। विशेष कर नागरिक के जीवन पर तीन बातों का प्रभाव होता है। सब से प्रथम और सबसे अधिक प्रभाव माता-पिता के आचरण और वंश सम्बन्धी परम्पराओं का होता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने वंश और माता-पिता पर बड़ा गौरव होता है। अच्छी सन्तान अपने माता-पिता तथा वंश को बट्टा लगाने से घबराती है और सदा उनके सद्गुणों को ग्रहण करने का प्रयत्न करती है। वंश सम्बन्धी प्रभावों से दूसरे स्थान पर देश की सामाजिक रीति भांति, साहित्य, कला, भाषा, विज्ञान आदि का प्रभाव मनुष्य के जीवन को बनाने या बिगाड़ने का कारण बनते हैं। जो व्यक्ति अच्छी संस्थाओं में शिक्षा पाता है, अच्छी कलाओं और विज्ञानों का अध्ययन करता है और जिस को योग्य तथा सदाचारी पुरुषों की संगति प्राप्त हो जाती है, वह अच्छा नागरिक बन जाता है, स्वयं

अच्छा जीवन व्यतीत करता है और दूसरों को अच्छा जीवन व्यतीत करने में सहायक होता है। देश की जलवायु, उपज और गर्मी-सर्दी आदि का भी मनुष्य के जीवन पर बड़ा प्रभाव होता है। शीत तथा पर्वतीय प्रांतों के लोग परिश्रमी, हृष्ट-पुष्ट और शूरवीर होते हैं तो गर्म और मैदानी प्रदेशों के लोग आलसी, तथा असहिष्णु होते हैं। व्यवसाय का भी मनुष्य के जीवन पर बड़ा प्रभाव होता है। एक सिपाही दृढ़, चतुर, और कर्तव्यशील होता है, वह स्वच्छ रहता है, आज्ञाकारी होता है, अनुशासनहीनता (want of discipline) तथा आलस्य को नहीं सह सकता। इससे परिणाम यह निकला कि राज्य हर एक नागरिक के शारीरिक और मानसिक विकास का जहां तक हो सके अच्छा प्रबन्ध करे। राज्य की ओर से उसको कम से कम आर्थिक आवश्यकताओं भोजन, वस्त्र और रहने योग्य घर का प्रबन्ध सन्तोष जनक हो। भूखा, नंगा और निवास स्थान से रहित मनुष्य हर समय अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की चिंता में लगा रहता है और सद्गुणों की प्राप्ति का तो उसे ध्यान तक नहीं आता है। जब नागरिक की आर्थिक आवश्यकताओं का प्रबन्ध सन्तोषजनक होगा तो वह अपने मानसिक विकास की ओर ध्यान देगा और सद्गुणों को ग्रहण करके अच्छा नागरिक बन जाएगा।

८. अच्छे नागरिक के लक्षण

बराईस (Bryce) के विचारानुसार एक अच्छे नागरिक में मेधा बुद्धि (intelligence), आत्मसंयम (self-control) और अन्तःकरण (conscience) ये तीन गुण आवश्यक हैं। ह्वाईट (White) के विचारानुसार एक अच्छे नागरिक में व्यवहारिक बुद्धि (Common sense), ज्ञान (Knowledge) और भक्ति (Devotion) ये तीन गुण आवश्यक हैं। यदि गम्भीरता से विचार किया जाए तो दोनों नीतिज्ञों का अभिप्राय एक ही है। इन गुणों की व्याख्या इस प्रकार है--

(१) जब एक नागरिक अपने देश की सरकार में भाग ले रहा हो, चाहे वह किसी व्यवस्था का सदस्य हो या सरकारी विभाग का कर्मचारी हो उसके लिए आवश्यक है कि वह प्रतिभाशाली हो और अच्छे और बुरे में विवेक कर सके। प्रत्येक व्यक्ति के अन्तःकरण और आचार का प्रभाव सरकार के कार्यों पर पड़ता है। इसलिये अच्छे नागरिक में प्रतिभाशाली और मेधावी होना आवश्यक है।

(२) अच्छे नागरिक का कर्त्तव्य है कि राज्य विधान के अनुकूल चले, समाज के हित को अपने स्वार्थ से अधिक महत्व दे और अपनी स्वार्थी भावनाओं का दमन करे। अर्थात् आत्मसंयमी और आज्ञाकारी होना नागरिक का कर्तव्य है। प्रत्येक राज्य की सत्ता (existence) उस राज्य के नागरिकों के आज्ञाकारी और आत्मसंयमी होने पर अवलम्बित है। लास्की का विचार है कि मर्यादा से बढ़कर आज्ञाकारी होना राज्य की उन्नति में बाधक है।

(३) अच्छे नागरिक के हृदय में राज्य तथा समाज के प्रति अनन्य भक्ति हो और उसका अन्तःकरण (conscience) शुद्ध हो। इस प्रकार एक अच्छे नागरिक में ऐसी भावना होने से देश और जाति के हित और उन्नति के कार्यों में बड़ी सहायता मिलती है। एक अच्छा नागरिक राज्य के करों (taxes) को प्रसन्नता पूर्वक प्रदान करता है और न्यायालय में सच्ची बात कहने के लिए उद्यत रहता है।

इन तीन गुणों के अतिरिक्त एक अच्छे नागरिक का कर्तव्य है कि अपना वोट सोच विचार कर निष्पक्ष और निःस्वार्थ व्यक्ति को दे।

६ अच्छी नागरिकता के मार्ग में बाधायें

अच्छी नागरिकता के मार्ग में निम्नलिखित बाधायें हैं—

[१] दरिद्रता—सब से बड़ी बाधा दरिद्रता है। भोजन और वस्त्र के लिए तरसने वाले और तड़पने झगड़ने वाले स्त्री उदात्त जीवन की आशा नहीं कर सकते। इस लिए सरकार और समाज को

व्यवस्था ऐसी हो जिस में हर एक भोजन आच्छादन और मकान की चिन्ता से मुक्त हो।

[२] अज्ञान और अन्धकार—ज्ञान और मेधा के विरोधी अज्ञान और अन्धकार हैं। यदि एक नागरिक अनपढ और अबोध है तो वह राज्य की समस्याओं को नहीं जान सकता। ज्ञान शक्ति है। एक राज्य की शक्ति और योग्यता (efficiency) अपने नागरिकों को शिक्षा देने और उनको सभ्य जीवन का ज्ञान प्रदान करने में है। प्रजातन्त्रात्मक राज्य की सफलता अपने नागरिकों को सुशिक्षित और ज्ञानी बनाने पर निर्भर है। मूर्ख और अज्ञानी नागरिक देश मे अराजकता (anarchy) फैलाते हैं और देश को अधोगति की ओर ले जाते हैं।

[३] आलस्य—कहावत है कि जो कार्य्य सब लोगों का सांझा है, वह किसी का कार्य्य नहीं। साधारण नागरिक प्रायः साधारण जनता के कार्य्यों के प्रति उदासीन रहते हैं, और यह आलस्य तथा उदासीनता समाज सम्बन्धी कार्यों की सफलता में बाधा डालते हैं। प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होना चाहिये कि वह सार्वजनिक कार्यों (public affairs) की पूर्ति मे किसी प्रकार का आलस्य न करे। जब तक ऐसे कार्यों मे सभी लोग सहयोग न दें, सफलता असम्भव है।

[४] स्वार्थ—सामूहिक जीवन का सबसे बडा शत्रु स्वार्थ है। जिस समाज मे प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अपनी पडी हुई है, उस समाज का कल्याण नहीं हो सकता। स्वार्थ के कारण बुरे लोग वोटों को मोल लेते हैं, सरकार के करों को नहीं देते और सरकारी ठेकों आदि में कपट और धोका देते हैं। वोट को मोल लेने तथा बेचने का अभिप्राय राज्य और समाज के हित को बलिदान करना है। एक अच्छा नागरिक कभी इस प्रकार के पाप का भागी नहीं बनता।

[५] दलबन्दी की अधिकता—प्रजातान्त्रिक राज्यों में राज-

नैतिक दलों का होना आवश्यक और अनिवार्य है, परन्तु कभी २ यह दल बन्दी बड़ा भयानक रूप धारण कर लेती है। जब किसी दल में अपने सिद्धान्तों और सचाई का अभाव हो जाए और अपने उचित और अनुचित विभागों का पक्षपात करने लगे तो देश को बड़ी हानि होती है। ऐसा दल यदि बहुमत द्वारा देश के शासन की बागडोर संभाल लेवे तो वह स्वार्थ, द्वेष, और पक्षपात के वश होकर साधारण जनता के हित के कार्यों को नहीं कर सकता। राजनैतिक सिद्धान्तों को छोड़ कर जो दल जाति, धर्म सम्प्रदाय के आधार पर बनते हैं, उनको साम्प्रदायिक दल (Communal Parties) कहते हैं। इस प्रकार के दल देश में फूट, घृणा और ईर्ष्या के बीज बोते हैं, और देश को हानि पहुंचाते हैं। एक अच्छे नागरिक का यह कर्तव्य है कि इस प्रकार की दलबन्दी से बचे, केवल राज्य और समाज की भक्ति और सेवा का प्रण ले और देश में रहने वाले सभी नर-नारियों की उन्नति और सुख के कार्यों में सहयोग दे।

१०. नागरिकता की बाधाओं को हटाने के उपाय

लार्ड बराइस (Lord Bryce) ने नागरिकता के मार्ग में बाधाओं को दूर करने के ये दो उपाय बताए हैं—

[१] राज्य व्यवस्था का सुधार (Reform of Government)—जिस राज्य शासन में जनता भाग न ले सके, वा जनता संगठन करने, प्रेस और सभा द्वारा राज्य शासन के कार्यों की आलोचना करने वा अपने विचार प्रगट करने में स्वतन्त्र न हो, उस राज्य-शासन का सुधार अति आवश्यक है। जिस प्रकार बिना पानी में प्रवेश करने के तैराक बनना असम्भव है, इसी प्रकार नागरिकता के कर्तव्यों और अधिकारों का व्यवहार किए बिना नागरिकता का विकास नहीं हो सकता। राज्यव्यवस्था को इस ढंग से बदल दिया जाए कि देश का राज्यशासन साधारण जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में आ जाए और जनता के अन्दर अपने देश के प्रति भक्ति और प्रेम के भावों का

उद्देश हो और साधारण जनता यह समझे कि देश हमारा है और हम देश के हैं। दोनों की उन्नति और अवनति एक दूसरे पर निर्भर है। देश में काम, दाम, और आराम की व्यवस्था की जाए ताकि लोग रोटी और कपड़े की चिन्ता से मुक्त होकर सभ्य जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न करने का प्रयत्न करें।

[२] जनता के आचार व्यवहार का सुधार (Ethical Reform of the People)—केवल प्रजातन्त्रात्मक राज्य की स्थापना करने से ही देश में नागरिकता की उन्नति नहीं हो सकती। इस के लिये दो और वस्तुओं की आवश्यकता है। वे दो वस्तुएं शिक्षा और चरित्रनिर्माण (Education and Character-building) हैं। शिक्षा के अर्थ स्पष्ट है। जनता को साक्षर बनाने के अतिरिक्त सार्वजनिक विषयों, नागरिकता के अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान होना आवश्यक है। इसके लिये उपयोगी समाचारपत्रों, वाचनालयों, पुस्तकालयों और वाद-विवाद सभाओं का प्रबन्ध किया जाए। चरित्र निर्माण के सम्बन्ध में अच्छे आदर्शों का डालना और 'सत्यं वद धर्मं-चर', 'सच बोलो और अपने कर्तव्यों का पालन करो' का पूरा पूरा प्रबन्ध पाठशालाओं और कालेजों में करना होगा। विद्यार्थियों में स्काउटिंग और सेवा समिति जैसी संस्थाओं को सर्वप्रिय बनाना होगा। सामाजिक तथा राष्ट्रीय आदर्शों को जीवन में ढालने का कार्य राष्ट्रीय शिक्षा (National Education) द्वारा ही सम्पूर्ण हो सकता है। राज्य को इन बातों का पूरा प्रबन्ध करना होगा।

Questions (प्रश्न)

1. Define a citizen and explain how a modern citizen differs from a Greek or Roman citizen.

नागरिक की परिभाषा करो और बताओ कि वर्तमान नागरिक का रोमन और यूनानी नागरिक से क्या अन्तर है।

2. How is Citizenship determined, acquird and lost ?

किस प्रकार अभीष्ट नागरिकता की प्राप्ति होती है और किन कारणों से व्यक्ति नागरिकता के अधिकार से वञ्चित होता है ?

3. Distinguish between—

(a) a citizen and an alien

(b) a natural and a naturallized citizen

निम्नलिखित में अन्तर बताओ—

(क) नागरिक और विदेशी में,

(ख) एक प्राकृतिक तथा कृत्रिम नागरिक में,

4. What are the qualities of a good citizen ?

अच्छे नागरिक में कौन २ से गुण होते हैं ?

5. What are the hinderances to good citizenship and what steps should be taken to remove these hinderances to help the growth of good citizenship.

अच्छी नागरिकता के मार्ग में कौन २ सी बाधायें हैं ? और अच्छी नागरिकता को समुन्नत करने के लिए तथा नागरिकता सम्बन्धी बाधाओं को दूर करने के लिए कौन २ से उपाय करने चाहिये !

6 write short notes on—

(a) Relation between state and citizen

(P) various influences upon the life of a citizen

इन पर संक्षिप्त नोट लिखो—

(क) राज्य और नागरिक का परस्पर सम्बन्ध,

(ख) नागरिक के जीवन पर विभिन्न प्रकार के प्रभाव,

छठा अध्याय

नागरिकों के अधिकार और कर्तव्य

(Rights and Duties of Citizens)

१ अधिकारों और कर्तव्यों का परस्पर सम्बन्ध

पिछले अध्याय में वर्णन कर चुके हैं कि राज्य का उद्देश्य नागरिकों के जीवन को सुखी और सफल बनाना है। राज्य और नागरिकों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। नागरिकों के हित में राज्य का हित छिपा हुआ है। इस कारण नागरिकों के जीवन को सफल बनाने के लिए राज्य नागरिकों के प्रति कुछ अधिकार भी स्वीकृत करता है। यदि नागरिक केवल मात्र अपने लिए अधिकार ही माँगें और राज्य के हित के लिए अपनी जिम्मेदारी न समझें तो दोनों नष्ट हो जाएं। अतः परस्पर सम्बन्धित होने के कारण राज्य नागरिकों से कुछ कर्तव्यों की आशा भी करता है। यदि वे राज्य के अस्तित्व और संगठन में सहयोग देने के लिये कुछ कर्तव्यों का पालन करेंगे तो दोनों का हित होगा, क्योंकि अधिकारों और कर्तव्यों का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है।

२—जहां अधिकार होते हैं, वहां कर्तव्य भी होते हैं। अधिकार और कर्तव्य संगत है। अधिकारों द्वारा यह यत्न किया जाता है कि समाज व्यक्ति की उन्नति के मार्ग में बाधक न हो और कर्तव्य द्वारा यह यत्न किया जाता है कि व्यक्ति स्वार्थ में इतना न फंस जाये कि समाज को निर्बल कर के अन्त में अपने आप को भी समाप्त कर बैठे। इस लिये मनुष्य अधिकारों की मांग के साथ २ कर्तव्य पालन भी स्वीकृत करे और इसी के अनुसार जीवन व्यतीत करे, कर्तव्य व्यक्ति और समाज को निरंकुश नहीं होने देते, बल्कि, दोनों को एक मर्यादा में रखने

है। यदि हमे कोई अधिकार दिया जाय, तो उस अधिकार पर चलने का कर्तव्य भी हम पर लागू होता है। यदि सुशिक्षा प्राप्त करना हमारा अधिकार है तो शिक्षा का प्रबन्ध हो जाने पर उसका ग्रहण करना हमारा कर्तव्य हो जाता है।

३—एक और आवश्यक बात ध्यान में रखी जाय कि अधिकार केवल व्यक्तियों के नहीं होते बल्कि परिवार, समाज, राज्य आदि के भी अधिकार हुआ करते हैं। इसी प्रकार हमारे कर्तव्य भी व्यक्ति, परिवार, समाज, राज्य आदि के प्रति होते है। मनुष्य सदा ठीक मार्ग पर नहीं चलता। यदि सब अपने कर्तव्यो का पालन करते रहें तो सब के अधिकार सुरक्षित हो जाते हैं, परन्तु प्रायः ऐसा नहीं होता। इसलिए मनुष्यों को ठीक मार्ग पर रखने का काम राज्य और समाज का हो जाता है। सबके अधिकारों की रक्षा हो तथा सब कर्तव्यों का पालन करें, यह उत्तरदायित्व राज्य का है। एक अच्छे राज्य की सरकार राज्य में रहने वाले सब नागरिकों की रक्षा, शिक्षा आदि का प्रबन्ध करती है, और ऐसा वातावरण स्थापित करती है जिसके अन्दर कर्तव्यो और अधिकारों का सदुपयोग होता रहे, और राज्य उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होता जाए।

२. नागरिको के अधिकार

अधिकार एक प्रकार की शक्ति है, इसका उद्देश्य व्यक्ति, समाज तथा राज्य की वृद्धि तथा उन्नति है। अधिकारों की महत्ता से व्यक्तिगत जीवन सुन्दर बनता है। व्यक्तियों के समूह का नाम समाज है। इसलिए व्यक्तियों के सुन्दर जीवन से समाज तथा राज्य का जीवन सुंदर हो जाता है। अधिकार कई प्रकार के हैं—व्यक्तिगत, परिवार सम्बंधी, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक। प्राय: इन सब अधिकारों को दो भागों में विभक्त करने से सुगमता होती है। एक राजनैतिक अधिकार और दूसरे साधारण अधिकार। अन्य सब अधिकार साधारण अधिकारों के अन्तर्गत हैं।

(क) साधारण अधिकार
(Civil Rights)

[१] जीवन रक्षा का अधिकार (Right to life and self-defence)—मनुष्य के सब अधिकार और कर्तव्य इसके जीवित रहने पर निर्भर हैं। यदि मनुष्य जीवित ही न रहा तो अधिकार उसके किस काम के। इसलिए जीवन रक्षा का अधिकार महत्त्वपूर्ण है। राज्य के अन्दर रहने वाले प्रत्येक प्राणी की रक्षा राज्य का पहला कर्तव्य है। राज्य की ओर से हर एक नागरिक को विश्वास दिलाया जाता है कि इसका शरीर सुरक्षित है। शरीर रक्षा का भार व्यक्तियों, समाज तथा राज्य के ऊपर है।

अगर कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को शारीरिक हानि पहुँचाए तो राज्य उसको दण्ड देता है। यदि कोई व्यक्ति स्व' किसी प्रकार आत्म-हत्या का प्रयत्न करता है तो राज्य उसको भी दण्ड देता है। आत्म-हत्या एक बहुत बडा अपराध है। शरीर रक्षा का प्रबन्ध समाज तथा राज्य की भलाई के लिए है। आत्म-रक्षा का अधिकार सब मनुष्यों का समान है। यदि कोई मनुष्य किसी कारण दूसरे मनुष्य पर आक्रमण करे, और आक्रमण करने वाले को आत्म-रक्षा के लिए मार दिया जाय, तो वह अपराधी नहीं गिना जाता। आत्म-हत्या और हत्या घृणित अपराध हैं। इस कारण राज्य की ओर से इनके लिए कठोर दण्ड नियत हैं।

[२] न्याय पाने का अधिकार (Right to justice)—कानून के सामने सब नागरिक समान हैं। राज्य का विधान (कानून) प्रबल, दुर्बल, धनाढ्य, दरिद्र, स्वस्थ, रोगी, गोरे, काले, ब्राह्मण, शूद्र सब के लिये एक हैं, और सब के साथ एक ही प्रकार का व्यवहार किया जाता है। अधिकारों की समता के अन्दर न्याय छुपा हुआ है। न्याय द्वारा राज्य को पुष्टि मिलती है। इस लिये राज्य के न्यायालय राज्य के धनी तथा निर्धन नागरिकों में किसी प्रकार का भेद नहीं करते

और सब के साथ पूरा पूरा न्याय करते हैं। देश के कानून में तीन गुण आवश्यक हैं।

(१) कानून आदर्श जीवन के नियमों पर आश्रित हो।

(२) कानून का व्यवहार सब के साथ समान हो।

(३) कानून को किसी का पक्षपात नहीं करना चहिए।

ऐसे कानून वाला राज्य दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करता है।

(३) स्वतन्त्र गति का अधिकार (Right to free mvement) जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नागरिक को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना पड़ता है। इस लिये नागरिक के शिक्षा, व्यापार, देशाटन अथवा किसी अन्य कार्य्य के लिये एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं होना चाहिये। यह अधिकार प्रायः अपने देश में शान्ति के दिनों मे स्वीकृत है परन्तु दूसरे देशों में जाने के लिये पासपोर्ट की आवश्यकता होती है। युद्ध काल मे स्वभावतया इस नियम पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है। कभी २ राजनैतिक दृष्टि से कुछ विशेष व्यक्तियों को विशेष स्थानो में जाने या रहने से राज्य रोक देता है। कभी २ शासक वर्ग राज्य के कानून के विरुद्ध कुछ लोगों पर प्रतिबन्ध लगा देता है। इस स्थिति में नागरिक की स्वतन्त्रता की रक्षा एक कानून द्वारा की जाती है। इस कानून विशेष का नाम हेबिशेष बियस कार्पस एक्ट (Habeas Corpus act) है।

इस ऐक्ट का अभिप्राय यह है कि देश का शासन विभाग किसी नागरिक को बिना किसी स्पष्ट कारण और बिना न्यायालय में उस के अपराध की जांच पड़ताल के किये कैद, अवरोध अथवा देश से निर्वासित नहीं कर सकता। यदि कोई ऐसी स्थिति हो जाये तो नागरिक इस ऐक्ट के अनुसार न्यायालय के सामने अपील कर सकता है कि उस पर सरकार ने कानून के विरुद्ध ही प्रतिबन्ध लगाया है, अतः मुझ से न्याय किया जाय

[४] स्वतन्त्र विचार और भाषा का अधिकार (Right to free thought and explanation in meetings and praess)-अपने विचार प्रगट करने की स्वतन्त्रता एक बड़ा लाभदायक अधिकार है। इस का अभिप्राय यह हुआ कि नागरिक सरकार के कार्यों की आलोचना कर सकते हैं और अपने विचार समाचार पत्रों द्वारा साधारण जनता तक पहुंचा सकते हैं। इस अधिकार के प्रयोग से जनता के अन्दर जागृति उत्पन्न होती है और राज्यशासन के अधिकारी अपने कर्तव्यों का पालन भली प्रकार करते हैं और अत्याचार करने से रुक जाते हैं। परन्तु इस अधिकार के प्रयोग का यह अर्थ नहीं कि हम अनर्थकारक प्रलाप करें, दूसरों को गाली दें, अथवा हिंसा और घृणा का प्रचार कर के समाज में अराजकता फैलाएं। पक्षपात रहित शुद्ध-बुद्धि से निकला हुआ सत्य ही वाणी द्वारा प्रगट करना चाहिए। प्रत्येक देश में भाषण और विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता (व्याख्यानों तथा प्रेस द्वारा) पर दो प्रतिबन्ध होते हैं। पहला प्रतिबन्ध यह है कि किसी को राजद्रोह पूर्ण (seditious) विचार प्रकट करने का अधिकार नहीं है। राजशासन की उचित आलोचना जलसों और प्रेस द्वारा, शासक वर्ग को अपने कर्तव्य पालन में सावधान कर देती है, और देश से घूंस (corruption) और अत्याचार का नाश हो जाता है। विचार प्रकट करने पर दूसरा प्रतिबन्ध यह है कि किसी नागरिक को ऐसी बात कहने वा प्रेस द्वारा प्रकाशित करने का कोई अधिकार नहीं कि जिससे किसी दूसरे नागरिक की मान-हानि (libel and defamation) हो जाय। राज्य के शासक वर्ग को उचित है कि दोनों प्रतिबन्धों का अनुचित प्रयोग न करें। किसी समाज वा राज्य के निर्माण में विचारों का बड़ा हाथ है। अच्छे विचारों से उन्नति और बुरे विचारों से अवनति होती है। अच्छे विचारों के प्रचार में बाधा डालना देश की उन्नति में बाधा डालना है। परामर्श और वाद-विवाद से विचारों की

उन्नति होती है; अतः यह अधिकार जीवन रक्षा के अधिकार से किसी प्रकार कम नहीं है। राज्य को अच्छे विचारों के फैलाने में सहायता देनी चाहिए और प्रेस पर अनुचित नियन्त्रण न किया जाए।

[५] संगठन का अधिकार (Right of association)-आधुनिक युग में कोई व्यक्ति अकेला किसी कार्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता, और उसे दूसरों के सहयोग और सहायता की आवश्यकता रहती है। इसलिए नागरिकों का यह अधिकार है कि सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा अन्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आपस में मिलकर समितियों, सोसाइटियों और अन्य संस्थाओं की स्थापना कर सकें, और जनता की भलाई के कार्यों को सफलता से कर सकें। इस अधिकार पर भी प्रतिबन्ध है कि कोई समिति राज्यशासन में बाधा डालने के लिए स्थापित न हो। यदि किसी संस्था का उद्देश्य राजद्रोह या राज्य के विधान के प्रतिकूल कार्य्य हो तो उस संस्था को कानून विरुद्ध घोषित करके दमन किया जाता है। प्रजातन्त्र राज्य-शासन में यह देखना अति आवश्यक है कि ऐसे संगठनों के विरुद्ध जो कार्यवाही की जाय, वह बड़ी सावधानी और उदारता से की जाये।

[६] विवाह तथा पारिवारिक जीवन में स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to free marriage and free enjoyment of family life)—पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में विवाह का बड़ा महत्त्व है। विवाह के लिए कुल, शील आदि का देखना आवश्यक है। जब तक एक पुरुष और एक स्त्री के शील, विचार और आचार में समता न हो उनका जीवन-साथी बनना गृहस्थ में नरक के समान है। इसलिए अपना जीवन साथी चुनने तथा विवाह करने में स्वतन्त्रता का अधिकार आवश्यक है। अच्छे नागरिकों का यह अपना कर्तव्य है कि वह इस कार्य में बड़े सोच से काम लें और गृहस्थ जीवन को सुखी और पवित्र बनाने की चेष्टा करें।

पारिवारिक जीवन एक निजी संस्था है जहां माता-पिता अपनी सन्तति का पालन पोषण प्रेम से करते हैं और सन्तान अपने माता-पिता और अन्य सम्बन्धियों का आदर करती है। यह संस्था अधिकतर कर्तव्यों पर अवलम्बित है। यदि किसी परिवार के सदस्य अपना २ कर्तव्य भली प्रकार पालन करते हैं तो यह संस्था इस भूलोक मे स्वर्ग का आदर्श उपस्थित कर देती है। परिवार के कार्यों में समाज तथा राज्य का अनुचित हस्तक्षेप पारिवारिक जीवन को बिगाड देता है। पिता अपने बच्चों का रक्षक (guardian) होता है, इसलिए उसके अधिकार को स्वीकृत करना अनुचित न होगा। परिवार के सारे अधिकारों का प्रयोग इस प्रकार किया जाए जिसमें समाज का भला हो। इस कारण राज्य केवल उस परिस्थिति मे हस्तक्षेप करे जब कि परिवार का कोई अधिकार साधारण समाज के हित के विरुद्ध सिद्ध हो। उदाहरण रूप में विवाह मे स्वतन्त्रता का बुरा परिणाम यह निकला है कि बाल विवाह की प्रथा चल पडी है और इसका नियंत्रण शारदा ऐक्ट (Prevention of Child Marriage Act) के द्वारा किया गया है।

[७] आर्थिक अधिकार (Economic right)—व्यक्ति या परिवार सबके जीवन का आधार अर्थ है। आहार, वस्त्र और निवासस्थान इन तीनों की पूर्ति के बिना जीवन कठिन है। निर्धनता रोग और दुराचार का घर है और विकास और उन्नति का शत्रु है। इसलिए राज्य का कर्तव्य है कि वह अपने नागरिकों के लिये इन तीनों आवश्यकताओं को पूरा करने का विचार और उपाय करे। यद्यपि जीविका का अधिकार अभी तक वैधानिक अधिकार (legal right) नहीं माना गया तो भी यह मानवमात्र का स्वाभाविक आचारिक (natural and moral) अधिकार हो सकता है। राज्य के संचालक यदि देश मे अमन और शान्ति चाहते हैं तो नागरिकों के आर्थिक अधिकार की ओर उन्हें पूरा ध्यान देना पडेगा।

आर्थिक अधिकारों को हम चार विभागों में बांट सकते हैं—

(क) वृत्ति या पेशे का अधिकार (Right to follow a vocation of choice)-मनुष्य की रुचि और स्वभाव भिन्न २ हैं। जो कार्य किसी मनुष्य को रुचि और स्वभाव के अनुकूल हो उसे वह प्रसन्नता पूर्वक करता है और उस कार्य में उसे सफलता भी प्राप्त होती है। इसलिए प्रत्येक नागरिक अपने स्वभाव और रुचि के अनुसार कोई पेशा अथवा धन्धा करने का अधिकारी है। परन्तु यदि कोई पेशा जनता या समाज के हित के विरुद्ध है तो इस पर राज्य प्रतिबन्ध लगा देता है। यही कारण है कि मादक वस्तुओं, शराब और अफीम आदि पर प्रतिबन्ध है।

(ख) व्यवसाय का अधिकार (Right to employment)—प्रत्येक नागरिक का अधिकार है कि उसको कोई काम मिले। यदि वह अपने लिए कोई काम नहीं खोज पाता तो राज्य को उसे किसी काम पर लगाने का प्रबन्ध करना होगा। यदि ऐसा न किया गया तो देश में बेकारी और असन्तोष बढ़ेगा। अभी तक भारतवर्ष में यह उत्तरदायित्व राज्य ने अपने ऊपर नहीं लिया। यूरोप और अमेरिका में बेरोजगारी की दशा में मजदूरों को जीवन निर्वाह के लिये भत्ता (allowance) दिया जाता है। रूस को समाजवादी सरकार ने ऐसा प्रबन्ध कर रखा है कि वहां कोई बेरोजगार नहीं रह सकता।

काम करने के साथ उचित मजदूरी की प्राप्ति भी सम्बन्धित है। इस लिए जब कोई मजदूर मजदूरी करता है तो उसे उचित मजदूरी दिलवाई जाय क्योंकि बिना उचित मजदूरी की प्राप्ति के जीवन निर्वाह असम्भव हो जायगा। स्वयं कार्य न मिलने की अवस्था में राज्य के लिए कार्य का प्रबन्ध करना आवश्यक है और साथ ही यह भी आवश्यक है कि मजदूरी के घन्टे नियत हों ताकि काम करने वालों को उचित अवकाश मिल जाय। सुखी और सफल जीवन के लिए अवकाश वैसे आवश्यक है जैसे काम करना। अवकाश में मनुष्य अपने

विचार बढ़ा सकता है, स्वास्थ्य बना सकता है और समाज सेवा भी कर सकता है।

(ग) कम से कम आय का अधिकार (Right to minimum income) शारीरिक आवश्यकताएं—भोजन, वस्त्र और निवास-स्थान —सब मनुष्यों के सामान हैं और इन आवश्यकताओं को कम से कम मात्रा में पूरा करने के लिये कुछ धन चाहिए। इस लिए राज्य को कानून बनाना चाहिए कि मजदूरों को निश्चित मात्रा से कम मजदूरी न मिले। हमारे देश की अवस्था शोचनीय है। बहुत से लोगों को एक समय का खाना भी प्राप्त नहीं होता और कई विलासिता की सामग्री पर प्रतिदिन हजारों रुपये उड़ा देते हैं। हमारे राज्य के अधिकारियों को इस अवस्था पर गम्भीरता से विचार करके सुधार करना होगा।

(घ) सम्पत्ति का अधिकार (Right to property)—नागरिकों को सम्पत्ति प्राप्त करने और रखने का अधिकार स्वाभाविक है। सम्पत्ति सुखी जीवन का आधार है। प्रत्येक मनुष्य कुछ वस्तुओं को अपना समझता है और उनको रखने में उसे आनन्द का अनुभव होता है। सम्पत्ति बनाए रखने की इच्छा से देश में कला-कौशल की उन्नति और धन की वृद्धि होती है। प्रत्येक मनुष्य जो सम्पन्न है निर्धनों तथा अनाथों की सहायता भी करता है। जब सरकार को सड़कें बनवाने सिंचाई की योजनाएं पूरी करने तथा देश में शिक्षा विस्तार के लिए धन की आवश्यकता हो तो उसे लोगों से धन सुगमता से प्राप्त हो सकता है। इस कारण नागरिकों को अपनी तथा पूर्वजों की उपार्जित सम्पत्ति को भोग करने, बढ़ाने, बेचने, तथा उत्तराधिकारियों को और दूसरे लोगों को देने का अधिकार आवश्यक है, और राज्य का कर्तव्य है कि नागरिकों की निजी सम्पत्ति को चोरों और डाकुओं से बचाए रखने का पूरा प्रबन्ध करे और अपराधियों को कठोर दण्ड दे।

राज्य के धनाढ्य नागरिकों का धन वास्तव में राज्य का धन है और ये धनाढ्य एक प्रकार के प्रन्यासी या अमीन (trustees) हैं। यदि कोई मनुष्य अपने धन को कुएं में फेंकना चाहे तो वह ऐसा नहीं कर सकता, यदि कोई अपने धन को ऐसे कार्य्य में लगाना चाहे जिस से राज्य को हानि हो तो राज्य उसे ऐसा करने से रोक सकता है। निजी सम्पत्ति पर अधिकार अपने आपको सुख पहुँचाने और समाज की सेवा कार्यों में लगाने का अधिकार है, इस के अनुचित प्रयोग का अधिकार नहीं। राज्य के विरुद्ध युद्ध के अवसर पर राज्य बड़े से बड़ा कर लगा सकता है अथवा सहायता ले सकता है।

आजकल समाजवादी कहते हैं कि व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं होनी चाहिए। व्यक्तिगत सम्पत्ति का बुरा परिणाम यह होता है कि धनी लोग निर्धनों को पैरों तले रौंदते हैं और अत्याचार करते हैं। समाजवादियों के मत अनुसार भूमि तथा कारखानों पर राज्य का अधिकार हो। इन विचारों से कोई सहमत हो या न हो, परन्तु इनका अभिप्राय यह है कि धन का सदुपयोग होना चाहिए और राज्य के किसी नागरिक के पास तो धन का अभाव हो और किसी के पास अधिकता, इस विषमता के कारण कोई नागरिक दुःखी न हो। लास्की (Laski का कथन है कि अधिकार और कर्तव्य परस्पर सम्बन्धित हैं, मेरा धन पर इतने तक अधिकार है जितने तक यह धन मुझे अपने कर्तव्य के पालन में आवश्यक तथा सहायक है। मुझे इस धन के गुप्त रखने का कोई अधिकार नहीं, कमाया, अथवा जो समाज के हित के विरुद्ध व्यय होता है, और जो मेरे लिये समाज का सदस्य होने के नाते आवश्यक नहीं।

[८] धार्मिक अधिकार (Religious rights)—इस अधिकार का अभिप्राय है कि हर एक नागरिक अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार पूजा और उपासना कर सकता है और अपने विचारों का प्रचार भी कर सकता है, यदि वह धार्मिक सहिष्णुता की ओर ध्यान देता

है और अन्य सम्प्रदाय के अनुयायियो को दुःख नहीं देता। इस अधिकार का यह भी अर्थ है कि कोई नागरिक किसी विशेष धर्म का अनुयायी होने के कारण सरकारी पद वा सम्मान से वंचित नहीं हो सकता। इस स्वतन्त्रता पर भी यह नियन्त्रण है कि धर्म के नाम पर ऐसे कार्य्य न किये जायें जिन से सार्वजनिक शान्ति मे बाधा उपस्थित हो और देश मे रहने वाले भिन्न २ सम्प्रदायों के अनुयायियों मे घृणा बढ़े।

धार्मिक सम्प्रदायों का लक्ष्य सत्य और सदाचार का प्रचार है। इसलिए "सर्वधर्म समभाव" रखना चाहिए। किसी सम्प्रदाय की निन्दा न की जाए और उत्तेजित हो कर अनुचित बातें नहीं कहनी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति ऐसा कर तो राज्य उसे रोक सकता है। प्रत्येक मनुष्य अपने विचार और विश्वास मे इतने तक स्वतंत्र है जितने तक यह स्वतंत्रता दूसरों के लिए हानिकारक सिद्ध न हो।

[६] सांस्कृतिक अधिकार (Cultural rights)—सम्पूर्ण सभ्य राज्य अपने देश को जनता की शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक उन्नति के साधनों का प्रयोग कर रहे हैं। जैसे एक नागरिक को खाने-पीने को आवश्यकता है वैसे ही उसे ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिस से वह समाज तथा राज्य का योग्य सदस्य बन सके। एक नीतिज्ञ के विचारनुसार नागरिकता उस सहायता और सहयोग को कहते हैं जो एक नागरिक अपने समाज तथा राज्य के हित के लिए देता है। इसका अभिप्राय यह है कि नागरिक को ऐसी शिक्षा दी जाये, जिससे प्राप्त करके वह अच्छे और बुरे में भेद कर सके और देश तथा समाज की उन्नति मे उचित भाग ले सके। प्रगतिशील राज्यों में प्रारम्भिक शिक्षा (Primary Education) अनिवार्य और निःशुल्क (Free and Complusory) है और वयस्कों (adults) को साक्षर बनाने का भी समुचित प्रबन्ध है। हमारे देश में अभी ऐसा नहीं। हमारे राज्य को इस विषय में बहुत कुछ करना होगा। शिक्षाप्रणाली

मे ऐसा परिवर्तन करना होगा, जिसमें यौद्धिक उन्नति के साथ २ व्यापारिक तथा शिल्प सम्बन्धी शिक्षा भी प्राप्त हो जाए। शिक्षा का माध्यम भी मातृ-भाषा को स्वीकार करना पड़ेगा। वर्धा शिक्षाप्रणाली (Wardha Educational Scheme) में ये सारे गुण विद्यमान हैं। शिक्षाप्रणाली का आधार 'करो और सीखो' (learning by doing) पर अवलम्बित होना चाहिए। इस कार्य के लिए शिक्षाप्रणाली में परिवर्तन करना होगा। भारत संघ के सदस्य-राज्य इस शिक्षाप्रणाली पर विचार कर रहे हैं।

केवल मात्र प्रारम्भिक शिक्षा से यह कार्य न होगा। योग्य छात्रों के लिए बौद्धिक (Academic) तथा शिल्प सम्बन्धी (Technical) शिक्षासंस्थाएं स्थापित करनी होंगी। इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करके देश के नवयुवक सच्चे नागरिक बनेंगे और देश की उन्नति में सहायक होंगे।

(ख) राजनैतिक अधिकार
(Political Rights)

अधिकार का उद्देश्य नागरिक जीवन का विकास तथा राज्य की उन्नति है। प्रत्येक अधिकारप्रसंग में यह स्मरण रहे कि किसी नागरिक के कार्य से दूसरे नागरिकों का अहित न हो, क्योंकि दूसरे नागरिकों के अहित से सारे राज्य का अहित होता है। सच तो यह है कि अधिकार केवल ऐसा वातावरण बनाने के लिए है जिस में प्रत्येक नागरिक का जीवन तथा राज्य का जीवन भली-भांति उन्नत तथा विकसित हो सके। जो अधिकार ऊपर वर्णन किये गये हैं। सारे नागरिक तथा राष्ट्रीय जीवन की सफलता के लिये उपयोगी हैं। परन्तु प्रजातन्त्रात्मक (Democratic) देशों में साधारण जनता के प्रतिनिधि राजशासन को चला रहे हैं। ऐसे देशों में आवश्यक है कि साधारण जनता को मत देने का अधिकार (Right to vote) व्यवस्थापिका सभाओं

में चुने जाने का अधिकार (Right of election to the Legislature), सरकारी पद पाने का अधिकार (Right to Govt. Service) और सरकार से प्रार्थना करने का अधिकार (Right to petition) प्राप्त हों। ये अधिकार राजनैतिक अधिकार (Political Rights) कहलाते हैं, क्योंकि जनता को इन अधिकारों के प्राप्त होने के अनन्तर ही राजशासन उत्तम बन सकता है। कुछ राजनैतिक अधिकारों की व्याख्या नीचे की जाती है —

[१] मत अधिकार (Right to vote)—राज्य की स्थिति अच्छे कानून पर निर्भर है और प्रजातन्त्रात्मक शासन में कानून बनाने का काम प्रजा के प्रतिनिधि करते हैं। प्रतिनिधियों का चुनाव जनता द्वारा होता है। वोट के द्वारा जनता अपने प्रतिनिधि व्यवस्था सभा के लिए चुनती है, इसलिए वोट नागरिक का सब से प्रधान अस्त्र (weapon) है। यद्यपि प्रजातन्त्र का यह आदर्श है कि प्रत्येक व्यक्ति, पुरुष या स्त्री, जो राज्य में रहता हो, वोट देने का अधिकारी हो सकता है परन्तु सब देशों में प्रत्येक व्यक्ति को वोट देने का अधिकार नहीं। दूसरे देशों के निवासी, छोटी आयु के बालक, पागल, अपराधी आदि को वोट के अधिकार से वंचित रखा गया है। इसके अतिरिक्त असंख्य अपठित और निर्धनों को भी वोट का अधिकार प्राप्त नहीं, परन्तु यह प्रयत्न किया जा रहा है कि प्रत्येक वयस्क (adult) को मत देने का अधिकार हो और सम्पत्ति की शर्त हटा दी जाए। स्वतन्त्र भारत के संविधान में विश्वमताधिकार को स्वीकार किया गया है और प्रयत्न किया जायगा कि अधिक से अधिक जनता निर्वाचन में भाग ले सके।

[२] चुने जाने का अधिकार (Right of being elected to a public office) डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्युनिसिपल बोर्ड और अन्य कानून बनाने वाली सभाओं के लिए नागरिकों को अपना मत देना पड़ता है और चुनाव द्वारा ऐसा मत प्राप्त किया जाता है। प्रजासत्तात्मक

शासन में सरकार प्रजा की होती है, प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा चलाई जाती है और प्रजा के कल्याण के ही कार्य्य करती है। ऐसे शासन में हर एक नागरिक का अधिकार हो जाता है कि वह कानून बनाने वाली सभा (Legislature) का सदस्य बन सके, यदि वह शिक्षित है, जन सेवा का अभिलाषी है और राजनीति के नियमों में निपुण है। इस अधिकार से जनता में समानता, स्वतन्त्रता और निःस्वार्थता आदि गुणों का विकास होता है और मनुष्य जीवन आनन्दमय बनता है।

[३] सरकारी पद पाने का अधिकार—(Right to hold public post)—हर एक नागरिक को सरकारी पद प्राप्त करने का अधिकार है यदि वह उसके योग्य हो। योग्यता का निर्णय उसकी शिक्षा, स्वास्थ्य, आचार और विचारधारा (mental outlook) के अनुसार होता है। यदि एक नागरिक सुशिक्षित, पुरुषार्थी, चतुर और सेवा परायण है, वह सरकारी पद पाने के योग्य गिना जाता है और प्रायः ऐसे व्यक्ति को नियुक्त भी किया जाता है। प्रजासत्तात्मक राज्य में यह अधिकार महत्त्व पूर्ण है। राज्य में निर्धन-से-निर्धन और धनाढ्य-से-धनाढ्य पुरुष में कोई भेद नहीं किया जाता। जाति, वर्ण तथा कर्म के कारण किसी व्यक्ति को किसी पद की प्राप्ति से वंचित नहीं रखा जा सकता। हर एक सरकारी विभाग (department) योग्य नागरिकों के लिये समान रूप से खुला हुआ होता है। नागरिक से भिन्न किसी अन्य को यह अधिकार प्राप्त नहीं। अधिकार से आत्म-सम्मान, (self-respect) समानता (equality) और भ्रातृभाव (fraternity) का विकास होता है और राज्य उन्नति के शिखर पर आरूढ़ होता है।

[४] सरकार से प्रार्थना का अधिकार (Right to Petition)—राज्य के अन्दर जब नागरिक को पूरे अधिकार प्राप्त हों तो उसका यह भी अधिकार है कि वह अपने दुःखों अथवा राज्य की

त्रुटियों को प्रकट कर सके। यह कार्य वह व्यक्तिगत या संगठित रूप से कर सकता है। राजशासन के सुधार के लिए यह अधिकार हर प्रकार से अति आवश्यक है। अनुचित तथा असभ्य आलोचना नहीं करनी चाहिए, बल्कि वह सभ्यता और नैतिक दृष्टि से राजशासन की त्रुटियां को सरकार और जनता के समाने प्रकट कर सकता है। कभी २ इस अधिकार के प्रयोग के सम्बन्ध में कहा जाता है कि क्या नागरिक को सरकार का विरोध करने का अधिकार (Right to resist State) देना उचित है? यह कानूनी अधिकार नहीं, परन्तु राज्य का सदस्य होने के कारण नैतिक (moral) अधिकार है कि वह राज्य के हित के लिए वर्तमान शासक वर्ग को सावधान करे। इस अधिकार का प्रयोग बहुत बिगड़ी हुई अवस्था मे किया जाता है।

साधारण तथा राजनैतिक अधिकारों की इस विशाल सूची का रहस्य केवल मात्र तीन मौलिक अधिकारों (Fundamental Rights), जीवन (Life), स्वतन्त्रता (Liberty) और सम्पत्ति (Property) के अन्तर्गत है।

३. नागरिकों के कर्तव्य
(Duties of Citizens)

देश और राज्य के सदस्य होने के रूप में एक नागरिक के कर्तव्य विस्तृत हो जाते हैं, क्योंकि उसे देश मे रहने वाले सभी लोगों के साधारण हित का ध्यान करना पड़ता है। राज्य सब से अधिक आवश्यक और महत्वपूर्ण संगठन (association) है। वास्तव में राज्य ही व्यक्तियों और उनके भिन्न २ संगठनों की उन्नति और विकास का मूल (basis) है। इस कारण एक व्यक्ति के कर्तव्य राज्य के प्रति आवश्यक हैं। एक और बात जो इस प्रकरण मे अंकित करने योग्य है वह यह है कि अन्य संगठनों के प्रति कर्तव्यों के न पालन करने से इतनी हानि नहीं होती जितनी हानि इस संगठन अर्थात् राज्य के प्रति कर्तव्यों के न पालने से हो जाती है। न केवल भारी

हानि होती है बल्कि दण्ड भी मिल जाता है। एक व्यक्ति अपने राज्य की सच्ची सेवा तभी कर सकता है जब कि वह ऐसी सेवा किसी भय के कारण नहीं बल्कि सच्ची और पवित्र राजभक्ति से प्रेरित होकर करे।

एक नागरिक के अपने राज्य के प्रति निम्नलिखित कर्तव्य हैं—

[१] राजभक्ति और राजाज्ञा पालन (Allegiance and obedience)—प्रत्येक नागरिक अपने राज्य का भक्त हो। देशद्रोह से बढ़कर दूसरा अपराध नहीं। हर एक नागरिक का कर्तव्य है कि वह अपने राज्य पर पूरा विश्वास रखे, इससे कभी विद्रोह न करे और इनके शासन और शान्ति में विघ्न न डाले। राज्य के कानून को मानना नागरिक का प्रधान कर्तव्य है। नियमों के उल्लेखन से समाज में अराजकता फैल जाती है और सामूहिक जीवन असम्भव हो जाता है। आज कल राज्य का विधान (कानून) साधारण जनता के प्रतिनिधि बनाते हैं। यह विधान जनता के हित के लिए होते हैं, इसलिए इनका मानना उचित है। यदि कोई कानून प्रयोग किए जाने पर जन साधारण के लिए हितकारी सिद्ध न हो तो उसमें परिवर्तन करने वा उसको दूर करने का प्रयत्न कानूनी मर्यादा में रहकर किया जाए। कभी २ चोर डाकू वा आचारभ्रष्ट लोग मिलकर दंगे फिसाद कर देते हैं। ऐसे अपराधियों के दमन करने और उनको दण्ड दिलाने में राजशासन को सहायता अति आवश्यक है। तात्पर्य यह है कि हर एक नागरिक को राजभक्त होना आवश्यक है और अपने राज्य की उन्नति में तन मन धन से सहायता देना इसका परम कर्तव्य है।

[२] सैनिक सेवा (Military service)—नागरिक का दूसरा कर्तव्य अपने राज्य के प्रति यह है कि वह राज्य की रक्षा के लिए सैनिक सेवा करे। प्रत्येक देश में अन्य देशों के आक्रमण से बचने और देश के अन्दर शान्ति और व्यवस्था के लिए राजकीय सेना होती

है। परन्तु यह सेना अधिक संख्या में नहीं होती, इसलिए फिसाद (rioting), क्रान्ति अथवा बाहरी आक्रमण के समय यदि देश रक्षा की आवश्यकता पड़े तो प्रत्येक नागरिक को सेना में सम्मिलित होकर युद्ध करने से संकोच नहीं करना चाहिए। बहुत से देशों में नागरिकों को अनिवार्य रूप में सैनिक शिक्षा (military training) देने तथा देश पर आपत्ति आने के समय योग्य अवस्था वाले व्यक्तियों को सेना में भरती कर लेने का नियम है। गत युद्ध में इङ्गलैण्ड, जर्मनी और रूस ने अनिवार्य सैनिक शिक्षा (conscription or compulsory military service) का नियम लागू किया था। देश के लिए प्राणों को निछावर कर देने से विमुख होने वाला नागरिक देश द्रोही कहलाता है। भारतवर्ष में अभी तक यह कानून नहीं था, परन्तु आशा की जाती है कि स्वतन्त्र भारतवर्ष में यह नियम वैधानिक रूप में स्वीकृत किया जायेगा और देश के युवकों को सैनिक शिक्षा देने का पूरा प्रबन्ध किया जायगा।

[३] कर देना (Payment of taxes)—राज्य के कार्यों को चलाने के लिए सैकड़ों कर्मचारी लगाए जाते हैं और उन सब को वेतन देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त सड़कें, नहरें, रेलें, हस्पताल आदि जनता के सुख के लिये निर्माण किए जाते हैं। इन सब कार्यों के लिये धन की आवश्यकता है। यह धन करों द्वारा एकत्रित किया जाता है। इसलिए करों का देना नागरिक का प्रधान कर्तव्य है। करों के देने में ढील डाल अनुचित है। जितने भी कर लगाये जाते हैं वे जनता की आर्थिक अवस्था का अनुमान लगा करके लगाये जाते हैं और जनता की भलाई के कार्यों में व्यय होते हैं। राज्य का निर्माण केवल नागरिकों के सुख के लिए किया जाता है और राज्य के सारे कार्य नागरिकों के हित के लिए होते हैं इस लिए नागरिकों का कर्तव्य है कि वे राज्य को कर प्रसन्नता पूर्वक देवें और किसी प्रकार का धोखा न करें। कर साधारण जनता से प्राप्त होते हैं, इस लिए वे राजशासन

में भाग लेने के अधिकारी हो जाते हैं और सरकार की आय और व्यय (Income and Expenditure) पर आलोचना कर सकते हैं। इस प्रकार की आलोचना यदि वैधानिक ढंग (legal lines) पर की जाय तो देश के राजशासन में पर्याप्त सुधार हो सकता है।

[४] वोट का सदुपयोग (Right use of franchise)—प्रजासत्तात्मक देशों में जनता के चुने हुए प्रतिनिधि ही सरकार या गवर्नमेंट बनाते हैं, इस लिए प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि चुनाव के समय उचित पक्ष को वोट देवें। जो आलस्य करके अथवा उदासीन होकर वोट नहीं देता वह मताधिकार का उचित पात्र नहीं। कुछ देशों में वोट देने जाना नागरिकों का कानूनी कर्त्तव्य बना दिया है। जो नागरिक वोट देने नहीं जाता वह दण्ड का भागी होता है। वह दण्ड धन के रूप में अथवा किसी और रूप में होता है। वोट सोच विचार कर योग्य प्रार्थी को दिया जाये। जाति, वर्ण, धर्म, भय तथा पक्षपात से ऊपर होकर सच्चे देश सेवक को ही वोट दिया जाय। यदि वोट के विषय में प्रमाद या आलस्य किया जाये तो देश को हानि होगी क्योंकि जनता के चुने हुये प्रतिनिधियों ने ही देश का विधान बनाना और देशके शासन में भाग लेना है,यदि ये प्रतिनिधि योग्य और सदाचारी न होंगे तो देश अधोगति को प्राप्त होगा। जिस प्रकार वोट का सदुपयोग हर एक नागरिक का कर्त्तव्य है इसी प्रकार जनता द्वारा चुन लिए जाने पर या किसी पद के लिये प्रस्तावित होने पर हर एक सच्चे नागरिक का यह धर्म है कि उस पद को स्वीकार करे और देश की सेवा श्रद्धापूर्वक करे। कठिनाइयों से घबरा कर या स्वार्थवश होकर समाज तथा देश का द्रोही न बने।

[५] प्रारम्भिक शिक्षा और कार्य (Elementary education and work)—प्रारम्भिक शिक्षा और कार्य्य हर नागरिक के अधिकार है और राज्य का यह कर्त्तव्य है कि इन दोनों का अच्छा प्रबन्ध करे। हर एक नागरिक का भी यह कर्त्तव्य है कि वह स्वयं

शिक्षा प्राप्त करे और अपने बच्चों को भी कम से कम प्राइमरी शिक्षा दिलाए। बहुत से राज्यों में यह शिक्षा अनिवार्य (compulsory) हो गई है। यदि जनता अशिक्षित और मूर्ख होगी तो देश की अवस्था न सुधरेगी और देश गुटबन्दी का अखाड़ा बना रहेगा। रूस में एक नियम सब पर समान लागू है—जो काम नहीं करेगा वह नहीं खाएगा। मांगकर पेट भरना महा पाप है और भिक्षा मांगने वाले देश के साथ द्रोह करते हैं। इस लिए विद्या-प्राप्ति और जीविका के लिए काम करना सच्चे नागरिक के लक्षण हैं।

[६] सेवा परायणता (Public Spirit) हर एक नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह समाज की यथाशक्ति सेवा करे। जब आवश्यकता पड़े तो वह उत्तरदायी सरकारी पद को स्वीकार करे और लोक सेवा से संकोच न करे। इस प्रकार सेवा करने की भावना (spirit) को पब्लिक स्पिरिट कहते हैं। यह सामाजिक जीवन में अर्थात् म्युनिसिपल कमेटी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आदि व्यवस्थापिका सभाओं में पूरे उत्साह से भाग ले।

पब्लिक स्पिरिट के अभाव का परिणाम यह है कि म्युनिसिपिल कमेटी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के कार्य भली भांति नहीं किए जाते। जब सदाचारी निःस्वार्थी और चतुर नागरिक सामाजिक सेवाओं के कार्य में भाग नहीं लेते तो उनके स्थान पर दुराचारी, स्वार्थी और अयोग्य व्यक्ति आ जाते हैं और समाज तथा राज्य को नौका को डुबा देते हैं। हर एक योग्य और श्रेष्ठ नागरिक का परम कर्त्तव्य है कि वह अपने आराम के समय को समाज तथा राज्य के सुख और उन्नति पर निछावर कर दे। इस त्याग और बलिदान के बिना राज्य के लिए उन्नति करना कठिन हो जाता है।

Questions (प्रश्न)

1. "Rights and duties are correlated" Discuss.

आलोचना करो कि अधिकार और कर्तव्य एक दूसरे से सम्बन्धित है।

2. Describe the rights–Civil and Political—of a citizen in a modern state

आधुनिक राज्य मे एक नागरिक के साधारण तथा राजनैतिक अधिकार वर्णन करो।

3. Describe some of the important duties of a citizen in a modern state

आधुनिक राज्य मे एक नागरिक के बडे २ कर्तव्य वर्णन करो।

4 Explain briefly the duties of a citizen in the modern state. To what extent do the rights of a citizen depend upon performance of duties !

नागरिक के कर्तव्यों को संक्षेप से लिखो। किसी नागरिक के अधिकार कहां तक कर्तव्यों के पालन करने पर निर्भर हैं ?

सातवां अध्याय

राज्य के कर्तव्य

(Functions of the State)

१–तीसरे अध्याय में बताया गया है कि सामाजिक जीवनकी इकाई मनुष्य या व्यक्ति है। समाज, संघों, राज्यों और उनकी सरकारों के सारे प्रयत्न केवल मनुष्य जीवन को सुखी और सफल बनाने के लिए रचे जाते हैं। समाज का निर्माण, संघों को रचना और राज्य की स्थापना का उद्देश्य मानव जीवन का विकास है। राज्य अपने अस्तित्व को स्थिर रखने और मानव जीवन को सफल बनाने के लिए अपने कर्तव्यों की सूची बनाता है और इस सूचीके अनुसार अपने कार्य-क्रम (programme) को तैयार करता है। राज्य के कर्तव्यों को दो भागों में बांटा गया है। एक प्रकार के कर्तव्य तो वे हैं जो राज्य के अस्तित्व के लिए आवश्यक हैं। यदि इन कर्तव्यों को पूरा न किया जाए तो राज्य का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। राज्य को बाहरी शत्रुओं से बचाना, और राज्य के भीतर शान्ति और व्यवस्था रखना अस्तित्व के लिए अनिवार्य हैं। ऐसे कर्तव्यों को आवश्यक और मौलिक कर्तव्य कहते हैं। दूसरे प्रकार के कर्तव्य वे हैं जिनको पूरा करने से देश का नागरिक और सामाजिक जीवन सुखी बनता रहता है और देश की आर्थिक और राजनैतिक अवस्था उन्नत होती है। ऐसे कर्तव्यों को ऐच्छिक या सहायक कर्तव्य कहते हैं। अब हम इन का विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं।

[क] आवश्यक कर्तव्य

(Fundamental or Essential Functions)

[१] बाहरी शत्रुओं से रक्षा--आसपास के राज्यों में से कोई

आक्रमण करे या हमारे अन्तर्राष्ट्रीय अधिकारों को कुचले तो इन दोनों आपत्तियों से देश को बचाना आवश्यक हो जाता है और राज्य को इन रक्षा के लिए पूरा २ प्रबन्ध करना पड़ता है। आजकल सेना तीन प्रकार की होती है—भूमि सेना (Land forces), समुद्री सेना (Navy) और हवाई सेना (Air forces)। तीनों प्रकार की सेना का प्रबंध युद्ध के लिए नूतन से नूतन शस्त्रों और विधियों से करना अतीव आवश्यक है। जिस राज्य के पास ऐसा प्रबन्ध न होगा उसका अस्तित्व सदा संकट में होगा और इस भय के कारण राज्य की आन्तरिक अवस्था भी सम्भल न सकेगी। स्मरण रहे कि बाहरी शत्रुओं से रक्षा दो बातों पर निर्भर है—एक तो तीनों प्रकार की सेना पर जिसका वर्णन ऊपर किया गया है और दूसरी अच्छी नीति (Wise Policy) पर। आस पास के राज्यों के साथ सम्बन्ध रखने के लिए बाहरी सम्बन्ध-विभाग (Foreign Affairs Department) स्थापित किया जाता है। इस विभाग का कार्य्य दूसरे देश के दूतों को अपने देश मे और अपने दूतों को दूसरे देशों में भेजना होता है। ये दूत अपने राज्य को आस पास के राज्यों की आर्थिक, राजनैतिक और व्यवहारिक अवस्थाओं से सूचित किया करते हैं। इससे उनके द्वारा दी गई सूचना के अनुसार अपने देश की नीति का निश्चय और अपने राज्य को दृढ बनाने का कार्यक्रम तैयार किया जाता है। इसके अतिरिक्त बाहरी देशों के साथ व्यापारिक समझौते किए जाते हैं। और बाहिर से वस्तुओं के मंगाने और बाहिर के देशों को वस्तुओं के भेजने (Import and Export)का क्रम जारी रहता है। इस प्रकार के सम्बन्ध से देश की उन्नति जीवनके भिन्न २ पहलुओं से होती रहती है। यदि दोनों देशों के मध्य में किसी प्रकार की भ्रान्ति (misunderstanding) हो जाय तो उसे भी दूर किया जाता है और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति मे सहायता दी जाती है।

[૪] देश के भीतर शान्ति और व्यवस्था स्थिर रखना—

राज्य के भीतर शांति रखने,राज्य शासनको भली प्रकार चलाने और प्रजा के जीवन और धन की रक्षा के लिए संगठित पोलीस शक्ति दल स्थापित किया जाता है। बिना पोलीस के दुराचारियों, चोरों और डाकुओं का दमन करना कठिन हो जाता है। केवलमात्र पोलीस से देश में शान्ति स्थापित करना कठिन है, जब तक साधारण जनता के सहयोग को इस कार्य में प्राप्त न किया जाए। राज्य अधिकारियों का परम कर्त्तव्य है कि वह साधारण जनता के विश्वास को प्राप्त करें और जनता को यह अनुभव हो जाए कि राज्य के काम नागरिकों की उन्नति और भलाई के लिए हैं। उनको समझाया जाए कि अमन और शान्ति के बिना आर्थिक और सांस्कृतिक संस्थाओं का चलाना असम्भव हो जाता है और इन संस्थाओं के न चलने से देश में उपद्रव मच जाता है। इस लिए पोलीस के प्रबन्ध के साथ २ अच्छे जनमत (public opinion) के बनाए रखने के साधनों का भी प्रयोग किया जाए।

[३] न्याय का प्रबन्ध करना—पोलीस तो अपराधियों को पकड़ती है परन्तु अभियुक्तों के अपराध की देख रेख और उचित दण्ड दिलवाने के लिए न्यायालयों (courts) की स्थापना आवश्यक है। न्यायालयों में न्यायाधीश (magistrates) राज्य के विधान के अनुसार अपराधियों को दण्ड देते हैं और इस प्रकार दुराचारियों और डाकुओं को नियन्त्रण में रखा जाता है। न्यायालयोंका प्रभाव साधारण जनता पर अच्छा पड़ता है और देश में अमन हो जाने पर व्यापार और व्यवसाय उन्नति करते हैं।

[४] धन सम्बन्धी नियमों का निर्माण—प्रत्येक राज्य में लोगों की व्यक्तिगत सम्पत्ति होती है। किसी को यह सम्पत्ति पिता-पितामह से परम्परा द्वारा प्राप्त होती है, कोई धन कमा कर मकान और भूमि आदि अपने रहने आदि के लिए मोल लेता है। कोई जायदाद के रहन आदि के द्वारा अपना कार्य चलाता है। लेन देन के इन सभी कार्यों

के सम्बन्ध में राज्य कुछ नियमों का निर्माण करता है और उन नियमों के अनुसार दीवानी न्यायालयों में लोगों के आपस के झगड़ों का निर्णय होता है। इन नियमों के निर्माण से देश की आर्थिक अवस्था में उन्नति होती है, साधारण जनता अपने कारोबार में लगी रहती है और देश में अमन रहता है।

[५] अधिकारों और कर्तव्यों की शिक्षा का प्रबन्ध—इस प्रजा सत्तात्मक युग में नागरिक शिक्षा का प्रबन्ध बहुत आवश्यक है। नागरिकों को अपने अधिकारों और कर्तव्यों से भली भांति परिचित कराना एक अच्छे राज्य का परम कर्तव्य है। व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक जीवन के नियमों का प्रचार साधारण जनता में कई साधनों से हो सकता है और राज्य को ऐसे साधनों का प्रयोग करना चाहिए। स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं को चलाने के लिए नागरिकों को वोट का महत्व समझाया जाए और उनके हृदय में अंकित किया जाए कि वे केवल योग्य, निस्वार्थी और सेवा परायण प्रतिनिधियों को म्युनिसिपल कमेटी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और दूसरी व्यवस्थापिका सभाओं में भेजें। सुखी जीवन के साधनों (सफाई, प्रारम्भिक शिक्षा, प्रकाश और पानी आदि के प्रबन्ध) से लोगों को भली प्रकार परिचित किया जाए, सामाजिक सेवा के अन्य कार्यों की शिक्षा भी नागरिकों को दी जाए, सेवा सम्मितियों का निर्माण किया जाय और उनको रोगी सेवा, यातायात के नियन्त्रण, मेलों में लोक सेवा आदि का ज्ञान क्रियात्मक रूप में दिया जाए।

[६] मुद्राओं, तोलों और मापों का प्रबन्ध—वाणिज्य व्यापार और लेन देन के लिए मुद्राओं (सिक्कों coins), तोलों (weights) और मापों (measurements) का प्रबन्ध अति आवश्यक है। सिक्के, माप और तोल सारे देश में एक जैसे हों, ताकि भोले-भाले लोगों को धूर्त लोग धोखा न दे सकें। जो लोग कृत्रिम (जाली) नोट या सिक्के बनाएं और झूठे बाटों और गजों का प्रयोग करें, उनको

कठोर दण्ड दिया जाए ताकि साधारण जनता सुख और शान्ति से अपने व्यवसाय में लगी रहे, धन कमा कर अपना जीवन सुखी बना सके और आश्रितों की सहायता भी कर सके।

[७] करों की प्राप्ति--पोलीस, सेना, न्यायालय तथा अन्य अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए पर्याप्त धन की आवश्यकता होती है और बिना धन के किसी राज्य का शासन प्रबन्ध नहीं हो सकता। इन आवश्यकताओं के अतिरिक्त साधारण जनता के लिये शिक्षा केन्द्रों, हस्पतालों,सड़कों आदि सुविधाओंका प्रबन्ध नागरिक जीवन को सुखी और उन्नत करना है। इन भिन्न २ आवश्यकताओं के लिये राजशासन साधारण जनता पर कई प्रकार के कर (taxes) लगाता है। ये कर आवश्यक हैं और हर एक नागरिक को देने पड़ते हैं। इन करों द्वारा प्राप्त किये हुये धन से राज्य के कार्यों को चलाया जाता है। परन्तु एक अच्छे राज्य का कर्तव्य है कि ये कर बड़ी सावधानता से लगाये जायें और बड़ी मात्रा में करों के नीचे साधारण जनता को न कुचला जाए।

२--ऊपर वर्णन किये हुये कर्तव्यों को हर एक राज्य की सरकार पूरा करती है। अन्तर केवल इतना होता है कि कोई राज्य किसी कर्तव्य को अधिक महत्व देता है और कोई राज्य किसी कर्तव्य को। इस कारण कोई राज्य अच्छा समझा जाता है और कोई बुरा। निरंकुश राजा सेना और पोलीस पर अधिक धन लगाते हैं और अपने आपको बलशाली बनाने में लगे रहते हैं। ऐसे राज्यों मे करों की प्राप्ति तो शीघ्रता से की जाती है परन्तु नागरिकता के अधिकारों को समाप्त कर दिया जाता। एक अच्छा राज्य सारे कर्तव्यों की ओर समान रूप से ध्यान देता है और अपने राज्य को हर पहलू से दृढ़ और सम्पन्न बनाने का यत्न करता है और अपने नागरिकों के सहयोग का अभिलाषी होता है। ऐसा राज्य आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं से सुरक्षित रहता है और उसके नागरिक सुखी जीवन व्यतीत करते हैं।

[ख] ऐच्छिक कर्तव्य
(Optional or Ministrant Functions)

२–ऐच्छिक कार्य राज्य के अपने लिये नहीं बल्कि राज्य की जनता के हित के लिये किये जाते हैं। समाजवादी राज्य (socialist states) इन कार्यों को जनता के आर्थिक और नैतिक हित के लिये करते हैं, क्योंकि ये कार्य बिना राज्य की सहायता और सहयोग के नहीं हो सकते। ऐच्छिक कार्यों के सम्बन्ध में भिन्न २ नीतिज्ञों के विचार भिन्न २ हैं और इन में से कुछ का वर्णन नीचे किया जाता है—

[१] बड़े २ उद्योग और व्यवसायों पर एकाधिकार—रेल, तार, डाक, बिजली, पानी, प्रकाश, बेतारद्वारा समाचार पहुँचाना, सिक्कों आदि का प्रबन्ध बड़ी मात्रा में करना पड़ता है, और वह कार्य केवल राज्य संघ ही कर सकता है। राज्य इनका प्रबन्ध करता है और जनता करों के रूप में इनके प्रयोग का बदला चुका देती है।

[२] मजदूरी सम्बन्धी कानून—देश के अन्दर अशान्ति का बड़ा भारी कारण धन का अनुचित विभाजन है। किसी के पास तो इतना धन है कि वह धन के अहंकार में आकर बड़े दुराचार और अत्याचार करता रहता है और किसी के पास तो एक समय का खाना मोल लेने के लिए भी नहीं। मजदूरों को पूँजीपतियों के अत्याचार से बचाने के लिये आवश्यक है कि काम करने के घण्टे, मजदूरी की नियत दर और सप्ताह में एक दिन का अवकाश आदि के नियम बनाए जाए ताकि छोटे स्तर (वर्ग) के लोगों की दशा धीरे २ अच्छी होजाए।

[३] स्वदेशी उद्योगों और व्यवसायों की उन्नति के साधन—इस सम्बन्ध में राज्य को आयात और निर्यात (imports and exports) पर नियन्त्रण रखना होगा ताकि स्वदेशी उद्योगों को उन्नति करने का अवसर मिले और देश के भीतर नये २ आविष्कारों

के लिए वैज्ञानिकों का उत्साह बढ़े और देश अपनी दैनिक आवश्य-कताओं के लिये अन्य देशों पर निर्भर न रहे। एक अच्छे राज्य को आत्म-निर्भरता (self-sufficiency) को दृष्टि से ओझल नहीं करना चाहिये।

[४] बौद्धिक तथा शिल्प शिक्षा का प्रबन्ध—(Accademic and Technical Education)—जनता मे जागृति पैदा करने और अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान देने के लिए बौद्धिक शिक्षा का बड़ी मात्रा में सर्व शिक्षा (Mass Education) का प्रबन्ध हो। जीविका के प्रबन्ध के लिए शिल्प शिक्षा देनी नितान्त आवश्यक है। स्थान २ पर प्राइमरी, मिडिल और हाई स्कूल खोले जाएं। केन्द्रीय स्थानों पर टैकनिकल, मेडिकल और इन्जीनीयरिंग संस्थाएं स्थापित की जाएं। वयस्कों की जागृति के लिए रेडियो, वाच-नालयों और पुस्तकालयों का प्रबन्ध भी उचित मात्रा में किया जाय।

[५] स्वास्थ्य और स्वच्छता के साधन—नगरों मे सफाई के लिए मेहतरों और भिश्तियों का पूरा २ प्रबन्ध हो और गांवों में सफाई के लिए ग्राम-सेवा-समितियों का निर्माण किया जाए, कुओं और तालावों की सफाई के लिए धन से सहायता की जाए। रोगों की रोक-थाम और रोगियों की सेवा के लिए देश के अन्दर हस्पतालों और औषधालयों का जाल फैला दिया जाए। चेचक, हैजा, प्लेग आदि रोगों के टीके का भी प्रबन्ध होना चाहिए।

[६] विहार और विनोद (recreation)—विहार और विनोद के लिये स्थान २ पर पार्क, उद्यान, वाचनालय, कलासंग्रहालय (अजायबघर), पशुवाटिका (चिड़ियाघर) आदि बनाए जाएं। इस प्रकार नागरिकों को शारीरिक और मानसिक उन्नति की जाए और उनके मनोविनोद का भी प्रबन्ध किया जाय।

[७] आर्थिक उन्नति के साधन—राज्य के अन्दर धन-धान्य की वृद्धि और सम्पन्नताके लिए खानों, जंगलों, मत्स्यक्षेत्रों (fisheries),

बिजली उत्पन्न करने के लिए प्रपातों (waterfalls) आदि की ओर अधिक ध्यान दिया जाए। इससे एक तो राज्य वासियों को सुख मिलेगा, दूसरे राज्य में सम्पत्ति की वृद्धि होगी और धन की वृद्धि के कारण राज्य की शक्ति बढ़ेगी।

[८] सामाजिक सुधार—राज्य वासियों में कई कुरीतियां और त्रुटियां हैं जिन का दूर करना दो चार व्यक्तियों के वश का नहीं। इस लिए राज्य को सामाजिक सुधार की ओर भी ध्यान देना चाहिए। छोटी आयु के विवाह, विधवाओं की दुर्दशा, भिखमंगों की निर्लज्जता आदि ऐसी सामाजिक कुरीतियां हैं जिन के दूर करने के लिए राज्य की शक्ति और धन की सहायता की आवश्यकता है। भीख मांगना कानूनी रूप में बंद किया जाए और स्थान २ पर रक्षा-गृह (rescue homes) खोले जाएं, जहां दरिद्रों को भोजन और वस्त्र दिये जायें और साथ ही उनको काम करने की शिक्षा दी जाए और इनको अपने पांव पर खड़ा होने का साहस दिया जाए।

Questions (प्रश्न)

1. Describe the main Functions of the State- Which of these functions do you consider Compulsory and why ?

   किसी राज्य के मोटे २ कर्तव्य वर्णन करो। तुम्हारे विचार में इन कर्तव्यों में से कौन २ कर्तव्य आवश्यक हैं, और क्यों ?

2. What do you mean by the Compulsory and Optional functions of a State ? explain your viewpoint with illusrations ?

   आवश्यक और ऐच्छिक कर्तव्यों का अन्तर उदाहरण देकर समझाओ ?

3. What steps does the state take to secure inner and outer security?

राज्य अपनी बाहिरी और भीतरी रक्षा का क्या प्रबन्ध करता है?

आठवां अध्याय

राज्य के उद्देश्य और कर्तव्य सम्बन्धी सिद्धान्त

(Theories re the Aims and Functions of the State)

१ पहले वर्णन किया गया है कि नागरिक जीवन की इकाई मनुष्य या व्यक्ति है और व्यक्ति के जीवन को सुखी और सफल बनाने के लिए समाज और संघों का निर्माण हुआ। मनुष्य जीवन का उद्देश्य क्या है। यह प्रश्न बहुत कठिन है और संसार भर के ऋषि, मुनि, दार्शनिक, विद्वान् तथा देवदूत (पैगम्बर) इस सम्बन्ध में अपने अद्‌भुत तथा विचित्र विचार जनता के सामने रखते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि शरीर की समाप्ति पर मनुष्य जीवन का अन्त होता है, इस कारण मनुष्य को ऐसे साधनों को अपनाना चाहिये जिस से जीवन में उसे अधिक सुख और आनन्द की प्राप्ति हो। विचारकों, विद्वानों तथा महापुरुषों का दूसरा समूह मृत्यु के अनन्तर जीवन में विश्वास रखता है और कहता है कि इस जीवन के अच्छे या बुरे कर्म मृत्यु के अनन्तर जीवन को अच्छा या बुरा बनाते हैं, इस कारण इस जीवन में शुभ कर्मों का संग्रह करो और मनुष्य मात्र से प्रेम पूर्वक बर्ताव करो। विद्वानों तथा दार्शनिकों का तीसरा समूह इस जीवन से पूर्व जन्म में भी विश्वास रखता है और कहता है कि पूर्व जन्म के कर्मों के फल स्वरूप हमारे इस जीवन का आरम्भ अच्छे या बुरे वातावरण में होता है और इस जीवन के आचरण से परलोक का निर्णय होता है। इस प्रकार के विभिन्न विचारों के विस्तार में न जाते हुये

हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि प्रत्येक मनुष्य का शरीर(body) मस्तिष्क (brain), और हृदय (heart) हैं। बहुत से लोग इन तीनों वस्तुओं के अतिरिक्त प्रत्येक मनुष्य में आत्मा (spirit) की उपस्थिति भी मानते हैं।

२—मनुष्य जीवन की सफलता के लिए आवश्यक है कि शरीर दृढ़ और स्वस्थ हो, मस्तिष्क या बुद्धि विकसित हो और विचार ऊंचे हों, हृदय शुद्ध और उदार हो, और आत्मा संतुष्ट और शान्त हो। 'स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन' (a sound mind in a sound body) मनुष्य जीवन का सुन्दर आदर्श है और इसकी प्राप्ति के लिए यत्न करना उचित है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, समाज में रहकर प्रसन्न रहता है और समाज के अन्दर ही उसके जीवन की सफलता के साधनों का प्रबन्ध होता है। मनुष्य जीवन की आवश्यकताओं की सूची बड़ी विशाल है और इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसने प्राचीन काल से आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, व्यावसायिक और राजनैतिक संघों का निर्माण किया हुआ है और इन संघों द्वारा अपने जीवन की प्राप्ति में लगा हुआ है।

३—राज्य (state) एक महत्वपूर्ण संघ है और अन्य संघों की सफलता केवल इस संघ के सहयोग और सहायता पर अवलम्बित है। इस संघ के महत्व का प्रभाव इस मात्रा तक बढ़ गया है कि मनुष्य या व्यक्ति से, जिसके सुख और उन्नति के लिए इसका निर्माण हुआ है, संघर्ष करने लगा। इस संघर्ष का परिणाम यह हुआ कि व्यक्ति और राज्य के परस्पर सम्बन्ध के विषय में नीतिज्ञों के कई समूह बन गये हैं, और विचारों की भिन्नता का कारण राज्य के उद्देश्य और कर्तव्यों की भिन्नता है।

यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तु (Aristotle) और अफलातून-

(plato) ने मनुष्य और समाज के स्वरूप के सम्बन्ध मे लिखा है कि 'मनुष्य के लिए समाज में रहना स्वभाविक है, इस कारण मनुष्य एक सामाजिक या राजनैतिक प्राणी है और समाज के बाहर अथवा समाज से पृथक् रहना अस्वाभाविक (un-natural) है। इसलिए मनुष्य के व्यक्तित्व का वास्तविक विकास केवल समाज में ही हो सकता है। दूसरे मनुष्यो के संग में रह कर वह अपने आप का अनुभव कर सकता है और उनकी संगत में ही अपने सामाजिक कर्त्तव्यों, सामाजिक अधिकारों और अपने स्वरूप को समझ सकता है। इन विचारों के आधार पर हेगल (Hegel) ने आदर्श वाद(Idealism)के सिद्धान्त की नींव रखी और समाज के आदर्श पर प्रकाश डाला। हाबस (Hobbes) के विचार में राज्य का उद्देश्य मनुष्यके जीवन और धन की रक्षा है। लाक (Lock) राज्य के उद्देश्य में धन और जीवन की रक्षा के अतिरिक्त व्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा को भी सम्मिलित करता है। रूसो (Rousseau) का कथन है कि 'राज्य का कर्तव्य है कि वह हर प्रकार से व्यक्तियों को उन्नत करने और प्रसन्न रखने का प्रबन्ध करे। उन्नीसवीं शताब्दी में बेन्थम (Benthem) और मिल्ल (Mill) ने समर्थन किया कि 'राज्य का उद्देश्य अधिक से अधिक लोगों के लिए अधिक से अधिक लाभों (the greatest good of the greatest number) की प्राप्ति है। इन नीतिज्ञों के विचारों का समाज और राज्य के कार्यों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। ये लोग प्रत्येक वस्तु के मूल्य का अनुमान उसकी उपयोगिता (utility) से करने लगे। इस कारण इन नीतिज्ञों का नाम उपयोगितावादी (utilitarians) और इनके सिद्धान्त का नाम उपयोगितावाद (utilitarianism) पड़ गया। इसी प्रकार व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध पर विचार करते हुए नीतिज्ञों के और भी कई समूह हैं। यहां हम उनमें से कुछ समूहों के विचारों की व्याख्या और आलोचना करते हैं।

(१) आदर्शवाद
(Idealism)

आदर्शवाद की नींव अरस्तु और अफलातून के इन विचारों पर रखी गई कि मनुष्य समाज को पसन्द करता है, मनुष्य स्वभाव से ही सामाजिक या राजनैतिक प्राणी है और समाज या राज्य का निर्माण इस प्रकार किया जाय कि उसके अन्दर रहकर मनुष्य अपने व्यक्तित्व के विकास, अपने सामाजिक कर्त्तव्यों के अनुभव और अपने सामाजिक अधिकारों के ज्ञान के पूरे पूरे अवसर प्राप्त कर सके। दूसरे शब्दों में यूं कहिए कि राज्य व्यक्ति के असली व्यक्तित्व के विकास का जिम्मेदार है। (Hegel) ने इन विचारों के आधार पर राज्य के आदर्श सिद्धान्त (Idealism Theory of the State) को स्थापित किया। उसके विचारानुसार मनुष्य समाज में रहकर ऐसी स्वतन्त्रता को भोगता है जो समाज में आने से पहले की प्राकृतिक स्वतन्त्रता को अपेक्षा अधिक होती है। समाज के अन्दर प्राप्त की हुई स्वतन्त्रता से मनुष्य उस मानसिक उन्नति और स्वतन्त्रता को प्राप्त करता है जिस को वह समाज से बाहर रह कर नहीं प्राप्त कर सकता हेगल (Hegel) के शब्दों में मनुष्य समाज में रह कर अपनी भीतरी विचार धारा के अनुसार अपने बाहरी व्यक्तित्व को पूर्णतया ऊंचा कर सकता है, यह असली स्वतन्त्रता समाज की देन (gift) है और इसके द्वारा मनुष्य पूर्ण आदर्श जीवन को प्राप्त कर सकता है। यह स्वतन्त्रता सबसे पहले नियम या कानून (law) के रूप को धारण करती है। इसके पश्चात् वह अन्तरीय आचार (internal morality) का रूप धारण करती है और इसका तीसरा रूप वह सामाजिक संस्थाएं और प्रभाव (institutions and influences) हैं जो मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के पोषक तत्त्व हैं। बहुत विस्तार में न जाते हुए इतना कहना आवश्यक है कि हेगल (Hegel) इस सिद्धान्त के

अनुसार राज्य को असली व्यक्ति (real personality) मानते हैं और यह व्यक्ति अपनी वास्तविक इच्छा (real will) की स्वामिनी है। इस सिद्धान्त पर कई प्रकार के आक्षेप किए गये हैं और यह सिद्धान्त व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के विरुद्ध है क्योंकि जब कभी व्यक्ति और राज्य में संघर्ष (conflict) पैदा हो जाता है तो यह सिद्धांत हमेशा राज्य के पक्ष की पुष्टि करता है और व्यक्ति के अधिकारों और स्वतन्त्रता को राज्य के आधीन कर देता है।

(२) व्यक्तिवाद (Individualism)

१. व्यक्तिवादियों के समीप व्यक्ति ही सब कुछ है और राज्य की स्थापना भी केवल व्यक्ति के विकास और उन्नति के लिये की जाती है। व्यक्तिवादियों का विचार है कि राज्य एक आवश्यक बुराई है। यह एक ऐसी बुराई है, जिसे विवश होकर मनुष्य स्वीकार करता है, इसलिए राज्य को कोई ऐसा अधिकार नहीं देना चाहिये जिसके द्वारा वह व्यक्तियों को दबा सके। राज्य का कर्तव्य केवल इतना है कि जो कार्य व्यक्ति न कर सके उनमें राज्य सहायता दे और व्यक्तियों की उन्नति के मार्ग में जो बाधाएं हों, राज्य उनको दूर करे। व्यक्तिवादियों के विचारानुसार मनुष्य समाज का स्तम्भ है और राज्य इसका बड़ा सहायक है। राज्य का कर्तव्य देश में शान्ति और व्यवस्था स्थिर रखना है और व्यक्तियों की आवश्यकताओं के अनुसार कानून बनाना है। व्यक्तिवादियों के मतानुसार राज्य के कर्तव्य की सूची बहुत छोटी और सीमित है।

राज्य शासन

(१) बाहिरी आक्रमणों से राज्य की रक्षा करे,
(२) राज्य के अन्दर शान्ति स्थापित करे,
(३) राज्य के अन्दर भिन्न २ संघों की देख-रेख करे।

इनके अतिरिक्त व्यक्ति पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है। राज्य को कोई

अधिकार नहीं कि वह व्यक्ति के कामों में हस्तक्षेप करे। प्रत्येक व्यक्ति अपने विचारों के अनुसार स्वतन्त्र है और उस का यह भी अधिकार है कि अपने विचारों को क्रियात्मक रूप दे। व्यक्ति को केवल इतना ध्यान देना चाहिए कि वह दूसरों की स्वतन्त्रता में बाधा न डाले। तात्पर्य यह है कि राज्य को देश की रक्षा के लिये सेना, राज्य में शान्ति स्थापित करने के लिए पुलिस और न्याय के लिये न्यायालयों का प्रबन्ध करना चाहिये और शिक्षा, कला, शिल्प, निर्धनों की सहायता, स्वास्थ्य, रक्षा और इसी प्रकार अन्य हित के कार्यों को व्यक्तियों के पुरुषार्थ और उत्साह पर छोड़ देना चाहिये।

अठारहवीं शताब्दी में राज्य के व्यक्तिगत जीवन में सीमा से अधिक हस्तक्षेप करने के विरुद्ध पर्याप्त सफलता हुई, परन्तु यह सर्वमान्य नहीं क्योंकि मानव उन्नति केवल उस अवस्था में सम्भव है जब मनुष्य के अन्दर की बुराइयों को या तो सामाजिक दबाव या सहयोग से दमन किया जाय या राजशासन ऐसा प्रबन्ध करे जिससे व्यक्तियों को अपने विकास की सुविधाएं प्राप्त हों। यदि मनुष्य अपनी उन्नति के लिए अपने आप पर छोड़ दिया जाए तो मानव समाज की उन्नति रुक जाती है।

२. व्यक्तिवाद की आलोचना—इस सिद्धान्त का आधार इस विचार पर रखा गया है कि व्यक्ति का अधिकार है कि उसको अपनी इच्छा पर छोड़ दिया जाए, वह पूर्ण स्वतन्त्रता से रहे और राज्य उसके कार्यों में बहुत थोड़ा प्रवेश करे। उदाहरण रूप में यदि राज्य व्यक्तियों को शिक्षा देने का यत्न करता है तो इस का अर्थ यह है कि राज्य व्यक्ति के निजी अधिकार क्षेत्र में प्रवेश करता है और राज्य को ऐसा करना अनुचित है। यह विचार ऊपर से तो बहुत ठीक प्रतीत है परन्तु इसका परिणाम नागरिकों के लिए हानिकारक है। उदाहरणतया गांव में ग्रामीण माता-पिता जितना इस बात पर प्रसन्न होते हैं कि उनके बच्चे गौ भैंसों को बाहिर चराने के लिए ले जाएं उतना बच्चों

की शिक्षा प्राप्त करने पर नहीं। इस कारण यह सिद्धांत ठीक नहीं राज्य बुराई नहीं बल्कि समाज का हित करने का एक साधन है। व्यक्ति सदा अपने हित को नहीं समझ सकता। यद्यपि शिक्षा अनिवार्य है परन्तु निर्धन और अपठित माता-पिता अपनी सन्तान को पाठशाला नहीं भेजते। इसलिए यदि कोई राज्य व्यक्तिवादी सिद्धान्त का पूर्ण रूप में प्रयोग करे तो वह अपने कई आवश्यक कार्यों को करने में असमर्थ हो जाएगा।

अर्थशास्त्री भी कहते हैं कि यदि व्यक्ति को अपने कार्य्य में स्वतन्त्रता दी जाए तो वह अपने पुरुषार्थ से बहुत कुछ कर सकता है। हर एक व्यक्ति को अपनी शक्ति, योग्यता और पूंजी का पूरा २ ज्ञान होता है और वह वाणिज्य-व्यापार, कला-कौशल आदि मे इनका उचित प्रयोग करके देश की उपज को बढ़ा सकता है। उन्नीसवीं शताब्दी में जब यन्त्रों का आविष्कार हुआ तो व्यक्तिवादी सिद्धान्त पर आचरण करते हुए मशीनों द्वारा बनी हुई वस्तुओं में बड़ी अधिकता हुई और पूंजीवालों और कारखाने वालों को बड़ा लाभ हुआ परन्तु मजदूरों की अवस्था बहुत खराब हो गई। मजदूरों की शोचनीय अवस्था का सुधार करने के लिए राज्य ने हस्तक्षेप (Interference) किया और परिस्थिति पर नियन्त्रण किया। यह अवस्था देखकर व्यक्तिवादियों ने पलटा खाया और कहने लगे कि राज्य को जनता के व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए क्योंकि योग्यतमावशेष (Survival of the fittest) जीवन का साधारण नियम है। प्रत्येक व्यक्ति अपना संघर्ष करेगा। जो बलवान् और योग्य होगा बच निकलेगा। यदि राज्य निर्धनों, रोगियों और बूढ़ों की सहायता करे तो वे लोग बच निकलेंगे जिनको बच निकलने का अधिकार नहीं। लिकाक (Leacock) ने व्यक्तिवादियों की इस मनोवृत्ति का उत्तर बड़ा सुंदर दिया है। वह कहता है कि बच निकलने के विचार से किसी

की योग्यता का निर्णय करना हो तो सफल चोर, डाकू आदि स्तुति के योग्य हैं और निर्धन भूखे मजदूर घृणा के पात्र हैं।

(३) उपयोगितावाद
(vtilitarianism)

१ व्यक्तिवाद के सिद्धान्त और प्रयोग के सम्बन्ध में उन्नीसवीं शताब्दी में नए विचारों का प्रचार हुआ। बेन्थम (Benthem) मिल्ल (mill) और स्पेन्सर (Spencr) ने वैज्ञानिक ढंग से व्यक्तिवाद पर विचार किया। इसके विचारानुसार राज्य का उद्देश्य अधिक से अधिक संख्या के लिए अधिक से अधिक लाभों (the greatest good of the greatest number) की प्राप्ति है। ये लोग हरेक वस्तु के मूल्य का अनुमान उसकी उपयोगिता से करने लगे और इस कारण नीतिज्ञों के इस समूह का नाम उपयोगिता वादी (utilitarians) पड़ गया। बेन्थल का कथन है कि राज्य शासन जो कुछ करता है उसकी भलाई और बुराई को ठीक पहिचान यही है कि उससे अत्यधिक मनुष्यों को लाभ पहुँचता है कि नहीं। उसके विचारानुसार हरेक राज्य (State) और संगठन (Organisation) का उद्देश्य यह है कि उससे अधिक से अधिक मनुष्यों को सुख मिले। जो राज्य अथवा संगठन इस उद्देश्य को पूरा नहीं कर सकता उसके अस्तित्व की कोई आवश्यकता नहीं। उसका सिद्धान्त व्यक्तिवाद का खण्डन भी करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य को अधिक से अधिक व्यक्तियों के सुख की चिन्ता तो करनी पड़ती है परन्तु सब के सुख की परवाह नहीं। इस सिद्धान्त में बड़ा भारी दोष यही है कि इसके अनुसार अल्प संख्यक जातियों (minorities) के बहु संख्यक जातियों (majorities) पर बलिदान होने की सम्भावना होती है। यही कारण है कि यह सिद्धांत सर्वमान्य (popular) न हो सका।

[४] समाजवाद (Socialism)

समाजवाद व्यक्तिवाद और उपयोगितावाद के सर्वथा विपरीत है। समाजवादी कहते हैं कि राज्य एक भलाई है और राज्य का मनुष्य जीवन के सफल बनाने में अधिक से अधिक सम्पर्क हो। राज्य शिक्षा का प्रबन्ध करे, कारखानों और वाणिज्य व्यापार पर उसका पूरा अधिकार हो और लोगों में योग्यतानुसार धन का विभाजन करे। राज्य ही मनुष्यों के अन्दर सहानुभूति और अन्य गुणों का संचार करे। व्यक्तिगत सम्पत्ति की कोई आवश्यकता नहीं। एकता समानता और न्याय की रक्षा तब हो सकती है जब सारे कार्य राज्य ही करे। राज्य का सब से पहिला कर्तव्य यह है कि वह सब वस्तुओं को अपने अधिकार में रखे और उनका विभाजन न्याय से करे और साथ ही लोगों की मानसिक तथा राजनैतिक उन्नति का भी प्रबन्ध करे, ताकि देश की शारीरिक और सामाजिक अवस्था उन्नत हो जाए। तात्पर्य यह है कि राज्य ही उपज के सारे साधनों का स्वामी हो और जनता के हित के लिए यातायात आदि राज्य के नियन्त्रण में हो। राज्य ही एक काम कराने वाला (employer) हो और लोग काम करने वाले (employees) हों और वे राज्य ही की सेवा में हों। समाजवादी सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तियों की निजी सम्पत्ति केवल घर, वस्त्र और खाने पीने आदि की वस्तुएं हों और पूंजी का निजी स्वामित्व समाप्त किया जाए। समाजवाद के अनुसार कारखानों के चलाने और अन्न आदि के उपजाने के कार्य राज्य की सरकार के नियन्त्रण में हों।

२. समाजवाद के अनुसार सरकार का उद्देश्य सारे लोगों, विशेषतया निर्धन काम करने वालों (working classes) के लिए जीवन के आर्थिक सुखों (material comforts) की प्राप्ति है। इसके अनुसार राज्य मनुष्य के हित और सुख के कार्यों में अधिक

से अधिक हस्तक्षेप कर सकता है। समाजवाद विशेषतया उन्नीसवीं शताब्दी में सर्वप्रिय होगया, जब कि यन्त्रों के आविष्कार से उपज बढ़ गई, पूंजीपतियों को पर्याप्त लाभ हुआ और बेचारे किसानों और कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की आर्थिक अवस्था अधिक बिगड़ गई। प्रथम विश्वयुद्ध १९१४–१९१८ और इसके अनन्तर द्वितीय विश्वयुद्ध १९३९—४५ ने मनुष्य समाज की अवस्था को अतीव क्षति पहुंचाई। इस समय सारे भूमण्डल पर असन्तोष की लहर फैली हुई है और समाजवाद का प्रभाव बढ़ता जा रहा है।

३. इसमें सन्देह नहीं कि आज कल समाजवाद का प्रचार चारों ओर हो रहा है, परन्तु बहुत थोड़े लोग समाजवाद के सिद्धान्त और ध्येय से भली भांति परिचित हैं। समाजवादियों ने समाजवादी राज्य (Socialist State) के बड़े विचित्र चित्र खींचे हैं। यों तो समाजवादी सिद्धान्त बहुत पुराना है परन्तु जिस समाजवाद का प्रचार आजकल हो रहा है उसकी रूप रेखा कार्लमार्क्स (karl Marx) ने १८४८ ई० में खींची थी। उसने अपने सिद्धान्त की व्याख्या अपनी पुस्तक कैपिटल (The Capital) में की है। इसके मतानुसार समाजवाद (Socialism or marxism) समाज का विज्ञान है और समाज में परिवर्तन और क्रान्ति लाने की वैज्ञानिक प्रणाली है। समाजवाद का उद्देश्य नीचे लिखी बातों पर सम्मिलित है।

(१) देश से दरिद्रता का समूलोच्छेदन किया जाय और ऐसा प्रबन्ध किया जाए कि कोई चतुर और होशियार पुरुष भोले-भाले सीधे-साधे निर्धन मजदूर की अनभिज्ञता से अनुचित लाभ न उठा सके।

(२) सब नागरिकों के लिए आत्म विकास के समान अवसरों का प्रबन्ध किया जाए।

(३) समाज के आर्थिक और नैतिक साधनों का पूर्ण विकास

किया जाए और उपज को बिना लाभ सब व्यक्तियों में उनकी आवश्यकताओं के अनुसार बांटा जाए।

(४) समाज के सभी सदस्यों के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, विनोद आदि सारी सुविधाओं का यथाशक्ति अच्छे से अच्छा प्रबन्ध किया जाए।

जिस सामाजिक संस्था में ऊपर दिये हुये उद्देश्यों की पूर्ति होती है, उसको समाजवादी संस्था (Socialist Society) कहते हैं। इस संस्था के सिद्धान्तों की लम्बी चौड़ी व्याख्या की आवश्यकता नहीं, परन्तु जो संघ क्रियात्मक रूप में साधारण जनता के जीवन को सुखी बनाने में सफल होता है वही सच्चे अर्थों में सोशलिस्ट समाज है। ऐसे समाज मे किसी व्यक्ति वा जाति के विशेष अधिकार नहीं होते बल्कि सब के समानता और बन्धुता के सूत्र में बन्धे हुये होते हैं। इस ध्येय की प्राप्ति के लिये देश की खेती बाड़ी और शिल्प मे ऐसा परिवर्तन आवश्यक है जिसके अनुसार हल जोतने और कारखानों में काम करने वाले हर प्रकार की पराधीनता और दरिद्रता से मुक्त हों और उनको अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये किसी प्रकार की चिंता न हो।

४.भारत का समाजवाद–भारत के प्रसिद्ध समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण के विचारानुसार समाजवादी राजशासन पूर्णतया प्रजातान्त्रिक नियमों के अनुकूल होगा, प्रजातन्त्र के बिना समाजवाद असम्भव है। यह बड़ी भूल होगी, यदि समाजवादी राज्य में तानाशाही शासन हो। ऐसा होना कार्ल मार्क्स के सिद्धान्त के प्रतिकूल होगा। पून्जीवाद (Capitalism) से समाजवाद (Socialism) के परिवर्तन काल में थोड़े समय के लिए राजशासन किसी एक व्यक्ति(Dictator) के हाथ आ सकता है परन्तु यह भी कोई अनिवार्य नहीं। जब परिवर्तन हो जाए,राजशासन प्रजातान्त्रिक नियमों के अनुकूल हो। जब

समाज में प्रायः पून्जीपतियों का राजशासन समाप्त हो जाए और काम करने वालों के समाज (A socety of workers) का' रूप धारण करले तो तानाशाह (Dictator) का चिंतन करना भी मूर्खता होगी।

जयप्रकाश नारायण समाजवाद (Socialism) के आधीन प्रजातन्त्र की व्याख्या करते हुए लिखता है कि समाजवादीराजमें एक दल का राजशासन न होगा। काम करने वालों (Workers) के एक से अधिक राजनैतिक दल (Political parties) होंगे। मजदूरों की, शिल्पकारों की, और किसानों की अलग २ सहायता समितियां (Co operative Societies) व्यापारियों की समिति (Trade union) आदि राजनैतिक दल होंगे और ये दल निर्भयता से काम करते रहेंगे, अर्थात् इनको अपने विचार प्रगट करने की पूरी स्वतन्त्रता होगी और राजनैतिक उद्देश्य के लिए स्वयंसेवक दलों का निर्माण कर सकेंगे। काम करने वालों की वे संस्थाएं अपने समाचार पत्र निकाल सकेंगी और बच्चों की शिक्षा के लिये पाठशालायें और कला भवन खोल सकेंगी। वे संस्थायें राज्य के आधीन व राज्य का अंग न होंगी बल्कि ये स्वतन्त्र संघ होंगे, जो राजशासन की सहायता भी करेंगी और राज्य शासन के कार्य्यों का नियन्त्रण भी रखेंगी।

सामाजवादी राज्य (Socialist state) का जो चित्र प्रसिद्ध नेता जयप्रकाश नारायण ने खींचा है, वह आर्थिक और प्रजातन्त्रिक राजशासक का है, जिसमें मनुष्य न तो पूंजीवाद का दास होगा और न किसी दल (Party) वा राज्य का दास होगा। मनुष्य स्वतन्त्र होगा और वह ऐसे समाज की सेवा करेगा जो समाज उसके लिऐ काम (work) और जीविका प्राप्त करने के साधनों का प्रबन्ध करेगा, किसी मर्यादा तक उसे अपना व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता भी देगा और जीवन के विकास और उन्नति के उचित अवसरों का भी प्रबन्ध करेगा, ऐसा समाजवादी राज्य(Socialist state) वास्तव में साधारण जनता के कष्टों को दूर कर सकता यदि वह अन्त में

किसी एक व्यक्ति-विशेष के हाथ में न पड़ जाए या साम्यवादी (Capitalist state) का रूप धारण न कर ले। ऐसे व्यक्ति-विशेष को तानाशाह (Dictator) कहते है। तानाशाही और साम्यवादी राज में साधारण जनता की स्वतन्त्रता छीनी जाती है और मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास समाप्त हो जाता है और साधारण जनता पूर्णतया दास बन जाती हैं।

२. समाजवाद की आलोचना—यद्यपि समाजवादी सिद्धान्त में राज्य का नियन्त्रण विस्तृत होता है फिर भी व्यक्ति को उपयोगी स्वतन्त्रता मिल जाती है और व्यक्तिवादी सिद्धान्त कि "व्यक्ति को राज्य के नियन्त्रण से मुक्त रहने दो" का विरोध इसलिए किया जाता है कि इसके प्रयोग से निर्बल सदस्य असमान स्पर्धा (unequal competition) के कारण कुचले जाते हैं। यदि राज्य जीवन के भिन्न २ मार्गों में सारी जातियों के पारस्परिक सम्बन्धों का नियन्त्रण करे तो व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने की आवश्यकता न रहेगी। ऐसा प्रबन्ध हो जाने पर समाजवादी भी कहते हैं कि हरएक व्यक्ति को अच्छा जीवन व्यतीत करने का अधिकार है और इस अधिकार को पूरा करने में राज्य को अवश्य सहायता देनी चाहिए जिससे यह उद्देश्य पूरा हो जाय। व्यक्तिगत पूंजी की समाप्ति और उपज के साधनों को राज्य के नियन्त्रण में ले आने के उपायों का प्रयोग मजदूरों की भलाई के लिए किया जाता है। व्यक्तिवादी सिद्धान्त के अनुसार मजदूर को काम तो बहुत करना पड़ता है पर मजदूरी इतनी थोड़ी मिलती है कि उसका निर्वाह नहीं हो सकता। यदि राज्य उपज की बड़ी योजनाओं को अपने नियन्त्रण में ले तो मजदूरों और निर्धनों की अवस्था सुधर जाती है।

व्यक्तिवादियों की अपेक्षा समाजवादियों के विचार अधिक उपयुक्त प्रतीत होते हैं। आदिम समाज में जब जीवन की समस्याएं अधिक

जटिल न थीं और यन्त्रों का उपयोग भी न होता था, उस समय व्यक्तिवादी सिद्धान्त उपयोगी होगा। परन्तु अब तो जीवन की समस्यायें बड़ी जटिल हो गई हैं और उपज के लिए बड़े-बड़े कारखाने काम कर रहे हैं। इस अवस्था में व्यक्तिवादी सिद्धान्त पूर्ण रूप में अनुपस्थित है। व्यक्तिवादियों की एक यह बात उपयुक्त है कि "सीमा से अधिक व्यक्तियों पर राज्य का नियन्त्रण अनुचित है।" इसलिये आधुनिक युग में जीवन की सफलता के लिये मध्यम मार्ग का प्रयोग ही लाभदायक होगा और वह यह है कि बड़ी योजनाओं (key industries)—उदाहरण रूप में मशीनों के बनाने के कारखाने, सिंचाई के लिये बड़े-बड़े बांध, बिजली पैदा करने के लिये हाइड्रो इलैक्ट्रिक योजनायें, रेल, तार, हवाई जहाज, यातायात के साधन राज्य अपने हाथ में ले ले और छोटी कलाओं (small-scale industries) को साधारण जनता के लिये छोड़ दिया जाए। इसके अतिरिक्त राजशासन में पूंजीपतियों के प्रभाव को न बढ़ने दिया जाय।

(५) प्रजातन्त्रवाद (Democracy)

१. प्रजातान्त्रिक राज्य का सिद्धान्त—संयुक्त राष्ट्र अमेरिका (U. S. A.) के भूतपूर्व प्रधान लिंकन के मतानुसार "प्रजातान्त्रिक सरकार वह है जो प्रजा की हो, प्रजा के हित के लिये हो और प्रजा द्वारा चलाई जाए।" ऐसी सरकार के लिये सबसे पहले तो ऐसे राज्य (State) का अस्तित्व आवश्यक है जहां इस प्रकार की सरकार स्थापित की जा सके। दूसरी आवश्यक बात यह है कि राज्य के भीतर सर्वोच्चसत्ता (Sovereign Power) प्रजा में केन्द्रित हो, न कि किसी विशेष व्यक्ति में या व्यक्तियों के किसी विशेष समूह के अन्दर। ऐसी सरकार साधारण जनता के सर्वोच्चसत्ता के आदर्श को स्वीकार करती है और व्यक्ति की स्वतन्त्रता, समानता और सुख की प्राप्ति का प्रयत्न करती है। सभी सरकारी संस्थाएं इस उद्देश्य को लेकर काम करती हैं कि प्रजा के अधिकारों की रक्षा भली प्रकार की जाए और

व्यक्ति के विकास के साधनों का प्रयोग होता रहे। इस का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति उद्देश्य है और सरकार उस उद्देश्य प्राप्ति का साधन है और सारी संस्थायें इस रीति से काम करें जिससे साधारण जनता को अधिक से अधिक लाभ और सुख प्राप्त हो। प्रजातान्त्रिक सरकार राजनैतिक अधिकारों की समानता और व्यक्ति की स्वतन्त्रता के आदर्शों को सामने रख कर काम करती है, इसलिए ऐसी सरकार एक प्रकार का सामाजिक संगठन होता है जिस में हर एक व्यक्ति के हर प्रकार के अधिकार सुरक्षित होते हैं और किसी विशेष जाति या व्यक्ति के कोई विशेष अधिकार नहीं होते।

८. प्रजातान्त्रिक राज्य की समीक्षा—प्रजातान्त्रिक राजशासन बहुमत दल का राजशासन होता है, इसलिये प्रयत्न यह किया जाता है कि अधिक से अधिक मददाताओं या वोटरों को प्रसन्न रखा जाए। इसका परिणाम यह निकलता है कि देश की वास्तविक उन्नति की ओर कम ध्यान दिया जाता है, और लोगों की खुशामद की जाती है। नीतिज्ञ लेकी। (Lecky) ने प्रजातान्त्रिक सरकार को सबसे अधिक निर्धनों, सबसे अधिक अयोग्यों, अज्ञानियों और मूर्खों की सरकार कहा है, जो केवल जनसंख्या में अधिक होते हैं। दूसरा दोष इस प्रकार की सरकार में यह है कि इसका आधार यह असम्बद्ध सिद्धांत है कि सारे नागरिक समान रूप से राज शासन में भाग ले सकते हैं, इस प्रकार राज शासन की शिक्षा (training) के महत्व को घटाया गया है, और हर एक नागरिक राजशासन में हस्तक्षेप करने को तैयार हो जाता है, चाहे राजशासन के चलाने की योग्यता उस में हो या न हो। तीसरी हानि जो इस राज शासन में है वह यह है कि इसमें उत्तरदायित्व सारी जनता के प्रति होता है, और ऐसा उत्तरदायित्व वास्तव में निरर्थक हो जाता है और राजशासन ऐसे स्वार्थी लोगों के हाथ में पड़ जाता है जो समाज और देश को उन्नत करने के स्थान में अधोगति की ओर ले जाते हैं।

यद्यपि प्रजातान्त्रिक राजशासन में इतनी त्रुटियां हैं फिर भी वह सबसे अच्छा और सर्वप्रिय माना जाता है। यदि साधारण जनता को सुशिक्षित करने का पूर्ण प्रबन्ध किया जाए, नागरिकों को अपने कर्तव्यों और अधिकारों का ज्ञान कराया जाय, और वोटों के सदुपयोग का महत्व समझाया जाए, तो ऐसा राजशासन देश को स्वर्ग का आदर्श बना सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रजातान्त्रिक राजशासन एक अतीव कोमल यन्त्र (a delicate instrument) है जिसके प्रयोग में जनता को बहुत सावधानता और उत्तरदायित्व से काम लेना पड़ता है। वुडरो विलसन (Woodrow Wilson) स्वराज्य को ऐसे आचार (character) से उपमा देता है जो बड़ी कठिनाई, साधना और अनुशासन (discipline) के अनन्तर प्राप्त होता है। मेजिनी (Mazzini) प्रजातान्त्रिक राजशासन को देश के सबसे अधिक बुद्धिमान और सदाचारी व्यक्तियों के नेतृत्व में सर्व साधारण जनता की उन्नति का नाम देता है (the progress of all through all under the leadership of the best and wisest)। यदि प्रजातान्त्रिक राजशासन में देश के सबसे अधिक योग्य, सेवा परायण और निःस्वार्थ व्यक्तियों की सेवा और नेतृत्व को प्राप्त किया जाय तो यह राजशासन अन्य राजशासनों से अति उत्तम और कल्याणकारी सिद्ध हो सकता है।

[६] फासइज्म (Fascism)

१ फासइज्म का सिद्धान्त—राज्य के स्वरूप और व्यक्ति के राज्य से सम्बन्ध के विषयों में फासइज्म प्रजातान्त्रिक आदर्श के सर्वथा विरुद्ध है। प्रजातान्त्रिक समानता, बन्धुता और स्वतन्त्रता के स्थान पर फासइज्म नियम-बद्धता, अनुशासन और अधिकार (order discipline and authority) में विश्वास रखता है, और आवश्यकता पड़े तो राजशासन व्यक्तिगत जीवन में भी हस्तक्षेप कर सकता है। इस प्रकार फासइज्म व्यक्ति को राज्य के अधीन करने से

राज्य को उद्देश्य और व्यक्ति को साधन बना लेता है, किन्तु प्रजातान्त्रिक सिद्धान्त में व्यक्ति को उद्देश्य और राज्य को साधन माना गया है। फासइज्म के लेखकों ने राष्ट्रीय राज्य (National State) की अबाध सर्वोच्चसत्ता (Absolute Sovereignty) के पक्ष का समर्थन किया है और इस बात को देश की उन्नति के लिये अनिवार्य्य बतलाया है। अपने ध्येय की प्राप्ति के मार्ग में आन्तरिक और बाह्य विरोध को हटाने के लिये फासइज्म शक्ति के प्रयोग में विश्वास रखता है, व्यक्ति से राजशासन की आज्ञाओं के पालन कराने में बल प्रयोग से संकोच नहीं करता और युद्ध को राज्य की भलाई के लिए आवश्यक समझता है। प्रसिद्ध फासइस्ट नानाशाह मुसोलिनी (Fascist Dictator Mussolini) स्थाई शान्ति की योजनाओं में शुद्ध व्यवहार (sincerity) में विश्वास नहीं रखता था। फासइज्म में साधारण जनता को राजनैतिक अधिकार से वंचित रखा गया है, क्योंकि वह राजशासन की योग्यता नहीं रखती। फासइस्ट कुलीनतान्त्रिक राजशासन (Political aristocracy) में विश्वास रखते हैं और साधारण जनता का यह धर्म समझते हैं कि वे शासकों द्वारा बताए हुए कार्य्यों को दत्तचित होकर पूरा करें।

प्रजातान्त्रिक राज्य शासन के समान फासइज्म व्यक्ति को निजी सम्पत्ति के सिद्धान्त को मानता है, और व्यक्ति और देश की आर्थिक उन्नति के लिये उसे आवश्यक समझता है। दोनों के विचार में केवल अन्तर यह है कि प्रजातान्त्रिक राजशासन में नागरिक अपने सुख और उन्नति के लिए अपनी सम्पत्ति के प्रयोग में स्वतन्त्र हैं और इस सम्बन्ध में उन पर कोई नियन्त्रण नहीं, परन्तु फासइस्ट राज्य में निजी सम्पत्ति का अधिकार सुरक्षित नहीं और समय आने पर राष्ट्र के हित के लिए ऐसी पूंजी पर अधिकार किया जा सकता है। फासइज्म भिन्न-भिन्न वर्गों (classes) के भेद को मिटाने के पक्ष में नहीं क्योंकि हर एक वर्ग अपने स्तर में

राज्य की उपयोगी सेवा कर सकता है। इस प्रकार फासइस्ट सरकार भिन्न-भिन्न जातियों और वर्गों में परस्पर सम्बन्ध और सहयोग के बनाए रखने का प्रयत्न करती है। फासइस्ट सिद्धान्त के अनुसार हर एक नागरिक अपने राज्य का पूर्ण भक्त होता है, इस कारण नागरिकों को अपने देश से बाहिर अन्तर्राष्ट्रीय संघों का सदस्य बनने से रोका जाता है।

२. समीक्षा—फ़ासइस्ट राजशासन में सभी अधिकार एक व्यक्ति विशेष या ताना शाह (Dictator) के अन्दर केन्द्रित होते हैं और सरकार के सभी कार्य्यों पर उसका नियन्त्रण होता है। इसलिए इस प्रकार की सरकार अपने कार्य्यों को शीघ्रता, सुगमता और योग्यता से पूरा कर सकती है। इसके विपरीत प्रजातान्त्रिक राजशासन की मशीन बड़ी धीरे-धीरे चलती है और बड़ी विकट समस्याओं के सम्बन्ध में भी निर्णय शीघ्रता से नहीं हो पाता। फासइस्ट सरकार के सबसे बड़े दोष व्यक्ति को राज्य का दास बना देना, व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास का अवसर न देना, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का बल-प्रयोग से दमन करना और साधारण जनता को राजनैतिक अधिकारों से वंचित करना है। इन कारणों से फासइज्म अवश्य निन्दनीय हो जाता है और प्रजातान्त्रिक राज्य से इसको अच्छा नहीं कहा जा सकता।

(४) कम्यूनिज्म (Communism)

१. कम्यूनिज्म का सिद्धान्त—राज्य (state) के विषय में कम्यूनिस्ट सिद्धान्त प्रजातान्त्रिक और फासइस्ट सिद्धान्त के सर्वथा प्रतिकूल है। इसका अन्तिम ध्येय राज्य को समाप्त करना है और बल द्वारा तानाशाही ढंग से आदर्श कम्यूनिस्ट-प्रबन्ध की स्थापना है। कम्यूनिस्ट प्रबन्ध में कोई केन्द्रीय अधिकार या शक्ति न होगी और कम्यूनिस्ट समाज बिना राज्य (state) के होगा। कम्यूनिज्म हर प्रकार के वर्ग तथा जाति-भेद को मिटाना चाहता है, पूंजीवाद

को अपना शत्रु समझता है और उसको हिंसक उपायों द्वारा नष्ट-भ्रष्ट करने में नहीं सकुचाता। वह निजी पूंजी का विरोधी है और सब पदार्थों को मिलकर भोगने का प्रचारक है। कम्यूनिज्म राष्ट्रीयता (Nationalism) का सर्वथा विरोधी है, सारे जगत के मजदूरों (workers) को एक ध्वजा के नीचे लाना चाहता है और उसका सिंहनाद यह है—'दुनिया भर के मजदूरो मिल जाओ।' कम्यूनिज्म अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के पक्ष में है, राष्ट्रीय राज्यों (National states) और उनकी सीमाओं को मिटाना चाहता है और इस उपाय से संसार में युद्धों को समाप्त करने का प्रयत्न करता है। १८६४ ई० में कार्ल मार्क्स ने अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर सभा (International Working Men's Association) की स्थापना की, जिसका उद्देश्य उपस्थित राज्यों की सहायता के बिना सामाजिक क्रान्ति उत्पन्न करना था। इस प्रकार की क्रान्ति लाने के लिए कम्यूनिस्ट गुप्त प्रचार तथा षड्यन्त्रों का आश्रय लेते हैं।

कम्यूनिज्म समाज का निर्माण सोशलिस्ट वा समाजवादी सिद्धांतों के अनुसार करना चाहता है और इस उद्देश्य के लिए वह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का नियन्त्रण करता है। इस समय संयुक्त सोवियेट रूस (U. S.S.R.) सम्पूर्ण कम्यूनिस्ट राज्य है। इस राज्य में नागरिकों को साधारण (civil) और राजनैतिक (political) और विशेष कर के आर्थिक (economic) अधिकार प्राप्त हैं। रूस निवासियों पर केवल एक नियन्त्रण है और वह यह है कि कम्यूनिस्ट दल के अतिरिक्त वे कोई अन्य संघ नहीं बना सकते। इस विषय में कम्यूनिज्म और फासिज्म में कोई अन्तर नहीं और दोनों के शासन विभाग एक दल की सरकारें ('one party governments) हैं। यह ठीक है कि कम्यूनिस्ट सरकार में कम्यूनिस्ट दल के नेता का बड़ा प्रभाव होता है, परन्तु इसके अधिकार क्षेत्र और फासिस्ट तानाशाह के अधिकार क्षेत्र में मौलिक अन्तर है। कम्यूनिस्ट नेता का प्रभाव केवल (purely)

व्यक्तिगत या निजी (personal) होता है और फासिस्ट नेता के समान देश की सरकार में उसका कोई अधिकार नहीं होता। सोवियेट विधान में कम्यूनिस्ट सरकार की कार्य्य कारणी समिति (Executive) के वे अधिकार नहीं जो फासिस्ट राज्य में होते हैं। कम्यूनिस्ट सरकार जनता की आर्थिक तथा समाजिक समानता के लिये उत्तरदायी है और उसने प्रत्येक नागरिक को न केवल वैधानिक रूप में वरिक वास्तविक रूप में समानता दे रखी है। इसमें स्त्री और पुरुष दोनों के अधिकार समान हैं। इसके अतिरिक्त कम्यूनिस्ट राज्य अल्प संख्यकों (Minorities) की पूरी रक्षा करता है और राज्य के अन्दर रहने वाली भिन्न-भिन्न जातियों (Nationalities) को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करता है।

कम्यूनिस्ट राज्य जनता का राज्य होता है और इसकी सरकार भी प्रजातान्त्रिक ढंग की सर्वमान्य और विश्वस्त प्रतिनिधियों की सरकार होती है। इस सरकार में शासन के अंगों के अधिकार पृथक् २ होते हैं और यह एक उत्तरदायी सरकार होती है। ऐसे राज्य में न तो निजी सम्पत्ति होती है, न निजी लाभ होता है और न निजी हानि होती है, इसलिए ऐसी सरकार देश के आर्थिक जीवन को सुगमता से चला सकती है।

§ २. कम्यूनिस्ट राज्य की अन्य राज्यों से तुलना—प्रजातान्त्रिक राज्य की अपेक्षा कम्यूनिस्ट राज्य में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता कम होती है और सर्व साधारण की भलाई के लिए व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर कड़ा नियन्त्रण रहता है। कम्यूनिस्ट राज्य प्रारम्भिक अवस्था में समाज की भलाई और उन्नति के लिये काम करता है, इस लिये ऐसे राज्य में स्वतंत्रता की अपेक्षा समानता अधिक होती है। कम्यूनिस्ट राज्य-हीन समाज (Stateless society) का समर्थन करते हैं, परन्तु आज कल के जटिल और विकट समाज में उनका ध्येय सिद्ध होना असम्भव है। इसमें सन्देह नहीं कि हर राज्य में चाहे वह एक तान्त्रिक हो कुलीनतान्त्रिक हो बहुत सी त्रुटियां हैं,

बिना नियन्त्रण समाज में सफल और सुखी आदर्श की प्राप्ति असम्भव है क्योंकि मनुष्य को पाशविक वृत्ति बिना नियन्त्रण के उपद्रव मचा देगी। स्पष्ट है कि जिस राज्य हीन समाज के स्वप्न कम्यूनिस्ट देख रहे हैं, उनका फलभूत होना कठिन होगा।

Questions (प्रश्न)

1 What is the relation between the Individual and the State

व्यक्ति और राज्य का परस्पर सम्बन्ध क्या है ?

2 What are the aims and objects of the State?

राज्य के उद्देश्य क्या हैं।

3 State and citicise the views of the Individualists & Socialists re. the functions of the State

राज्य के कर्तव्यों के सम्बन्ध में व्यक्तिवादियों और समाजवादियों के विचारों की व्याख्या और समालोचना करो।

4, Briefly explain the main tenets of the Demo cracy, Socialism, Communism and Fascism and evaluate each of them.

संक्षेप में प्रजातन्त्र, सोशलइज्म, कम्यूनिज्म और फ़ासिज्म के सिद्धांत वर्णन करो और उनकी परस्पर तुलना करो।

5. Discuss the merits and defects of individualism as a basis of political organisation.

राजनैतिक संघ (राज्य) के निर्माण के सम्बन्ध में व्यक्तिवाद के गुणों और अवगुणों की आलोचना करो।

नवाँ अध्याय

सरकार का निर्माण

(Structure of Government)

१. सरकार की परिभाषा

(Meaning of Government)

१. चौथे अध्याय में राज्य और उसके अंगों की व्याख्या करते हुए यह बतलाया गया है कि राज्य जनता का एक राजनैतिक संगठित संघ होता है और उसका उद्देश्य राज्य के सदस्यों वा निवासियों की सामूहिक आवश्यकताओं की पूर्ति, सांझे उद्देश्यों की सफलता और साधारण जनताके सुख, उन्नति और रक्षा के साधनोंके प्रयोग करना है। इन साधनों के प्रयोग के लिए राज्य एक कार्यकारिणी समिति बनाता है जो राज्य के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जिम्मेदार होती है। इस कार्यकारिणी समिति को सरकार (government) कहते हैं।

२. सरकार (government)—राज्य (State) की एक भागमात्र है, राज्य स्वामी (master) और सरकार इसके कार्य्य-कर्ताओं (agents) के समान होती है। राज्य का सारा प्रबन्ध सरकार द्वारा कराया जाता है। इस प्रकार राज्य और सरकार में बड़ा अन्तर है, परन्तु साधारण बोल-चाल में राज्य और सरकार के शब्दों के प्रयोग में गड़बड़ की जाती है। सरकार के स्थान पर राज्य और राज्य के स्थान पर सरकार का प्रयोग किया जाता है। राजनीति के विद्यार्थियों को चाहिए कि वे इन शब्दों के अर्थों में भेद को भली भांति समझकर हृदयङ्गम कर लें।

३. राज्य के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सरकार भिन्न २ विभाग

स्थापित करती है और उनमें देश के योग्य व्यक्तियों को नियत किया जाता है। राज्य में देश की सारी जनसंख्या सम्मिलित होती है और सरकार में राज्य के अन्दर रहने वाले कुछ व्यक्तियों का समूह होता है, जो राज्य की सम्पूर्ण जनता की सेवा करता है। राज्य एक स्थाई संघ होता है। परन्तु सरकार समय २ पर बदलती रहती है। सरकार में परिवर्तन का अभिप्राय यह नहीं कि राज्य बदल गया। राज्य और सरकार का आपस में शासित और शासक का सम्बन्ध है। भारतवर्ष की वर्तमान सरकार इण्डियन नेशनल कांग्रेस नामक राजनैतिक संघ के योग्य सदस्यों में से बनाई गई है। जब तक इण्डियन नेशनल कांग्रेस पर साधारण जनता का विश्वास होगा, तब तक यह सरकार काम करती रहेगी। यदि कल जनता सरकार से असन्तुष्ट हो जाए, तो यह सरकार बदल जायगी और इसके स्थान पर कोई और राजनैतिक संघ राज्य की सरकार का निर्माण करेगा। राज्य का अर्थ और उद्देश्य सारे राज्यों या देशों में प्रायः एक जैसा होता है और देश या राज्य की सामाजिक, आर्थिक, मानसिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक उन्नति करता है और राज्य के सभी नागरिकों के जीवन को सुखी और सफल बनाता है, परन्तु सरकार का स्वरूप परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है। किसी राज्य में सरकार एक व्यक्ति या राजा के इशारे पर चलती है, किसी राज्य का शासन प्रबन्ध (सरकार) कुछ विशेष व्यक्तियों के हाथ पड़ जाता है और किसी राज्य में वहां की साधारण जनता के चुने हुए प्रतिनिधि सरकार को सम्भाले रखते हैं।

२. सरकार के अंग
(Organs of Government)

१. राज्य के कर्तव्यों की सूची बड़ी लम्बी है और इन कर्तव्यों को भली प्रकार सम्भालने के लिए सरकार का निर्माण होता है, इसलिए सरकार का उत्तरदायित्व बहुत बड़ा और विभिन्न प्रकार का है। देश की बाहरी शत्रुओं से रक्षा, देश के अन्दर शान्ति स्थापित करना, शासन

सम्बन्धी नियमों का निर्माण करना और जनता के साथ न्याय करना सरकार के बड़े २ कर्तव्य हैं। यद्यपि सरकार एक है और उसका उद्देश्य केवल राज्यवासियों को सुख और उन्नति है तो, भी विभिन्न जिम्मेदारियों को भली भांति सम्भालने के लिए सरकार को नीचे वर्णन किए हुए मुख्य तीन अंगों (organs) में बांटा गया है —

(१) विधान अंग (The Constitution or the Legislative Section)-सरकार का जो अंग शासन, रक्षा, न्याय और कर सम्बन्धी नियमों का निर्माण करता है, उस अंग को विधान अंग कहते हैं। विधान का निर्माण देश की संसद (Parliament) करती है। संसद के सदस्य जनता के चुने हुए योग्य व्यक्ति और जनता के प्रतिनिधि होते हैं।

(२) शासन अंग (The Executive Section)-सरकार का जो अंग संसद द्वारा पास किए हुए नियमों के अनुसार देश का शासन प्रबन्ध करता है, वह शासन अंग कहलाता है।

(३) न्याय अंग (The Judicial Section or the Judiciary)-सरकार का जो अंग विधान वा कानून के प्रतिकूल चलने वालों और देश की शान्ति वा उन्नति भंग करने वालों को दण्ड देता है और न्याय सम्बन्धी सारे कार्यों को सम्भालता है, उस अंग को न्याय अंग (Judiciary) कहते है।

२—सरकार के यह तीन अङ्ग मिलकर राज्य के कर्तव्यों को पूरा करते हैं और नीतिज्ञों का बहुमत सरकार की इस त्रिमूर्ति में विश्वास रखता है, परन्तु कुछ नीतिज्ञ ऐसे हैं जो सरकार के केवल दो अंग— विधान अङ्ग और शासन अङ्ग—मानते हैं और शासन को न्याय में मिला देते हैं। कुछ नीतिज्ञ सरकार को पांच भागों में बांटते हैं। उनके मतानुसार सरकार के ये पांच अङ्ग होने चाहिएं—

(१) विधान अंग (Legislative Section)—यह अंग सारे राज्य सम्बन्धी नियम या कानून बनाता है। प्रत्येक राज्य में यह

काम वहां की संसद (parliament) के हाथ में होता है संसद जो नियम या कानून स्वीकृत करती है वह सारे राज्य पर लागू होता है और राज्य के सारे नागरिकों को मानना पड़ता है।

(२) निर्देशक अथवा शासक अंग (Directive or Executive section)—यह अंग राज्य शासन की नीति का निश्चय करता है और देश की विभिन्न परिस्थितियों पर विचार करके कार्यवाही के ढंग का निर्णय करता है।

(३) प्रबन्धक अंग (Administrative Section) निर्देशक अथवा शासक अंग की रीति और निर्णयों को क्रियात्मक रूप देने के लिये सरकार बहुत से अधिकारी और कर्मचारी नियुक्त करती है यह अधिकारी और कर्मचारी राज्यशासन का प्रबन्धक अङ्ग बनाते हैं। इनकी योग्यता और दयानतदारी पर ही सरकार का अस्तित्व निर्भर है।

(४) न्याय अङ्ग (Judiciary Section)—यह अंग विभिन्न प्रकार के न्यायालयों पर सम्मिलित है। नागरिकों के आपस के झगड़ों और अपराधियों को दण्ड देने के निर्णय करना राज्य की इस सरकार के अंग का काम है। गांव की पंचायत से लेकर प्रान्त की हाई कोर्ट और केन्द्र की सुप्रीम कोर्ट इस अङ्ग का भाग है।

(५) जनता व मतदाताओं का समूह (Electorates)—आजकल के प्रजातांत्रिक युग में हरेक देश और राज्य की सरकार का निर्माण जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों से होता है। जब किसी देश की सरकार में स्वार्थी प्रतिनिधियों का प्रभाव बढ़ जाता है तो राज्य शासन में कई प्रकार की त्रुटियां आ जाती हैं। इसलिये राज्य शासन को भलि भांति चलाने के लिये मतदाताओं का सरकार के अधिकारियों और कर्मचारियों पर नियंत्रण प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रीति से अनिवार्य हो जाता है। इस विषय का विस्तृत वर्णन अगले प्रकरण में किया जायगा।

इस युग में सरकार का केवल त्रिमूर्ति—विधान अङ्ग शासन अङ्ग

और न्याय अङ्ग—सर्वमान्य है और बहुत से राज्यों की सरकारें केवल इसी सिद्धान्त के अनुसार चल रही हैं।

३. अधिकार पृथक्करण सिद्धान्त

(Principle of Separation of Powers)

सरकार के भिन्न-भिन्न अंगों के परस्पर सम्बन्ध के विषय में नीतिज्ञ दो वर्गों में विभक्त हैं। एक वर्ग का मत है कि धारासभा वा विधान अङ्ग का दूसरे अंगों पर प्रभुत्व होना चाहिये, क्योंकि कानून बनाने का अधिकार शेष सम्पूर्ण अधिकारों से बड़ा है। दूसरे वर्ग का विचार है कि तीनों अंगों के अधिकारियों का एक दूसरे से किसी प्रकार का संबन्ध नहीं होना चाहिये और वे एक दूसरे से पूर्णतया स्वतन्त्र हों। इस सिद्धान्त को अधिकार पृथक्करण सिद्धान्त कहते हैं।

अधिकार पृथक् करण सिद्धान्त का अभिप्राय यह है कि सरकार के तीन अंग—विधान, शासन और न्याय—तीन विभिन्न अधिकारियों के हाथ में हों और इनमें से प्रत्येक अधिकारी अपने कार्यक्षेत्र में पूर्णतया स्वतंत्र हो। इस सिद्धांत का उद्देश्य यह है कि व्यक्ति की स्वतंत्रता को सुरक्षित किया जाए। प्राचीन काल में राजा स्वयं कानून बनाता था, स्वयं उसका प्रयोग करता था और स्वयं ही न्यायाधीश था। इस लिए अत्याचार की संभावना अधिक थी। यदि कानून बनाने, शासन करने, और न्याय के अधिकार एक ही व्यक्ति में केन्द्रित हों तो व्यक्तिगत स्वतंत्रता और जीवन को हानि पहुँचती है। सर्वप्रथम सरकार के तीन अंगों के पृथक् करने के सिद्धान्त की व्याख्या फ्रांस के नीतिज्ञ मानटिस्को (Montesquieu) ने की। वह लिखता है कि हर एक सरकार की आन्तरिक तीन शक्तियां होती हैं—संसद, शासकवर्ग और न्यायालय। पहिली शक्ति कानून बनाती है, दूसरी उसका पालन कराती है और तीसरी कानूनों का उल्लंघन करने वालों को दण्ड देती है। राज्य में स्वतंत्रता के लिए यह आवश्यक है कि सरकार इस रीति

से इन तीन अंगों का विभाजन करे कि एक मनुष्य दूसरे से भय अनुभव न करे। यदि कानून बनाने और उसका पालन कराने का बोझ एक व्यक्ति या व्यक्तियों की एक समिति पर डाला जाय, तो कोई भी मनुष्य स्वतन्त्र नहीं रह सकता। इस प्रकार उस अवस्था में भी स्वतंत्रता स्थिर नहीं रह सकती, जबकि न्यायालय और शासन विभाग अपना काम पृथक् २ न करें। यदि इन दोनों विभागों के काम मिला दिए जाएँ तो व्यक्ति की स्वतन्त्रता और जीवन दोनों आपत्ति से मुक्त नहीं रह सकते।

स्पष्ट रूप में मानटेस्क्यु इस बात के पक्ष में है कि सरकार के इन तीनों अंगों को पृथक् २ काम करना चाहिये। एक अंग के अधिकारी दूसरे अंग के कामों में सर्वथा हस्तक्षेप न करें। अन्यथा नागरिक स्वतंत्रता नहीं रह सकती। इस सिद्धान्त का प्रभाव अमेरिका और फ्रांस के विधानों पर पड़ा और उन विधानों में तीनों अंगों को बड़ी सीमा तक पृथक् कर दिया गया।

समीक्षा—(१) सरकार के इन तीनों अंगों को एक दूसरे से पूर्णतया पृथक् करना सम्भव नहीं। सरकार एक मशीन या यन्त्र है। उसके अंगों को पृथक् २ कर देने पर यह काम नहीं कर सकती। राज्य एक ऐसी इकाई (unit—one thing) है, जिसके हित के लिए हम समग्र सरकार पर विश्वास कर सकते हैं परन्तु उसके एक अंग पर नहीं।

(२) तीनों अंगों की पूर्णतया पृथकता हानिकारक होगी। यदि तीनों अंग सर्वथा पृथक् २ हों तो हर एक अंग के अधिकारी अपने अधिकारों की रक्षा के लिये दूसरे अंगों के अधिकारियों का निरादर करेंगे। इस प्रकार पग-पग पर राजशासन में बाधाएं उपस्थित होंगी और सरकार की शक्ति घट जाएगी और नागरिक जीवन का सुख भी घट जायगा।

(३) तीनों अंगों के अधिकार और शक्तियां समान नहीं हैं, जैसा

कि सिद्धान्त में माना गया है। विधान अंग सबसे अधिक शक्तिशाली है, और शेष अङ्गों को इसकी आज्ञाओं को ध्यान में रख कर काम करना पड़ता है।

(४) स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए तीनों अङ्गों की पृथक्ता की आवश्यकता नहीं। इङ्गलैण्ड में ये तीनों अङ्ग पृथक नहीं परन्तु वहां के निवासी पर्याप्त स्वतन्त्र हैं। स्वतन्त्रता जनता के अनुभव पर निर्भर है।

इस सिद्धान्त में विशेष वर्णनीय यह बात है कि एक ही अङ्ग में सारे अधिकार केन्द्रित न हों और न ही एक अङ्ग दूसरे अङ्गों पर शासन करता रहे। न्याय विभाग को सदा स्वतन्त्र रखा जाए क्योंकि किसी देश में न्याय उस समय तक नहीं हो सकता जब तक न्यायालय शासकवर्ग के दबाव से स्वतन्त्र और सुरक्षित न हो। इनके पृथक् करण में इस बात का ध्यान रखा जाए कि ये अङ्ग पृथक् २ काम करते हुए भी एक दूसरे के विरोधी न बनें और इनका मेल उन स्थानों पर बहुत ही आवश्यक है जहां राज्य को अधिक लाभ हो।

४—विधान अंग का वर्णन
(The Legislature)

१—सरकार का विधान अंग (Legislature)—उस के दूसरे अङ्गों शासन (Executive) और न्याय (Judiciary) से अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि राज्य की इच्छा वा राज्य की इच्छा का प्रकाश इसके द्वारा होता है। यही अङ्ग राज्य (State) का कानून बनाता है, शासन और न्याय के अधिकार सीमित करता है, राज्य की नीति (policy) निश्चय करता है, राज्य के आय और व्यय की सूची (budget) को पास करता है और शासन तथा न्याय दोनों अङ्गों के कार्यों की आलोचना भी करता है। शासन और न्याय अङ्ग के अधिकारी विधान अंग की आज्ञाओं का पालन करते हैं। यदि वे अपने कर्तव्यों को भली भाँति पूरा नहीं करते तो संसद (Parliament) उनके कार्यों का विवरण मांगती है और यदि आवश्यकता पड़े तो

अयोग्य अधिकारियों से अपने पद का त्याग भी कराया जाता है। अतः विधान अंग न केवल कानून बनाने का साधन है बल्कि यही अंग दूसरे अंगों के लिए नीति का निश्चय करता है। उनके कार्यों की आलोचना भी करता है और उनको अपने नियन्त्रण में भी रखता है। अतः विधान अंग के तीन कर्तव्य हैं—(१) कानून बनाना (२) कर लगाना और बजट पास करना। (३) शासन अंग के कार्यों की देख-रेख करना और उस पर नियन्त्रण रखना।

२—*धारा सभा या संसद (Legislative Assembly or Parliament)*—निरंकुश राज्यों में शासक की इच्छा ही कानून का काम करती है, परन्तु दूसरे प्रकार के राज्यों में एक धारा सभा या दो धारा सभाएं होती हैं। एक सभा वाली व्यवस्थापिका को एकागारात्मक (unicameral) और दो सभाओं वाली व्यवस्थापिका को द्विआगारात्मक (Bicameral) कहते हैं। आजकल बहुत से देशों में दो सभाएं हैं—बड़ी सभा (Upper House) और छोटी सभा (Lower House)। बड़ी सभा के सदस्य देश के धनिक और बड़े लोग होते हैं और इन की संख्या भी थोड़ी होती है। इस सभा का सदस्य बनने के लिये बड़ी सम्पत्ति का स्वामी होना आवश्यक है। कोई निर्धन पुरुष इस सभा का सदस्य नहीं बन सकता। इस सभा की सदस्यता पैतृक (Hereditary) होती है। यथा इंगलैंड में धनियों की सभा (House of Lords) के सदस्य पैत्रिक धनी लोग होते हैं। छोटी सभा (Lower House) के सदस्य साधारण जनता के चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं और उसके सदस्यों की संख्या बहुत बड़ी होती है। बड़ी सभा का अध्यक्ष प्राय. अधिक देशों में प्रधान (President) कहलाता है और छोटी सभा का अध्यक्ष स्पीकर (Speaker) कहलाता है। बड़ी सभा सदा धनिक वर्ग का पक्षपात करती है और विचारों में अनुदार (Conservative) होती है। इस कारण बड़ी सभा के अधिकार सीमित होते हैं। छोटी सभा साधारण जनता के हित

और उन्नति का ध्यान रखती है और इसके अधिकार बहुत अधिक होते हैं। इङ्गलैंड की बडो सभा का नाम पूंजीपतियों की सभा (House of Lords) और छोटी सभा का नाम लोक-सभा (House of Commons) है। भारत संघ (Indian Union) की संसद् (Parliament) में दो सदन होंगे जिनके नाम राज्य परिषद (Council of States) और लोक सभा (House of the people) हैं। लोक सभा के सदस्यों की संख्या पांच सौ से अधिक होगी और वह विभिन्न राज्यों के मत दाताओं द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुने जायेंगे। राज्य परिषद की संख्या दो सौ होगी। इसमें २३८ प्रतिनिधि विभिन्न राज्यों के होंगे, और १२ सदस्य राष्ट्र-पति द्वारा नामनिर्देशित (Nominated) होंगे। और यह ऐसे महानुभाव व्यक्ति होंगे जिन का साहित्य, विज्ञान, कला और सामाजिक सेवा में विशेष ज्ञान या व्यवहारिक अनुभव होगा। जनता पर कर लगाने और सरकार के वार्षिक आय व्यय के चिट्ठे (annual budget of income & expenditure) को स्वीकार का अधिकार लोक सभा का होता है, और राज्य परिषद इस विषय में किसी प्रकार हस्तक्षेप नहीं कर सकती।

३. राज्य-परिषद् की आवश्यकता—अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि जब सारे अधिकार लोक-सभा या छोटी सभा (Lower House) को ही प्राप्त हैं तो राज्य-परिषद् या बडी सभा (Upper House) की क्या आवश्यकता है। प्रत्येक प्रस्ताव को पास करने की विधि यह है कि उसको छोटी सभा में तीन बार प्रस्तुत किया जाता है और जब यह सभा उस को स्वीकृत कर लेती है तो बडी सभा में प्रस्तुत किया जाता है। वहां भी इस पर तीन बार विचार किया जाता है। इसमें कई संशोधन किए जाते हैं। इस विधि से बिल की त्रुटियां दूर हो जाती हैं। दूसरे शब्दों में बड़ी सभा छोटी सभा के अतिशीघ्रता से और अविवेक से किए हुए कामों पर नियन्त्रण का काम करती है। बड़ी सभा का दूसरा लाभ यह है कि अल्प संख्यक समूहों (Minorities) का प्रतिनिधित्व भी प्राप्त

हो जाता है और उनको अपना दृष्टिकोण उपस्थित करने का अवसर मिलता है। बड़ी सभा का तीसरा लाभ यह है कि देश के सबसे अधिक अनुभवी और योग्य व्यक्ति इस सभा के सदस्य होते हैं और इनके विचारों से साधारण जनता को लाभ पहुँचता है। अधिकतर देशों में बड़ी सभा के सदस्य नामनिर्देशित (mominated) होते हैं। प्रत्येक देश में ऐसे योग्य व्यक्ति होते हैं जो चुनाव और वोटिंग के बखेड़ों में नहीं आना चाहते और इस विधि से उनके विचारों से लाभ उठाया जा सकता है।

४. कानून बनाने की विधि—जब कोई कानून बनाना हो तो छोटी धारा सभा का कोई सदस्य अपनी सभा में बिल प्रस्तुत करता है और बिल की आवश्यकता और विषय की व्याख्या करता है। फिर वह बिल सरकारी गजट में साधारण जनता को सूचित करने के लिए प्रकाशित किया जाता है और मत मांगा जाता है, फिर धारा सभा में उन मतों पर विचार किया जाता है। यह बिल तीन बार प्रस्तुत होता है और जब पास हो जाता है तो बड़ी धारा सभा में भेजा जाता है, और वहां भी तीन बार पेश होता है। यदि आवश्यकता पड़े तो इस में संशोधन (amendment) किया जाता है और वह पास किया हुआ बिल एक्ट (Act) कहलाता है। शासन अंग के प्रधान के हस्ताक्षर हो जाने पर वह देश का कानून बन जाता है। यदि एक धारा सभा के संशोधन दूसरी धारा सभा को स्वीकृत नहीं होते तो दोनों सभाएं इकट्ठी होकर उस बिल पर विचार करती हैं और आपस के भेद को मिटाती हैं। इस प्रजातान्त्रिक युग में जनता के अधिकार बहुत अधिक हैं। यदि मतदाताओं को एक नियत संख्या (वह संख्या सरकार नियत करती है।) किसी बिल के पास कराने पर बल दे और जनता अपना मत लिखकर धारा सभा में दे तो वहां इस पर विचार किया जाता है। इस विधि को (Initiative) कहते हैं। दूसरी विधि कानून पास कराने की यह है कि जो बिल धारा सभा में पास किए जाते हैं, उस

पर जनता की सम्मति आवश्यक होती है। जब एक नियत संख्या मतदाताओं की इस के पक्ष में वोट दे दे तो बिल पास समझा जाता है। इस विधि को रिफ्रेण्डम (Referendum) कहते हैं । दोनों विधियों का अभिप्राय जनता की स्वीकृति प्राप्त करने का है।

५.शासन अंग का वर्णन
(The Executive)

१—शासन अंग धारासभा के बनाए हुए कानून की रक्षा करता है। इस अंग का शेष दो अंगों से सीधा सम्पर्क है। जो कोई देश के विधान या कानून को तोड़ता है, शासन अंग उसको पकड़ता है और न्यायालय से दण्ड दिलवाता है। धारासभा तो कभी २ कानून बनाती है परन्तु शासन अंग हर समय अपने कर्तव्य पालन में लगा रहता है। इस अंग में राज्य का शिरोमणि (Head of the State), मन्त्रिमंडल (Ministry) और शासक वर्ग (Administrators) सम्मिलित हैं। इस अंग में सरकार के छोटे २ कर्मचारी और बड़े २ अधिकारी आ जाते हैं। पहले वर्णन हो चुका है कि राज्य के शिरोमणि के कभी वास्तविक अधिकार होते हैं और कभी सीमित। जब राज्य शिरोमणि के वास्तविक अधिकार न हों तो उनका मन्त्रिमंडल उसके नाम पर इसके सारे अधिकारों का प्रयोग करता है। इंगलैंड में राजा केवल नाममात्र के लिए राज्य का शिरोमणि है, परन्तु वास्तविक अधिकार मन्त्रिमंडल (Cabinet) के हाथ हैं। अफ़गानिस्तान के बादशाह का शासन में पूर्ण अधिकार है, कोई मन्त्री या कर्मचारी उसके काम में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। जहां सारे अधिकार मन्त्रिमंडल के हाथ में होते हैं, वहां सारा मन्त्रिमंडल एक व्यक्ति (a single body) के रूप में काम करता है। मन्त्रिमंडल मिलकर नीति का निर्णय करता है और उस नीति पर अलग-अलग मन्त्री अपने २ विभागों (departments) द्वारा आचरण करते हैं। मन्त्रिमंडल सामूहिक रूप में काम करता है और सामूहिक रूप में(collectively) अपनी २ नीति और कार्य-

काम के लिए विधान अंग (Legislative) का उत्तरदायी होता है। प्रत्येक मन्त्री अपने २ विभागों के काम के लिए अलग २ भी उत्तरदायी है। यदि विधान अंग वा धारासभा अविश्वास प्रस्ताव (Vote of no-confidence) द्वारा वा अधिकार न देने के द्वारा वा बजट न स्वीकृत करने के द्वारा शासन अंग (The Executive) मे अपना अविश्वास प्रगट करती है तो मन्त्रिमंडल (Cabinet) को त्याग पत्र देना पड़ता है और उसके स्थान पर दूसरा ऐसा मन्त्रिमंडल बनाया जाता है जिसमें धारा सभा को विश्वास होता है।

२. राजशिरोमणि की अवधि—राजाओं तथा बादशाहों को छोड़कर जिनकी अवधि मृत्यु से ही समाप्त होती है, अन्य शिरोमणियों (Heads of the State) की अवधि का निश्चय राज्य के विधान द्वारा किया जाता है। स्विट्ज़रलैंड का प्रधान एक वर्ष के लिए, अमेरिका का प्रधान चार वर्ष के लिए और भारतवर्ष का राष्ट्रपति पांच वर्ष के लिए नियत किया जाता है। राजशिरोमणि की अवधि कम से कम पांच वर्ष होनी चाहिए। यदि कुछ अधिक हो तो कोई भय नहीं, क्योंकि एक प्रधान देश के हित और भलाई के सम्बन्ध में जो नीति निश्चित करे, उसको पूरा करने के लिए पर्याप्त समय इसके पास हो।

३. मन्त्रि मंडल की रचना—लोक सभा (Lower House) के निर्वाचन के अनन्तर राज्य का शिरोमणि बहुमत दल (Majority Party) के नेता को निमन्त्रण देता है और उसको प्रधान मन्त्री नियुक्त करता है और प्रधान मन्त्री अन्य मन्त्रियों को चुनता है और मन्त्रिमण्डल (cabinet) का निर्माण करता है। यदि एक राजनैतिक दल (Political Party) बहुमत प्राप्त नहीं कर सकता तो फिर ऐसे व्यक्ति को जो मिला-जुला मन्त्रिमण्डल (Coalition Ministry) बना सके, मन्त्रि मण्डल की रचना का निमन्त्रण दिया जाता है। जब कोई मन्त्रिमण्डल टूट जाए तो भी यही विधि दूसरा मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए इस्तेमाल की जाती है। प्रेज़ीडेन्शियल सरकार अमेरिका में

मन्त्रिमण्डल का चुनाव राज्य का प्रधान (President) स्वयं करता है और ये मंत्री प्रधान के आगे उत्तरदायी होते हैं। भारत सरकार का राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल का चुनाव प्रधानमंत्री की सलाह से करता है।

४. शासक वर्ग (Administration)–काम की सुविधा के लिए राजशासन के सारे काम को कुछ विभागों (Departments) में बांटा जाता है। एक या एक से अधिक विभागों को एक मन्त्री को सौंपा जाता है और इन विभागों के काम के लिए वही मन्त्री उत्तरदायी होता है, वही अपने विभाग या विभागों के लिये नीति (policy); और काम के नियम (procedure of work) का निश्चय करता है। प्रत्येक विभाग में कई ज़िम्मेदार अधिकारी (officers) और कर्मचारी (clerks) काम करते हैं। सरकारी मेशीन को दियानतदारी, योग्यता और उत्साह से चलाने के लिए यह आवश्यक है कि अधिकारी और कर्मचारी विशेष योग्य और आचारवान हों। इस कारण उन की नियुक्ति के लिये यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन(Union Public Service Commission) एक परीक्षा का प्रबन्ध करती है और उन सब व्यक्तियों को जो सरकारी नौकरी करना चाहते हैं, उस परीक्षा मे उत्तीर्ण होना पड़ता है। जो उम्मीदवार उत्तीर्ण हो जाते हैं उनका समन्त्रण (interview) किया जाता है और सब से अच्छे उम्मीदवारों को नौकरी के लिये चुना जाता है। अधिकारियों और कर्मचारियों का वर्ग स्थाई रूप में नियत किया जाता है और इन का दलबन्दी (Party Politics) से कोई सम्बन्ध नहीं होता। जो राजनैतिक दल राजशासन करता है उसकी नीति और आज्ञाओं के अनुसार यह वर्ग काम करता है। इस वर्ग की योग्यता, दियानतदारी, उत्साह और सेवापरायणता पर साधारण जनता का सुख और हित आधारित है।

५. स्मरण रहे कि प्रजातान्त्रिक राजशासन प्रणाली और साधारण जनता की स्वतन्त्रता और समानता के लिये शासन अंग (The-

Executive) के कार्यों के कठोर नियन्त्रण की आवश्यकता है और विधान अंग (Legislature) और साधारण जनता को इस सम्बन्ध में अपना कर्तव्य भली भांति पूरा करना चाहिए। नागरिक जीवन के आधार भूत सिद्धान्त स्वतन्त्रता, समानता-,बन्धुता या राष्ट्रीयता हैं और इनकी रक्षा केवल उस अवस्था में हो सकती है जब कि राज-शासन के अधिकारियों और कर्मचारियों में घूस (रिश्वत), पक्षपात और स्वार्थ के दोष प्रविष्ट न हो जाएं।

६. न्याय अङ्ग का वर्णन
(The Judiciary)

१. किसी राज्य की सरकार के न्याय अङ्ग का सब से पहिला कर्तव्य राज्य के कानून का ठीक अर्थ करना और उसके अनुसार झगड़ों का निपटाना है। जब दो व्यक्तियों में या किसी व्यक्ति और सरकार में कोई झगड़ा हो जाए तो न्याय अङ्ग इस झगड़े का निर्णय बड़ी योग्यता और निर्भयता से करता है। सरकार का न्याय अंग नीचे से ऊपर तक पूर्णतया संगठित है। हमारे देश में सब से छोटा न्यायालय गांव की पञ्चायत है जो गांव वालों के छोटे २ झगड़ों का निर्णय करती है। इसके अनन्तर तहसील और जिला के छोटे-बड़े न्यायालय होते हैं जो अपनी मर्यादा के भीतर झगड़ों का निर्णय करते हैं। इन न्यायालयों में जो जो अभियोग (मुकद्दमें) आते हैं वे रुपये के लेन-देनमें सम्बन्धित होते हैं अथवा मार-पीट के। पहिली प्रकार के अभियोगों को दीवानी मुकद्दमे (Civil cases) और दूसरे प्रकार के अभियोगों को फौजदारी (Criminal cases) कहते हैं। इस कारण न्यायालय भी दो प्रकार के होते हैं—दीवानी और फौजदारी न्यायालय। कभी २ भूमि के लगान सम्बन्धी मुकद्दमे एक पृथक् न्यायालय में निर्णय किये जाते हैं। इस न्यायालय का नाम माल का न्यायालय (Revenue Court) है। इन छोटे न्यायालयों के ऊपर प्रत्येक प्रान्त में एक उच्च न्यायालय अथवा हाईकोर्ट (High Court) होताहै

और हाईकोर्टों के ऊपर उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) होता है। ये सब न्यायालय राज्य की सीमा के भीतर होने वाले झगड़ों का निर्णय करते हैं और देश में शान्ति और व्यवस्था स्थिर रखने में सहायता देते हैं। यदि अपराधियों को दण्ड दिलवाने का प्रबन्ध न हो तो देश में उपद्रव मच जाए।

२. न्यायाधीशों (जजों) की नियुक्ति—न्यायाधीशों की जिम्मेदारी बहुत बड़ी होती है, चाहे वे छोटे न्यायालय में काम करते हों व बड़े में। इस कारण न्यायाधीशों की नियुक्ति भली भांति परीक्षा करके की जाती है। प्रत्येक न्यायाधीश में दो गुण आवश्यक हैं, एक तो यह कि वह कानून से भली भांति परिचित हो, क्योंकि कानून के ज्ञान बिना न्याय करना अति कठिन है। न्यायाधीश में दूसरा गुण यह होना आवश्यक है कि पक्षपात से परन्च हो, उसकी विचार धारा स्वतन्त्र हो, और किसी से डरता न हो। केवल इन गुणों वाला व्यक्ति न्यायाधीश के पद के लिए उपयुक्त होता है। न्यायाधीशों की नियुक्ति की तीन विधियां प्रसिद्ध हैं—(१) धारा सभा न्यायाधीशों का निर्वाचन करे, परन्तु इस विधि में दोष यह है कि सरकार का न्याय अङ्ग विधान अङ्ग से स्वतन्त्र नहीं हो सकता। (२) साधारण जनता न्यायाधीशों का निर्वाचन करे। जनता अवश्यमेव ऐसे व्यक्तियों को चुनेगी जिन पर उसको विश्वास होगा। अमेरिका में भी यही विधि जारी है परन्तु यह निश्चित नहीं कि सदा योग्य और दयानतदार व्यक्ति चुने जावें। (३) न्यायाधीशों को शासन विभाग वा मन्त्रिमण्डल नियुक्त करे। यह विधि सब से अच्छी समझी जाती है और बहुत से राज्यों में इस पर आचरण होता है। मन्त्रिमण्डल बड़े सोच-विचार के अनन्तर योग्य और दयानतदार व्यक्तियों को नियुक्त करता है।

३. न्याय का आदर्श—नागरिकों के अधिकारों की रक्षा न्याय अंग का परम कर्तव्य है। इस कर्तव्य को योग्यता से पूरा करने के लिए आवश्यक है कि जजों को किसी दबाव का भय न हो। इस कारण

न्याय विभाग को शासन विभाग से स्वतन्त्र रखना परम आवश्यक है। आजकल की सरकारें राजनैतिक दलों की सरकारें हैं। उन्हें प्रायः यह भय रहता है कि कहीं विरोधी दल से सम्बन्धित व्यक्ति उनसे न्याय न करें अथवा उन के दमन का यत्न करें। इस कारण यह उचित प्रतीत होता है कि शासन विभाग न्यायाधीशों की नियुक्ति तो करे परन्तु उनको इस पद से हटा न सके। यदि न्यायाधीशों को इस प्रकार की स्वतन्त्रता और निर्भयता होगी तो वे वास्तविक रूप में न्याय कर सकेंगे। कई न्यायाधीशों के विरुद्ध घूस (रिश्वत), अस्थिरता और अयोग्यता के अभियोग (शिकायतें) होती हैं, उनके विरुद्ध कार्यवाही करने के उचित ढंग प्रयोग किये जाने आवश्यक हैं।

७. केन्द्रीय और स्थानीय सरकारें
(Central and Local Governments)

१. सरकार के संबन्ध में जो कुछ कहा गया है वह साधारणतया केन्द्रीय सरकार से सम्बन्ध रखता है जो कि सारे राज्य के नागरिकों के सुख और उन्नति का आधार है, परन्तु वर्तमान काल में राज्यों की सीमाएं बहुत फैली हुई हैं और राज्य सम्बन्धी समस्याएं इतनी जटिल (पेचीदा) हो गई हैं कि केन्द्रीय सरकार राज्य के अन्दर रहने वाले सभी व्यक्तियों की आवश्यकताओं की ओर पूरा ध्यान नहीं दे सकती। इस कारण सरकारी कामों को केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारों में बांटना अति आवश्यक हो गया है। सरकार के जो अधिकारी और कर्मचारी राज्य के किसी विशेष विभाग, प्रांत वा जिला सम्बन्धी कर्तव्यों को पूरा करते हैं वे समष्टि रूप में स्थानीय सरकार के नाम से पुकारे जाते हैं। दूसरे शब्दों में स्थानीय सरकार (Local Government) केन्द्रीय सरकार (Central Government) के अधीन किसी स्थान विशेष के शासन प्रबन्ध को कहते हैं। इस अभिप्राय से किसी सूबा, जिला वा नगर के शासन प्रबन्ध को स्थानीय सरकार कह सकते

हैं और यह संस्था इतनी ही प्राचीन है जितनी कि केन्द्रीय सरकार।

२. जिस ढंग से स्थानीय सरकारें आज कल बहुत से राज्यों में चल रही हैं उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्थानीय सरकार और केन्द्रीय सरकार में दो बड़े अन्तर हैं—

(१) स्थानीय सरकार राज्य के किसी विशेष भाग की इंचार्ज होती है और इस स्थान में रहने वालों के लाभ और उन्नति के कामों को सम्भालती है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार राज्य के सारे कार्यों की इन्चार्ज होती है और इस सरकार की नीति-रीति साधारण रूप में सारे राज्य की रक्षा, अन्य देशों से सम्बन्ध, यातायात, डाकतार आदि हितकारी कार्यों की उन्नति सम्बन्धी योजनाएं तैयार करती है और उन को कार्य रूप में परिणित करने का प्रबन्ध करती है।

(२) स्थानीय सरकार केन्द्रीय सरकार के अधीन होती है और इसकी नीति रीति केन्द्रीय सरकार की आज्ञा के अनुसार चलती है और इस के खर्च का बहुत सा भाग केन्द्रीय सरकार देती है। स्थानीय सरकार के संगठन (organisation) और कार्यक्रम (administration) का निर्णय भी केन्द्रीय सरकार करती है और जब कभी आवश्यकता पड़ती है तो इसमें परिवर्तन भी कर सकती है। उदाहरण रूप में इण्डियन पीनल कोड (Indian Penal Code) जो कि केन्द्रीय सरकार ने बनाया है और जारी किया है सारे भारतवासियों को दुष्टों और दुराचारियों से बचाने के लिये है परन्तु देहली वाटर वर्क्स केवल देहली की सीमा के भीतर रहने वालों के लाभ के लिए कर रहा है।

३. केन्द्रीय सरकार ने अपने पास ऐसे कार्यों को रखा हुआ है जिनके सम्बन्ध में सारे राज्य के लिए एक समान नीति की आवश्यकता होती है। अन्य राज्यों से सम्बन्ध, सेना, पोलीस, मुद्रा (सिक्के) तोल, माप, यातायात, डाकतार, न्याय आदि कार्यों का प्रबन्ध केन्द्रीय सरकार के पास है क्योंकि यह कार्य सारे राज्य के सुख

और उन्नति से सम्बन्ध रखते हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, रोशनी, पानी आदि का प्रबन्ध स्थानीय सरकारों को सौंपा जाता है, क्योंकि इन का प्रबन्ध स्थानीय सरकार अपनी स्थानीय समस्याओं और आवश्यकताओं के अनुसार भली प्रकार कर सकती है। परन्तु इन कार्यों को भली प्रकार पूरा करने के लिए केन्द्रीय सरकार अपनी सम्मति भी देती है, धन की सहायता भी बड़ी मात्रा में देती है। स्थानीय सरकारों को वे काम दिए जाते हैं जिनका स्थानीय महत्व अधिक है और जिनको स्थानीय सरकारें स्थानीय अवस्था को देखकर निबाह भी सकती हैं।

८. स्थानीय स्वराजी सरकार

१— सारे देश या राज्य के शासन प्रबन्ध करने वाले वर्ग को केन्द्रीय सरकार (Central Government) कहते हैं। यह सरकार सारे राज्य की रक्षा, यातायात तथा सुख और उन्नति के अन्य साधनों का प्रबन्ध करती है और राज्य के सब नागरिकों के माल और जीवन की रक्षा और सुख की वृद्धि का प्रयत्न करती है। परन्तु राज्य की सीमाएं बड़ी दूर २ तक फैली हुई होती हैं और केन्द्रीय सरकार के अधिकारी राज्य के कोने २ में आसानी से नहीं पहुँच सकते इसलिए राज्य को कई प्रान्तों में बांटा जा सकता है और हर एक प्रांत में एक प्रांतीय सरकार बनाई जाती है। केन्द्रीय सरकार अपने कुछ कर्तव्यों को जो स्थानीय समस्याओं से विशेष सम्बन्ध रखते हैं प्रान्तीय सरकार को सौंप देती है। इस प्रान्तीय सरकार(Provincial Government) को स्थानीय सरकार (Local Government)भी कहते हैं। प्रांतीय सरकार अपनी सुविधा के लिए सारे प्रांत को कई जिलों (districts) में बांट देती है और हरेक जिले का प्रबन्ध एक जिम्मेदार अधिकारीको सौंप देती है। इस अधिकारी को जिलाधीश (Deputy Commissioner) कहते हैं। यह जिलाधीश प्रांतीय सरकारसे आदेश लेकर काम करता है और अपने सारे कार्यों के लिए प्रांतीय सरकार के प्रति उत्तरदायी होता है। प्रांतीय सरकार और जिला की सरकार को स्थानीय सरकार

(Local Government) कहते हैं।

२. स्थानीय स्वराजी सरकार की परिभाषा—प्रत्येक ज़िले का बड़ा अधिकारी अपने ज़िले के गांव तथा नगरों का पूरा पूरा प्रबन्ध नहीं कर सकता इस लिए हरेक नगर की कुछ सुविधाओं अर्थात् शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रकाश, पानी, सड़कों, यातायात आदि का प्रबंध इस नगर के ज़िम्मेदार प्रतिनिधियों के हाथ दे देता है। ये प्रतिनिधि नगरवासियों द्वारा चुने जाते हैं और प्रायः ये नगर के विभिन्न मुहल्लों तथा विभिन्न जातियों के अधिकारों की रक्षा के ज़िम्मादार होते हैं। ऐसे स्थानीय प्रबन्ध को स्थानीय स्वराजी सरकार (Local self-government) कहते हैं। नगरों की स्थानीय स्वराजी सरकार को म्युनिसिपल कमेटी कहते हैं। ये स्थानीय स्वराजी सरकारें स्थानीय विशेष समस्याओं की देख-रेख कर के साधारण जनता के सुख और उन्नति के साधनों का प्रयोग करती हैं।

३. स्थानीय स्वराज्य का महत्व—स्थानीय स्वराजी संस्थाओं के बड़े बड़े लाभ ये हैं—

(१) राज्य की सीमाएं बहुत बड़ी होती हैं और केन्द्रीय सरकार बड़े २ विषयों—बाहरी शत्रुओं से रक्षा, देश के भीतर शान्ति और अमन की स्थापना, दुराचारियों और दुष्टों को दण्ड दिलाने के लिए न्यायालयों का प्रबन्ध करना आदि की ओर बहुत ध्यान देती है, परन्तु नगरों तथा गांवों में प्रकाश, सफ़ाई, यातायात, मंडियां, पार्कों, पाठशालाओं, कुंओं की सफ़ाई मनुष्यों की तथा पशुओं की चिकित्सा की ओर पूरा ध्यान नहीं दे सकती। इस लिए इन विषयों को स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं को सौंपा जाता है। स्थानीय सरकारें इनका प्रबन्ध भली भांति कर सकती हैं और खर्च भी कम होता है।

(२) भिन्न २ स्थानों की समस्याएं अपनी अपनी होती हैं, और इन समस्याओं का हल केवल स्थानीय योग्य और निःस्वार्थी पुरुष स्वयं भली भांति खोज लेते हैं। इसके अतिरिक्त स्थानीय लोग जब अपनी सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रबन्ध करते

हैं तो उनको केन्द्रीय सरकार से असन्तुष्ट रहने का अवसर कम मिलता है।

(३) स्थानीय स्वराज्य से सब से बड़ा लाभ यह है कि जनता को प्रजातांत्रिक शासन का अनुभव हो जाता है, लोग चुनाव की रीतियों से परिचित हो जाते और सहयोग, स्वार्थ त्याग और सार्वजनिक सेवा के गुण ग्रहण कर लेते हैं।

४. केन्द्रीय सरकार तथा स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं का परस्पर सम्बन्ध—स्थानीय स्वराजी संस्था के कामों का प्रभाव प्रांतीय और केन्द्रीय सरकार के कामों पर भी पड़ता है। यदि म्युनिसिपल कमेटियों और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों का काम सन्तोषजनक न हो तो सारे प्रान्त के प्रबन्ध पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इस कारण स्थानीय स्वराजी संस्थाओं की थोड़ी बहुत देखभाल केन्द्रीय सरकार की ओर से हुआ करती है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार के अधिकारियों की योग्यता तथा अनुभव अधिक होता है। अतः वे अपने परामर्श से स्थानीय स्वराजी संस्थाओं के प्रबन्ध को पहिले की अपेक्षा श्रेष्ठ बना सकते हैं। म्युनिसिपल कमेटी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की आय के साधन सीमित होते हैं, इसलिए केन्द्रीय सरकार इन संस्थाओं की आर्थिक सहायता भी करती है। स्वराजी संस्थाओं को चलाने के लिए म्युनिसिपल एक्ट और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड एक्ट नियम पूर्वक सरकार द्वारा स्वीकृत होते हैं और ये संस्थाएं अपने २ विधानों के नियमों के अनुसार काम करती हैं। जब तक यह काम भली भांति चलता रहे और उसमें किसी प्रकार की त्रुटियां न हों तो केन्द्रीय सरकार को उन कामों में हस्तक्षेप करने का अवसर कम मिलता है। कई काम स्वराजी संस्थाएं केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति के बिना नहीं कर सकतीं। उदाहरण रूप में ऋण लेना, और उच्च पद अधिकारियों को सेवा से पृथक् करना, ऐसी बातों के लिए केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति लेना आवश्यक हो जाता है।

४. भारतवर्ष में स्थानीय स्वराजी संस्थायें—

भारतवर्ष में स्थानीय स्वराज्य संस्थाएं ये तीन हैं—

(१) म्युनिसिपल कमेटियां (Municipal Committees) हर एक प्रांत में बीस हजार से अधिक जन संख्या वाले नगरों में म्युनिसिपल कमेटियां, दस हजार से बीस हजार तक जनसंख्या वाले कस्बे में टाऊन एरिया कमेटी (Town Area Committee) और पांच हजार से दस हजार तक जन संख्या वाले कस्बों में नोटीफाइड एरिया कमेटियां (Notified Area Committee) स्थापित हैं और ये संस्थायें अपनी २ सीमाओं के अन्दर शिक्षा, पानी, प्रकाश, सड़कों, मण्डियों, ट्रैफिक आदि का प्रबन्ध जनता के प्रतिनिधियों द्वारा करती हैं। इन संस्थाओं के सदस्य अपने अपने मुहल्ले या बोर्ड की आवश्यकताओं की देख भाल करते हैं, और उनको पूरा करने का प्रबन्ध करती हैं। इस समय एक हजार से अधिक म्युनिसिपल कमेटियां भारतवर्ष में अपना काम कर रही हैं।

(२) डिस्ट्रिक्ट बोर्ड (District Board)-जो काम नगरों में म्युनिसिपल कमेटियां कर रही हैं, लगभग वही काम जिला भर के गांवों की सुविधा के लिए डिस्ट्रिक्ट बोर्ड कर रहे हैं।

(३) ग्राम पञ्चायत—हमारे देश में गांवों का महत्त्व अधिक है क्योंकि यहां नब्बे प्रतिशत जन-संख्या गांवों में रहती है परन्तु यह बड़े शोक की बात है कि हमारे गांवों की सफ़ाई, सड़कें, कुंए और पाठशालाएं आदि बुरी अवस्था में हैं। इन कार्यों को ग्राम पचायतें भली प्रकार कर सकेंगी यदि उनको सरकार की ओर से धन आदि की सहायता पूरी २ दी जाए। गांव वालों के छोटे २ झगड़ों का निपटारा भी ये पंचायतें आसानी से कर सकती हैं, और गांव वालों को मुकद्दमाबाजी के कष्ट और खर्च से बचा सकती हैं। स्वतन्त्र भारतवर्ष इस संस्था को पुनर्जीवित कर रहा है, और देश में गांव पंचायतों के निर्माण का काम बड़ी तेजी से हो रहा है।

Questions (प्रश्न)

1. What are the main organs of the Government of a state ? Enumerate the main functions which each of them performs.
किसी राज्य की सरकार के आवश्यक अंग कौन २ से हैं, हर एक अंग के बड़े २ कर्त्तव्य वर्णन करो ?

2. What is meant by' separation of power. What are its advantages?
अधिकार पृथक्करण सिद्धान्त का अभिप्राय क्या है और इस सिद्धांत के लाभ क्या हैं ?

3. Discuss the nature of relationship between the Executive and Judiciary. How far separation between the two would be conducive to maintenance of the liberty of the citizen ?
सरकार के शासन अंग और न्याय अंग के परस्पर सम्बन्ध की व्याख्या करो। इन दोनों अंगों के अधिकारों का अलग करना नागरिक की स्वतन्त्रता की प्राप्ति में कितने तक लाभकारी होगा !

4 Explain the terms—Central Govt. Local Govt- and Local Self Government and comment upon the relation between the central and local authorities.
केन्द्रीय, स्थानीय और स्थानीय स्वराजीय सरकारों की परिभाषा करो और इनके परस्पर सम्बन्ध की व्याख्या करो !

5. What is the importance of the local self-governing bodies and what kinds of local self governing institutions are working in India.
स्थानीय स्वराजीय संस्थाओं की आवश्यकता क्या है ? भारतवर्ष में किस प्रकार की स्वराजी संस्थाएं काम कर रही हैं ?

दसवां अध्याय

सरकार के स्वरूप

(Forms of Government)

१. सरकार का प्राचीन वर्गीकरण

(Old Classification of Government)

किसी राज्य (State) की सरकार (Government) का निर्माण भिन्न २ दृष्टिकोणों से भिन्न २ प्रकार से किया जाता है। कुछ लेखकों ने सरकार के अधिकारों को सामने रखकर सरकार के निम्नलिखित स्वरूप गिनवाए हैं--

(१) एकतन्त्र सरकार (Monarchy)—यदि राज्य में एक राजा हो और शासन प्रबन्ध के सभी अधिकार उसमें केन्द्रित हों तो ऐसी सरकार को राजसत्तात्मक वा एकतन्त्र सरकार कहते हैं। प्राचीन-काल में ऐसी सरकारें बहुत से राज्यों में स्थापित थीं।

(२) कुलीनतन्त्र सरकार (Aristocracy)—यदि किसी राज्य का शासन प्रबन्ध उस राज्य के कुछ योग्य और बलवान पूंजी-पतियों के हाथ में हो तो उस राजशासन को अल्पसत्तात्मक वा कुलीन तन्त्र सरकार कहते हैं।

(३) बहुतन्त्र सरकार (Democracy)—यदि किसी राज्य का शासन प्रबन्ध उस राज्य की साधारण जनता सम्पूर्णतया स्वयं करती हो तो इस प्रकार के राजशासन को प्रजातन्त्रात्मक वा बहुतन्त्र सरकार (Polity or Democracy) कहते हैं।

कई लेखकों ने शासकों की राजनैतिक भावना (Administrative spirit) को सामने रखकर सरकार के स्वरूप इस प्रकार गिनवाए हैं--

(१) अत्याचारी सरकार—एकतन्त्र सरकार बहुत अच्छी होती है, यदि राजा न्यायकारी हो, प्रजा के हित का ध्यान रखता हो और निःस्वार्थी मन्त्रियों से सलाह लेकर काम करता हो।

यदि राजा निरंकुश हो और प्रजा पर अत्याचार करता हो तो उस सरकार को अत्याचारी सरकार (Tyranny) कहते हैं।

(२) वर्गी सरकार—यदि राज्य का शासन थोड़े से व्यक्तियों के हाथ में हो और वे सारी प्रजा के हित का ध्यान नहीं करते बल्कि अपने सुख और हित को ही सोचते हैं, तो उस सरकार को वर्गी सरकार या अल्पजन-तन्त्र (Oligarchy) कहते हैं।

(३) असंगठित भीड़ की सरकार—यदि किसी राज्य में शासन प्रबन्ध संगठित नहीं और मूर्ख लोग अपनी मनमानी कार्यवाही करते रहते हैं, तो उस सरकार को असंगठित भीड़ की सरकार (Mobocracy) कहते हैं।

२. सरकारों का वर्तमान वर्गीकरण

(Modern Classification of Governments)

समय के अनुसार राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक विचारों में पर्याप्त परिवर्तन आ चुका है और राज्यशासन में जनता के अधिकार बढ़ चुके हैं। इसलिए आजकल मिश्रित (mixed) प्रकार की सरकारों का रिवाज हो रहा है। न तो वे केवल एकतन्त्र (Monarchical) सरकारें हैं और न पूर्णतया प्रजातान्त्रिक। इंगलैंड में राज्य का शिरोमणि (Head of the Government) सम्राट् (Emperor) है; परन्तु राज्यशासन प्रजातन्त्रात्मक है। इसके अतिरिक्त आजकल राजाओं को स्वतन्त्रता कहीं भी नहीं है। वर्तमानकालीन सरकारों को दो समूहों में बांटा गया है—

(१) निरंकुश सरकारें (Despotic or Autocratic Governments)-जिस राज्य (State) का शासन एक ऐसे

व्यक्ति के हाथ में होता है, जो अच्छे या बुरे शासन के लिए किसी को उत्तरदाई नहीं होता। उस राज्य की सरकार निरंकुश सरकार कहलाती है। महान् युद्ध (१९१४-१८) के पश्चात् योरोप में इस प्रकार की सरकारें कई राज्यों (States) में स्थापित हो गई थीं। इटली, टर्की, जर्मनी, रूस, बलगारिया, स्पेन आदि राज्यों में सरकार की बागडोर एक व्यक्ति के हाथों मे आ गई थी। ऐसे व्यक्ति तानाशाह (Dictators) कहलाते थे और उन्होंने अपनी आसानी और सुख के लिए प्रतिनिधियों की समिति (Representative Body) या कार्यकारिणि सभा (Executive Council) स्थापित करली थी, परन्तु ऐसी समिति या सभा को अवश्य तानाशाह की इच्छा और आज्ञा के अनुसार काम करना पड़ता था, और इसके सदस्य अपने सब कार्यों के लिए तानाशाह को उत्तरदाई थे।

(२) प्रजा-सत्तात्मक सरकारें (Democratic Governments)-यहां शासन प्रबन्ध साधारण जनता के प्रतिनिधियों के हाथों में होता है, राज्य के सभी कार्य प्रजा की इच्छा के अनुकूल चलाए जाते हैं, और यहां का राज्य शासन प्रजा के सामने उत्तरदाई (responsible) होता है।

प्रजासत्तात्मक सरकारों के उपविभाग (Sub-divisions) भिन्न २ राजनैतिक दृष्टिकोणों से किए जाते हैं, जिनकी व्याख्या नीचे की जाती है:—

(१) वैधानिक एकतान्त्रिक और प्रजातान्त्रिक सरकारें Constitutional or Limited Monarchy and Republic) वैधानिक एकतान्त्रिक सरकार के अन्दर राजा को एक निश्चित विधान के अनुसार शासन करना पड़ता है, वह उस विधान को तोड़ने का अधिकारी नहीं और न वह कोई काम मनमाना कर सकता है। इंगलैंड में सम्राट् इसी वैधानिक नियम के अनुसार बृटिश साम्राज्य पर शासन करता है। वहां पैतृक पद्धति के अनुसार राजा (Hereditary

King) है जो केवल नाम मात्र सर्वोच्च अधिकारी (Sovereign) या राज्यशिरोमणि (Head of the State) है। इसका राज्य-शासन पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं। वहां का राज्यशासन पार्लीमेंट और मन्त्रिमण्डल के हाथ में है। ऐसे राज्यशासन को वैधानिक एकतान्त्रिक सरकार (Limited Constitutional Monarchy) कहते हैं। कभी २ प्रजा राजा को चुन लेती है। ऐसे राजा को निर्वाचित राजा (Elected King) कहते है।

जब प्रजासत्तात्मक सरकार का शिरोमणि (head) पैतृक वा निर्वाचित राजा (Herediary or elected king) नहीं होता बल्कि राज्य की साधारण जनता अपने वोटों से देश के किसी योग्य और विश्वस्त व्यक्ति को चुनकर अपने राज्यशासन का प्रधान (President) बना लेती है तो उस प्रकार की सरकार को प्रजातान्त्रिक सरकार (Republic Government) कहते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमरीका और भारत में रीपब्लिक प्रकार का राज्यशासन है।

(२) एक-आत्मक और सङ्घ आत्मक सरकारें (Unitary and Federal Governments)-एकात्मक या एक केन्द्रीय सरकार में देश का समस्त राज्यशासन केन्द्रीय सरकार (Central Government) के पास होता है और वही समस्त राजकीय विषयों का प्रबन्ध करती है। ऐसे देशों में यदि शासनप्रबन्ध को सुविधा के लिए प्रान्तीय सरकारें होती भी हैं तो वे केन्द्रीय सरकार की इच्छा पर अवलम्बित होती हैं। इस प्रकार की सरकार को एकात्मक सरकार (Unitary Government) कहते हैं।

विपरीत इसके, जिस देश के कुछ छोटे २ राज्यों (State) ने मिलकर एक सङ्घ (Association) बना लिया है, वहां का राज्य शासन संघात्मक कहलाता है। ऐसे सगठित संयुक्त देश में दो सरकारें होती हैं—संघ सरकार (Federal Government) और राज्य-सरकार (State Government) । संघ सरकार के अधिकार में

वे राजनैतिक विषय होते हैं जो संघ में सम्मिलित सारे राज्यों से सम्बन्ध रखते हों। उदाहरणतया सेना, विदेशी व्यापार, डाक, रेल, तार, सिक्के नोट (Currency) आदि का प्रबन्ध संघ सरकार करती है। शेष विषयों का प्रबन्ध संघ में सम्मिलित प्रत्येक राज्य (State) अपने राज्य की अवस्था अनुसार अपनी नीति वा इच्छा से करता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, खेती, पुलिस आदि विषयों में राज्य-सरकार (State Government) संघ सरकार (Federal Government) से स्वतन्त्र होती है। संघ सरकार और राज्य-सरकारों के अधिकार देश के शासन-विधान में पृथक् २ दिए होते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमरीका (U.S.A.) स्विट्ज़रलैंड और भारत की सरकारें संघात्मक सरकार के उदाहरण हैं।

(३) अध्यक्षात्मक और केबिनेट सरकारें (Presidential and Cabinet Governments)—आजकल सरकारों का सबसे महत्व-पूर्ण बंटवारा उत्तरदायी सरकार (Responsible Government) और अनुत्तरदाई सरकार (Non-responsible Government) में है। यह बटवारा कार्यकारिणी समिति (Executive Council or Cabinet) और धारा सभा (Legislative Assembly) के परस्पर सम्बन्ध पर अवलम्बित है। केबिनेट वा पार्लियामेन्टरी सरकार(Cabinet or Parliamentary Government) उत्तरदाई सरकार का दूसरा नाम है। ऐसी सरकार में केबिनेट वा मन्त्री-मण्डल धारासभा के सदस्य होते हैं और वे अपने कार्यों के लिये धारा सभा के उत्तरदायी होते हैं। यह उतने तक राज्य-शासन कर सकती है, जब तक धारा सभा का उसमें विश्वास होता है। मन्त्री-मंडल के विरुद्ध धारा सभा में अविश्वास का प्रस्ताव पास होने पर ऐसी सरकार को त्यागपत्र देना पड़ता है।

अध्यक्षात्मक (Presidential) प्रणाली में राज्यशासन का सर्वोच्च अधिकारी प्रधान (President) होता है जिसको लोग एक नियत

समय के लिये चुनते हैं। प्रधान की सहायता के लिए एक कार्यकारिणी समिति (Executive Body) होती है जिसके सदस्य प्रधान स्वयं नियुक्त करता है और वे अपने कार्यों के लिए उसके आगे उत्तरदायी होते हैं। अध्यक्षात्मक सरकारमें कार्यकारिणी समिति धारासभा का अङ्ग नहीं होती, अर्थात् कार्यकारिणी समिति के सदस्य धारासभा के सदस्य नहीं होते और न वे धारासभा के उत्तरदायी होते हैं, और प्रधान की नियत अवधि के अन्दर धारासभा के अविश्वास पत्र का भी उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यदि धारासभा चाहे तो प्रधान और उसकी कार्यकारिणी-समिति के सदस्यों पर कुरीतियों या बुरे कामों के लिए मुकदमा चला सकती है लेकिन प्रधान को अपनी अवधि की समाप्ति से पहले हटा नहीं सकती। इस प्रकार की सरकार संयुक्त राष्ट्र अमरीका की है।

भारतवर्ष की सरकार अध्यक्षात्मक और कैबिनेट दोनों हैं।

भारतसंघ का राष्ट्रपति जनता का निर्वाचित महान व्यक्ति है और इस प्रकार वह भारत का वैधानिक प्रधान है और वह राजपाट के सारे काम मन्त्रिमंडल की सम्मति से करता है और मन्त्रिमंडल अपने कामों के लिए भारत संसद (Parliament) के प्रति जिम्मेदार है। जहाँ तक केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों का सम्बन्ध है, हमारा विधान अमेरिका के संघात्मक विधान के समान है। अर्थात् प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय सरकार से सर्वथा स्वतन्त्र हैं। सारे देश के शासन के बड़े २ विषय—बाहरी शत्रुओं से रक्षा, अन्य राज्यों से सम्बन्ध, यातायात के साधनादि, जो सारे देश से सम्बन्धित हैं, केन्द्रीय सरकार के हाथ में हैं और शिक्षा, स्वास्थ्य, पोलीस, कृषि, सिंचाई आदि विषय जो प्रान्तों की स्थानीय घटनाओं से संबन्ध रखते हैं, प्रान्तीय सरकारों के हाथ में हैं। कुछ विषय ऐसे भी हैं जिनका सम्बन्ध दोनों सरकारों से है, ऐसे विषयों का निर्णय पारस्परिक सम्मति

और मन्त्रणा से होता रहता है। स्पष्ट है कि भारत का संविधान और शासन इंगलिस्तान के संविधान और शासन के समान संघात्मक है।

३. एक तन्त्र सरकार की समीक्षा

१—यद्यपि एकतान्त्रिक राजशासन का राजाओं-महाराजाओं और बादशाहों का युग समाप्त हो चुका है और वर्तमान काल में क्रियात्मक रूप में किसी राजशासन का प्रबन्ध उस राज्य की जनता के हाथ में है, तो भी कई देशों में राजे, महाराजे, बादशाह और राज शिरोमणि (Heads of States) इस समय तक विद्यमान हैं। उदाहरण रूप में अफगानिस्तान, ईरान, पुर्तगाल और इंगलैंड के राज सिंहासन पर पैतृक राजा (hereditary kings) विराजमान हैं और अपने अपने राज्य के संगठन और उन्नति के साधन का प्रतीक बने हुए हैं। प्राचीनकाल में कई राजे-महाराजे निरंकुश थे और राज्य के कार्यक्रम को अपनी इच्छानुसार चलाते थे। यदि राजा योग्य, सदाचारी और उदारचित्त होता था तो प्रजा सुखी रहती थी और राज्य हर प्रकार से फलता-फूलता था। यदि राजा दुराचारी अयोग्य और स्वार्थी होता था तो राज्य नरक का नमूना बन जाता था। ऐसे राजशासन की सफलता और असफलता राजा के व्यक्तित्व (personality) पर निर्भर थी। राजा के पास सदा मन्त्रिमण्डल भी होता था और प्रायः उन की सहमति से राज शासन होता था। यदि मन्त्रिमण्डल भला और सेवा परायण होता था तो प्रजा सुखी और राज्य उन्नत होता था अन्यथा इसके विपरीत दृश्य दिखाई देते थे। वैदिक काल में राजाओं पर ऋषियों और मुनियों का बड़ा प्रभाव था और प्रायः मन्त्री योग्य, नि:स्वार्थी और त्यागी ब्राह्मण होते थे, जिनके जीवन का केवल मात्र उद्देश्य मनुष्य मात्र की सेवा होता था। इस कारण भारतवर्ष में रामराज्य आदर्श राज्य गिना जाता है।

२—आजकल जिस २ राज्य के शिरोमणि (heads) बादशाह और राजे हैं, वहां वह वैधानिक रूप में राज्य के शिरोमणि हैं। उनके पास कुछ अधिकार भी हैं। ये अधिकार किसी राज्य में अधिक हैं और किसी में कम। परन्तु राज-शासन की वास्तविक शक्ति जनता

के चुने हुए प्रतिनिधियों से निर्माण की हुई धारा सभा में केन्द्रित होती हैं। राज्य का सारा शासन प्रबन्ध राज्य की धारासभा से स्वीकृत विधान (Lagis-lature) के अनुसार चलाया जाता है। यदि जनता राज-शासन से असन्तुष्ट हो तो वह अपने विचार तत्काल प्रकट कर सकती है और राजशासनमें परिवर्तन ला सकती है। वर्तमान काल के एकतान्त्रिक राज्यों (Monarchies,को वैधानिक वा सीमिति राज्य(Constitutional or limited monarchies)कहते हैं।

(३–अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि जब राजशासन के सारे अधिकार जनता या जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों वा जनता की बनाई हुई धारासभा में केन्द्रित हैं तो इन खर्चीले (costly) शिरोमणि महोदयों को स्थिर रखने का कुछ उद्देश्य भी है ? जहां जहां वैधानिक राज्य हैं और राजा या बादशाह राज्य के शिरोमणि हैं, उनका विचार है कि ये राजे-महाराजे एक विशेष उद्देश्य को पूरा करते हैं और उनके वेतन, ठाठ, बाट, महल आदि पर व्यय की हुई राशि वृथा नष्ट नहीं होती है। राजा की प्रथा बहुत प्राचीन है और उन जनसाधारण को जो अभी तक अनपढ़ और राजनैतिक विचारों के महत्व से अनभिज्ञ हैं राजा का व्यक्तित्व राज-भक्ति के बंधन में बांधने के लिए न केवल बड़ा भारी साधन है बल्कि राज्य के संगठन और जनता के राजशासन में सह-योग दिलाने में बड़ी सीमा तक सफल होता है। इंगलैण्ड के महाराजा तो इन साधारण लाभों के अति रिक्त मातृभूमि इंगलैण्ड तथा कैनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका आदि उपनिवेशों (Dominions) के मध्य एकता का सूत्र बना हुआ है।

४—अफ़गानिस्तान और ईरान में तो बादशाह के बड़े २ अधिकार हैं परन्तु जिन परिस्थितियों से संसार गुजर रहा है उनसे प्रभावित होकर बादशाहों के अधिकार धीरे २ क्षीण हो रहे हैं और राजशासन में जनता की इच्छा बल पकड़ रही है। इंगलैण्ड और पुर्तगाल के बाद-शाह तो केवल नाममात्र के शासक हैं और राजशासन के अधिकार

पार्लियामेंट और मन्त्रिमण्डल में केन्द्रित हैं। इस विचारधारानुसार यह एकतान्त्रिक राजशासन प्रजातान्त्रिक सरकारों की एक शाखा बन गए हैं।

४—प्रजा-सत्तात्मक राज्य की समालोचना

१. प्रजा-तन्त्र की परिभाषा—प्रजातन्त्र की परिभाषा कई प्रकार से की गई है। प्राचीन यूनानी नीतिज्ञ प्रजातन्त्र उस राज्य शासन को कहते थे जो राज्य शासन बहुमत की इच्छानुसार चलाया जाता था। विस्काऊंट ब्राईस (Viscount Bryce) के विचार अनुसार प्रजातन्त्रात्मक वह राज्य है, जिसमें अच्छे नागरिकों के बहुमत के अनुसार शासन किया जाता है। डीसे (Dicey) उस राज्यशासन को प्रजातान्त्रिक राज्य कहते हैं, जिसमें सारी जाति के बहुत व्यक्तियों से शासक वर्ग की रचना की जाए। प्रोफेसर सीले (Prof. Seeley) के विचारानुसार प्रजा-तान्त्रिक वह राज्य शासन है, जिसमें राज्य का हर एक व्यक्ति भाग लेता है। इन महानुभावों की परिभाषाओं को सामने रख कर यह परिणाम निकलता है, कि प्रजासत्तात्मक वा प्रजा-तान्त्रिक राज्यशासन उस राज्य शासन प्रणाली को कहते हैं, जिसमें शासन सम्बन्धी प्रश्नों का अन्तिम निर्णय प्रजा वा साधारण जनता के हाथ में हो। ऐसे राज्यशासन में जनता ही विधान बनाती है, जनता उस विधान के अनुसार शासन करती है और जनता ही उस विधान के प्रतिकूल चलने वाले अपराधियों को दण्ड देकर देश में न्याय की स्थापना करती है।

२. प्रजा सत्तात्मक राज्यशासन के गुण—(१) संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रधान इब्राहीम लिंकन ने प्रजातान्त्रिक राज्य की परिभाषा बहुत अच्छे शब्दों में की है। वह कहता है कि प्रजातान्त्रात्मक राज्य वही है जिसमें जनता पर जनता के हित के लिए जनता ही का राज्य हो। इस विचार के अनुसार राज्य की सर्वोच्च सत्ता(Sovereignty) समूची जनता के हाथ में होती है, न कि एक व्यक्ति विशेष वा

व्यक्तियों के समूह विशेष के हाथ में होती है। प्रजातान्त्रिक राजशासन जनता की *सर्वोच्च शक्ति के आधार पर स्थापित किया जाता है।* इस प्रकार प्रजातान्त्रिक राज्य की सरकार व्यक्ति के सुख और हित के लिए काम करती है, और शासन की नीति और कार्यक्रम (policy *and programme of action*) में *जनता का परामर्श और* स्वीकृति प्राप्त की जाती है।

(२) प्रजातान्त्रिक राज्य में राजनैतिक संगठन की भित्ति एकता, समानता, स्वतंत्रता और न्याय पर रखी गई है। ऐसे राज्य में सब व्यक्तियों के राजनैतिक अधिकार समान होते हैं और हर एक व्यक्ति की स्वतन्त्रता सुरक्षित होती है। ऐसे राज्य में जाति-पांति, वर्ण, वंश, वृत्ति, व्यवसाय आदि के विचार से नागरिकों में किसी प्रकार का भेद नहीं किया जाता और राज्य की विभिन्न संस्थाओं, न्याय, सरकारी नौकरी, धारासभा आदि में सब नागरिकों के साथ समानता का व्यवहार किया जाता है। इस कारण प्रजातान्त्रिक राज्य ऐसे सामाजिक संगठन का स्वस्थ स्वरूप है जिसमें किसी विशेष व्यक्ति के विशेष अधिकार नहीं होते और हर एक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास का पूरा २ अवसर मिलता है।

(३) प्रजातान्त्रिक राज्य में हर एक व्यक्ति को अपने देश की सरकार में भाग लेने का अवसर मिलता है। इसलिए इसके अन्दर आत्मसम्मान का भाव उत्पन्न होता है और वह अपने में से आलस्य, असावधानता, अनुत्तरदायित्व आदि दुर्गुणों को अति शीघ्र दूर करने का यत्न करता है। वह अपने देश के लिए हर प्रकार का कष्ट उठाने के लिए तैयार हो जाता है। इस कारण प्रजातान्त्रिक राज्य सामाजिक सुधार का केन्द्र है।

(४) प्रजातान्त्रिक राज्य में हर एक व्यक्ति को स्वतन्त्र विचार, स्वतन्त्र भाषण और स्वतन्त्र गति के अधिकार प्राप्त होते हैं और वह शासन के हर एक कार्य पर आलोचना कर सकता है। राजशासन की

नीति और कार्यक्रम जनता की इच्छानुसार बनाए जाते हैं। इसलिए प्रजातान्त्रिक राज्य में किसी प्रकार विद्रोह का भय नहीं रहता। लोग जब चाहें और जैसा चाहें वैसा परिवर्तन शासन प्रणाली में ला सकते हैं।

(५) प्रसिद्ध नीतिज्ञ जोहन स्टुअर्ट मिल (John Stuart Mill) के अनुसार किसी राज्य के गुण और दोष जानने की दो कसौटियां हैं। एक तो यह है कि राज्य जनता के लिए अच्छे शासन का प्रबन्ध कर सकता है या नहीं और दूसरी कसौटी यह है कि उसका प्रभाव जनता पर अच्छा पड़ता है या बुरा। यदि इन कसौटियों द्वारा राज्य-शासन की रीतियों का माप किया जाए तो ज्ञात होगा कि शासन प्रबन्ध और उसका जनता पर प्रभाव दोनों पहलुओं से प्रजातान्त्रिक शासन अन्य सब शासनों से अच्छा है, क्योंकि इसको सारे मनुष्यों की बुद्धि और प्रतिभा का लाभ प्राप्त है और शासन प्रणाली को अच्छे से अच्छा बनाया जा सकता है। यदि कोई अधिकारी अपना कर्तव्य-पालन दयानतदारी से नहीं करता तो उसके स्थान पर उससे अधिक योग्य और कर्तव्यशील व्यक्ति को नियुक्त किया जा सकता है।

(६) प्रजातान्त्रिक राज्य में अल्प-संख्यक जातियों का बड़ा ध्यान रखा जाता है और साम्प्रदायिक उदारता से काम लिया जाता है। सम्पूर्ण जातियों से उनकी संख्या और विचारों पर ध्यान न देकर समान रूप से व्यवहार किया जाता है।

(७) प्रजातान्त्रिक राज्य की बड़ी विशेषता यह है कि इसमें सर्व-साधारण और विशेषतया दीनों और दलितों की दशा सुधारने और उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य, जीविका का प्रबन्ध करने में पूरा २ प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार जनता के हित की दृष्टि से प्रजातान्त्रिक राज्य अन्य सभी राज्यों से श्रेष्ठ है।

३. प्रजातान्त्रिक राज्य में त्रुटियाँ (१) नीतिज्ञ लेकी (Lecky) लिखता है कि प्रजातान्त्रिक राज्य न तो अच्छे शासन और न ही

स्वतन्त्रता का विश्वास दिलाता है। प्रजातन्त्र का अर्थ यह है कि देश का शासन देश के ऐसे व्यक्तियों के हाथ में हो, जो प्रायः अधिक से अधिक निर्धन, अज्ञानी और अयोग्य हैं। इस कारण ऐसा राजशासन अयोग्य होगा और साधारण जनता के हित के कार्यों को भली प्रकार न कर सकेगा, और न ही ऐसे राज्य में स्वतन्त्रता प्राप्त होगी।

(२)प्रजातान्त्रिक राज्य में संख्या (quantity) को सामर्थ्य वा योग्यता (quality) से अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है और इसमें यही माना गया है कि एक मनुष्य ऐसे अच्छा है जैसे कि दूसरा और लोकसेवा के कार्यों में किसी विशेष योग्यता की आवश्यकता नहीं। इस कारण प्रजातान्त्रिक शासन योग्य शासन नहीं हो सकता। इसमें हर समय कुरीतियों और त्रुटियों की सम्भावना हो सकती है।

(३) साधारण जनता अपने हित को भली प्रकार नहीं समझ सकती और न ही उनको देश की विभिन्न समस्याओं का पूरा ज्ञान होता है। इसलिए चतुर और पदाभिलाषी लोग अनुचित लाभ उठाते हैं। निर्वाचन के अवसर पर ये झूठी प्रतिज्ञाएं करते हैं और भोले-भाले मतदाताओं को ठग लेते हैं और अनुपयुक्त सिद्धान्तों पर दल बनाकर अपने आपको प्रतिनिधि निर्वाचित करा लेते हैं। निर्वाचन के अनन्तर धारासभा में प्रजा के हित को भूल कर अपने हित साधन की चिन्ता करते हैं। इस प्रकार प्रजातान्त्रिक राज्य में चतुर लोग राजनीति को अपना व्यवसाय बना लेते हैं और देश की सेवा के भाव से काम नहीं करते बल्कि अपनी रोटी कमाने के लिए अन्दर घुस जाते हैं।

(४) प्रजातान्त्रिक राज्यमें धनी लोगों का बड़ा प्रभाव रहता है। घूस अथवा दान द्वारा धनी लोग राजनैतिक नेताओं के मन को अपने अधीन कर लेते हैं और धारासभा में प्रजा के हित के विरुद्ध अपने

स्वार्थ के अनुकूल क़ानून बनवा लेते हैं और दरिद्रों को बड़ी चतुरता से लूटते हैं ।

(५) प्रजातान्त्रिक राज्य मे अपव्यय अधिक होता है। केवल अपने दल की पुष्टि के लिए प्रधानमन्त्री तथा उसके सहकारी आवश्यकता से अधिक लोगो को मन्त्रिमण्डल वा अधिकारी वर्ग मे घुसेड़ लेते हैं और इसके अतिरिक्त अधिकारियों के भत्तों और मार्ग व्यय पर बड़ा धन नष्ट किया जाता है।

(६) वर्तमान प्रजातान्त्रिक राज्यों मे दल बन्दी का रोग प्रबल होता जा रहा है। राज्य के अधिकारी तथा कर्मचारी सब इस रोग से मुक्त नहीं हैं। सरकारी अधिकारी अपने कर्तव्य से च्युत हो रहे हैं और शासन मे शिथिलता और घूस (corruption) प्रबल हो रही है। इसका परिणाम साधारण जनता के लिए बहुत हानिकारक सिद्ध हो रहा है।

(७) म्युनिसिपल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, धारा सभा आदि संस्थाओं के सदस्य देश हित की दृष्टि से काम नहीं करते बल्कि लोकप्रिय (popular) बनने की चेष्टा मे लगे हुए हैं। इस कारण कई अवसरों पर अपने साथियों को प्रसन्न करने के लिए अपने पद का दुरुपयोग करते हैं। इस प्रकार आगामी निर्वाचन में अपने लिए वोट प्राप्त करने का क्षेत्र तैयार करते रहते हैं।

४. प्रजा-तान्त्रिक सरकार की सफलता की सम्भावना—कुछ समय से लोगों के विचार और मनोवृत्ति प्रजातान्त्रिक राज्य के विरुद्ध जा रही है और यह अच्छी शासन प्रणाली नहीं समझी जाती। कहा जाता है कि देश से कुरीतियों को हटाने में यह राज्य असफल रहा है। इस असन्तोष (dissatisfaction) का कारण धारा सभा आदि संस्थाओं के सदस्यों के उत्तरदायित्व रहित कार्य कलाप हैं और सरकारी कर्मचारियों तथा अधिकारियों के कर्तव्य पालन से असावधानता है। राज्य के इस रोग का इलाज शिक्षा का प्रचार है। ज्यों २

जनता में नागरिक शिक्षा का प्रचार बढ़ेगा, साधारण जनता को अपने अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान होगा और वे अपने वोट का सदुपयोग करेंगे, वे सभी त्रुटियां स्वयमेव दूर हो जायेंगी। सभी प्रकार की शासन-प्रणालियों में त्रुटियां हैं और प्रजा तन्त्रवाद में भी त्रुटियां हैं परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से शासन प्रणालियों की परस्पर तुलना की जाए तो ज्ञात होगा कि देश में शान्ति स्थापित करने, देश को बाहरी शत्रुओं से बचाने, मनुष्य मात्र से न्याय करने और साधारण जनता से समानता का व्यवहार करने में प्रजातन्त्र शासन को अन्य प्रकार के शासनों से अवश्य श्रेष्ठ अनुभव करेंगे। डाक्टर बेणीप्रसाद का कथन है कि प्रजातन्त्र राज्य उस अवस्था में सफल हो सकता है, जब कि जन-साधारण अपने अधिकारों का सदुपयोग करने की इच्छा रखते हों, पारस्परिक भेद-भाव को मिटा सकते हों, साधारण जनता के हित के कार्यों में सहयोग दे सकते हों और इस प्रकार की योग्यता रखते हों कि योग्य, निःस्वार्थी और सेवापरायण प्रतिनिधि चुन सकें।" स्पष्ट है कि इस शासन की सफलता नागरिक शिक्षा की वृद्धि पर निर्भर है।

५. कैबिनेट या पार्लियामेण्टरी सरकार की समालोचना

१. कैबिनेट सरकार की परिभाषा—किसी राज्य (State) की कैबिनेट सरकार उस शासन को कहते हैं जो वहां की धारासभा (Parliament) की कार्य्यकारिणी समिति (Cabinet) द्वारा चलाया जाए। ब्रिटेन (Britain) में कानून वहां की पार्लियामेंट बनाती है, और राज शासन पार्लियामेंट या लोकसभा (House of-Commons) की कार्यकारिणी समिति (Cabinet) चलाती है। ऐसी सरकार में कार्यकारिणी समिति वास्तव में पार्लियामेंट का अंग होती है और अपनी नीति (policy) और कार्मों के लिए पार्लियामेंट को उत्तरदायी होती है। यदि पार्लियामेंट को अपनी कार्य-कारिणी समिति में विश्वास न रहे और वह अविश्वास का प्रस्ताव

पास करदे तो कार्य्यकारिणी समिति को अपने पद से त्याग पत्र देना पड़ता है। इस कारण ब्रिटेन की सरकार को कैबिनेट वा पार्लियामेंट्री वा उत्तरदायी (Responsible) सरकार कहते हैं। कैबिनेट सरकार का मूल सिद्धान्त यह है कि राज्य का सर्वोच्चसत्ताधारी (sovereign), चाहे राजा (king) हो व राष्ट्रपति (president) वास्तव में अधिकार से शून्य (figure head) होता है और राज्य के सारे अधिकार कार्य्यकारिणी समिति वा मंत्रिमण्डल के हाथों में होते हैं, और यही राज्य का कर्ता-धर्ता होता है। मन्त्रिमण्डल का निर्माण लोक सभा (House of Commons) के प्रथम अधिवेशन में बहुमत दल (majority party) के सदस्यों से किया जाता है। बहुमत दल का नेता प्रधान मन्त्री बनाया जाता है और वह अपनी इच्छा से दूसरे मन्त्रियों की नियुक्ति व चुनाव करता है। कभी २ दूसरे दलों का सहयोग प्राप्त करने के लिए उन में से भी एक दो मन्त्री लिए जाते हैं। राज्यशासन का कार्य्य इन मन्त्रियों में बांटा जाता है। हर एक मन्त्री सरकार के एक वा एक से अधिक विभागों का इंचार्ज होता है और वह सरकारी अधिकारियों और कर्मचारियों के कार्य्य की देख-रेख करता रहता है। इस प्रकार केबिनेट में शासन अंग (ExecutiveSection और विधान अंग (LegislativeSection) बड़ी सीमा तक मिले जुले होते हैं, केबिनेट न केवल राजशासन चलाती है बल्कि विधान निर्माण में भी भाग लेती है।

२. कैबिनेट सरकार के गुण और हानियां—प्रजातन्त्रात्मक सरकारों में सब से अधिक सफल सरकार कैबिनेट सरकार है। इसके कारण निम्न लिखित हैं—

(१) कार्य्यकारिणी समिति (Cabinet) के सदस्य धारा सभा के भी सदस्य होते हैं और धारा सभा के आगे उत्तरदायी भी होते हैं, इस लिए इनके कार्य्यों पर नियन्त्रण होता है और वे मनमानी करने से घबराते हैं।

(२) पार्लियामेंट के सब से अधिक बलवान् दल का नेता ही प्रधानमन्त्री होता है और इसको जनता के सबसे अधिक वोट प्राप्त होते हैं, इसलिए ऐसी सरकार स्थायी होती है।

(३) सारे मन्त्री मिलकर (jointly) काम करते हैं, क्योंकि एक की जिम्मेदारी सब मन्त्रियों की जिम्मेदारी होती है और एक मंत्री के त्याग पत्र देने पर सारे मन्त्रियों को पद त्याग करना पड़ता है, यदि धारा सभा में अविश्वास का प्रस्ताव पास हो जाए।

(४) मंत्रियों के पदों की अवधि नियत नहीं होती, इस लिए वे जनता को प्रसन्न रखने के लिये जनता की भलाई के कार्यों को उत्साह से करते हैं। जनता को अप्रसन्न करने पर उनको त्याग पत्र देना पड़ता है।

(५) सरकारी अधिकारी और कर्मचारी स्थाई होते हैं और मन्त्रि-मण्डल में परिवर्तन का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता इसलिए राज शासन के कार्य नियम पूर्वक होते रहते हैं और उनमें किसी विशेष प्रकार का विघ्न नहीं पड़ता।

इस प्रकार की सरकार मे कुछ हानियाँ भी हैं। एक हानि तो यह है कि मन्त्रियों की संख्या अधिक होती है और हर एक समस्या पर विचार करने के लिये उनको एकत्रित होना पड़ता है, इसलिए कई आवश्यक कार्यों के करने में विलम्ब हो जाता है। यदि एक ही व्यक्ति ऐसे कार्यों का निर्णय करने वाला हो तो इतनी देर न लगे। दूसरी हानि यह है कि देश की आन्तरिक और बाह्य नीति निर्धारित नहीं होती। धारा सभा में अविश्वास प्रस्ताव पास होने पर मंत्रिमंडल को त्याग-पत्र देना पड़ता है और यह आवश्यक नहीं कि नूतन मन्त्रि-मंडल पहले मन्त्रि-मण्डल की नीति से सहमत हो और उस पर आचरण करे। इसलिए पूर्व मन्त्रि-मण्डल द्वारा आरम्भ किए हुए कई कार्य खटाई में पड़ जाते हैं और इससे कभी २ देश को बहुत हानि उठाना पड़ती है।

६. प्रेजीडेन्शियल सरकार की समालोचना

१. प्रेजीडेन्शियल सरकार की परिभाषा—इस प्रकार की सरकार में राज्य का सर्वोच्चसत्ताधारी प्रधान (President) होता है, जिस को सारे देश की जनता एक निश्चित अवधि के लिए चुनती है। देश के राजशासन का वास्तविक अधिकार प्रधान के हाथ में होता है और वह उनका प्रयोग बिना किसी के परामर्श के कर सकता है। अपनी सहायता के लिए वह एक कार्य्यकारिणी समिति बनाता है जिसके सदस्य वह स्वयं नियत करता है। इस समिति के सदस्य सर्वथा प्रधान के अधीन रहते हैं, उसकी आज्ञा का पालन करते हैं और उनका उत्तरदायित्व भी प्रधान के प्रति होता है।

प्रेजीडेन्शियल सरकार में धारा सभा, प्रधान और उसकी कार्य्यकारिणी समिति एक दूसरे से सर्वथा पृथक् होते हैं। अर्थात् प्रधान और उसकी कार्य्यकारिणी समिति के सदस्य धारा सभा के सदस्य नहीं होते। वे धारा सभा के अधिवेशनों में भाग नहीं ले सकते और न ही वे धारा सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं और धारा सभा के अविश्वास प्रस्ताव का भी प्रधान की अवधि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यदि धारा सभा के विचार से प्रधान ने कोई अपराध वा विद्रोह किया है तो धारा सभा उस पर अभियोग चला सकती है। किसी और प्रकार से धारा सभा उसको पद से नहीं हटा सकती। इसके विपरीत प्रधान भी धारा सभा को भंग (dissolve) नहीं कर सकता। वास्तव में प्रेजीडेन्शियल सरकार अधिकार पृथक्करण (Separation of Powers) के सिद्धांत पर अवलम्बित है। इस प्रकार की सरकार संयुक्त राष्ट्र अमेरिका (U.S.A.) और मैक्सिको में काम कर रही है।

२. प्रेजीडेन्शियल सरकार के लाभ और हानियाँ—
इस प्रकार की सरकार में ये गुण हैं—

(१) प्रधान को सारे राज्य शासन पर पूर्ण अधिकार होता है और उसको किसी बड़ी सभा से परामर्श करने की आवश्यकता नहीं होती, इस कारण आवश्यक और विकट समस्याओं पर कार्यवाही तुरन्त की जाती है।

(२) प्रधान अपनी अवधि में जनता की इच्छा के बिना अपने पद से पृथक् नहीं हो सकता, इस लिए वह अपने कार्यकाल में देश के आन्तरिक अथवा बाह्य कार्यक्रम में एक नीति का प्रयोग कर सकता है।

इस प्रकार की सरकार में कई हानियाँ भी हैं। एक हानि तो यह है कि धारा सभा के बड़े दल का नेता और प्रधान पृथक २ होते हैं और प्रधान का धारा सभा से कोई सम्बन्ध नहीं होता इसलिए यदि इन व्यक्तियों में मत-भेद हो तो राजशासन में बाधाएँ डालने का भय रहता है और इससे देश को हानि पहुँचती है। दूसरी हानि यह है कि प्रधान के बदल जाने पर सरकार के कर्मचारी और अधिकारी भी बदल जाते हैं। नूतन प्रधान पुराने सरकारी अधिकारियों को हटा कर अपनी इच्छानुसार नए अधिकारी नियत करता है, इसलिए सरकार के अधिकारी अपने पद स्थाई न पाकर निश्चिन्त होकर अपने कर्तव्यों का पालन नहीं कर सकते।

७. तानाशाही सरकार का निरीक्षण

१. तानाशाही की परिभाषा—जब किसी राज्य की सर्वोच्चसत्ता (Sovereign Power) किसी एक व्यक्ति के हाथ में आजाए तो उस व्यक्ति को तानाशाह (Dictator) और उस की सरकार को तानाशाही सरकार (Dictatorship) कहते हैं। ई॰ १९१४—१८ के महायुद्ध के पश्चात यूरोप में इस प्रकार के कई राज्य स्थापित हो गए थे। टर्की, इटली, जर्मनी, रूस आदि राज्यों (States) में राजशासन का अधिकार किसी योग्य व्यक्ति या राजनैतिक दल के हाथ में आगया था। इस प्रकार तानाशाही (dictatorship) एक व्यक्ति या एक दल की सरकार का नाम है। ताना-

शाह अपनी सुविधा के लिये देश के प्रतिनिधियों (representatives) की एक कार्यकारिणी समिति (executive body) बना लेता है, परन्तु यह समिति तानाशाही की इच्छा के विरुद्ध अपने मुख से शब्द तक नहीं निकाल सकती। इस समिति के सदस्य सब कामों मे तानाशाह के सामने उत्तरदायी होते हैं। तानाशाह अपनी वीरता, शक्ति या प्रभाव के कारण देश में अराजकता के समय शक्ति प्राप्त कर लेता है और राज्य का शिरोमणि बन जाता है। एकतान्त्रिक राज्य (monarchy) और तानाशाही (dictatorship) में बड़ा अन्तर है। राजा का पद पैतृक (hereditary) होता है और पिता के पश्चात् पुत्र राजा बन जाता है, चाहे पुत्र कितना ही मूर्ख क्यों न हो परन्तु तानाशाह अपनी योग्यता के कारण देश का शासक बन जाता है। तानाशाही सरकार में भाषण, प्रकाशन और संघ निर्माण की पूरी स्वतन्त्रता नहीं होती। कोई मनुष्य सरकार के विरुद्ध स्पष्ट रूप से न कुछ कह सकता है और न कुछ कर सकता है। तानाशाह को पृष्ठ-पोषक दृढ संगठित तथा सशस्त्र पुलिस और सेना होती है। इसके साथ तानाशाह की इच्छा ही देश का शासन विधान होती है। राष्ट्रीयता (Nationalism) उसका धर्म होता है और अन्तर्राष्ट्रीय (International) बातों में अपने राज्य के लाभ के लिए झूठ, धोखा, छल, कपट आदि का प्रयोग उचित समझा जाता है। ऐसे राजशासन मे हर एक नागरिक का हित राज्य के हित के अधीन होता है और उसका सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक जीवन राज-शासन की शक्ति के नीचे दबा हुआ होता है।

९—जब राजशासन देश के नागरिकों के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के हर एक अंग पर पूरा पूरा नियन्त्रण रखता है तो उस राज्य को सर्वेसर्वाशाही (Totalitarian State) कहते हैं। जर्मनी, इटली और रूस सर्वेसर्वा राज्य कहलाने लगे, क्योंकि वहां सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक बातों में राज्य ही सर्वेसर्वा था।

ऐसे राज्य का प्रथम उद्देश्य राज्य की रक्षा, राज्य की सम्पन्नता तथा आत्मनिर्भरता (Prosperity and selfsufficiency) होता है और उद्देश्य की पूर्ति सामाजिक, आर्थिक और सैनिक योजनाओं के रूप में की जाती है। तानाशाही राज्य में वर्ग तारतम्य का लोप हो जाता है और केवल मात्र राज्य-भक्ति ही मानव धर्म समझा जाता है। हर एक तानाशाह अपने राज्य की सीमाओं को बढ़ाने का यत्न करता है और अन्य देशों को जीतकर अपने साम्राज्य (empire) को बढ़ाने की धुन में लगा रहता है। तानाशाही का मूलमन्त्र शांति (peace) नहीं प्रत्युत संघर्ष (struggle) होता है।

२. तानाशाही के गुण—तानाशाही राजशासन के निम्नलिखित लाभ बताए जाते हैं —

[१] यह पूर्णतया राष्ट्रीय एकता को बढ़ाता है।

[२] यह प्रत्येक कार्य को अति शीघ्र और भली भांति कर सकता है और हर एक कठिन समस्या का निर्णय शीघ्र करने में समर्थ होता है।

[३] यह युद्ध तथा अन्य देश सम्बन्धी कार्यों में अधिक सफलता से काम कर सकता है।

[४] पूंजीवाद की विकट समस्याओं को बड़ी योग्यता से सुलझा सकता है।

[५] यह प्रत्येक अवसर पर अपने नागरिकों में देशभक्ति, सहयोग, त्याग और आत्मोत्सर्ग के आदर्शों का प्रचार करता रहता है।

३. तानाशाही की त्रुटियां—तानाशाही में कई त्रुटियां भी हैं और उनमें से कुछ यह हैं—

[१] तानाशाही का आधार या भित्ति बल या शक्ति है और यह जनता की इच्छा का उल्लंघन करता है इसलिए इसमें प्रतिस्पर्धा, संघर्ष और युद्ध की संभावना अधिक होती है।

[२] यह सब राज्यों के शान्ति से जीवन व्यतीत करने के समान अधिकार को नहीं मानता। जर्मनी का तानाशाह हिटलर जर्मनी देश की महत्ता (superiority) का प्रचार करता था और उसका सिंहनाद था कि जर्मन देश ही केवल राजशासन का योग्य अधिकारी है।

[३] इस राज्य में अपने विचारों को प्रगट करने की स्वतन्त्रता नहीं होती।

[४] इसमें व्यक्तित्व को राज्य पर पूर्णतया निछावर किया गया है और व्यक्तिगत उन्नति और विकास का सर्वनाश कर दिया गया है।

[५] इस राज्य में मजदूरों के अधिकार को नहीं माना गया है, इस प्रकार राज्य वा जाति दरिद्र हो जाती है।

४. तानाशाही की प्रजातन्त्र से तुलना—बहुत से देशों में प्रजातान्त्रिक राजशासन का स्थान तानाशाही राज शासन (dictatorship) ले रहा है। प्रजातान्त्रिक राजशासन तानाशाही राजशासन से कई गुणा अच्छा है। तानाशाही के सामने प्रजातन्त्र की जो पराजय हम देख रहे हैं, वह पराजय वास्तव में साधारण जनता के प्रजातन्त्र की नहीं बल्कि पूंजीपतियों (capitalists) के प्रजातन्त्र की पराजय है। जिस देश में प्रजातांत्रिक राजशासन पर पूंजीपतियों का प्रभाव बढ़ जाता है और साधारण जनता के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक अधिकार कुचले जाते हैं, वहां देश में असन्तोष की लहर फैल जाती है और साधारण जनता शांति की इच्छुक हो जाती है और चाहती है कि कोई आकर उनको कष्टों और दुःखों से छुटकारा दिलाए। परन्तु परिणाम प्रायः विपरीत निकलता है। प्रजातन्त्र का मूल मन्त्र स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुता है परन्तु तानाशाह का आधार दासता (slavery) और पशु बल (physical force) हैं, प्रजातन्त्र शांति का प्रेमी और प्रचारक

है परन्तु तानाशाही राज्य युद्ध और संघर्ष पर फलता-फूलता है। तानाशाही किसी देश को बहुत गिरी हुई अवस्था में उपयोगी हो सकती है। परन्तु स्थाई रूप में तानाशाही राजशासन से प्रजातान्त्रिक राजशासन उत्तम है और इसको सफल बनाने के लिए साधारण जनता को नागरिक शिक्षा से भूषित करना प्रथम कर्तव्य हो जाता है।

Questions (प्रश्न)

1. Describe the old and new classification of Governments.

सरकारों के प्राचीन तथा वर्तमान प्रकार वर्णन करो ?

2. Distinguish between Federal and Unitary Govt which of these two forms of Government is more suited to India and why.

एक-आत्मक और संघ-आत्मक सरकारों में अन्तर करो, इन दोनों में से कौन सी सरकार भारतवर्ष के लिए उपयोगी है और क्यों ?

3. Describe democracy, its merits and demerits.

प्रजातान्त्रिक राज्य शासन को परिभाषा करो और उसके गुण और हानियां लिखो ?

4. Describe the cabinet or parliamentary form and presidential form of Government and comment upon the merits and demerits of each.

कैबिनेट या पार्लियामेंटरी सरकार और प्रेज़ीडेन्टल सरकार का वर्णन करो और हर एक के गुणों और हानियों की समीक्षा करो।

5. What are the chief features of Federal Govt ! State merits and defects of Federal Government

संघ-आत्मक सरकार का स्वरूप वर्णन करो। ऐसी सरकारों के गुण और अवगुण क्या हैं ?

ग्यारहवाँ अध्याय

राज्य का संविधान

(The Constitution of a State)

१. संविधान की आवश्यकता—राज्य एक संगठित संघ है और विशेष उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विशेष नियमों के अनुसार काम करता है। बिना नियमों वा नीति के इतना महत्त्वपूर्ण संघ चल ही नहीं सकता। बहुत से नीतिज्ञों, विशेष करके अमरीका निवासियों, का विचार है कि राज्य का संविधान लिखा हुआ हो ताकि शासकों तथा नागरिकों को अपने २ अधिकार और कर्त्तव्य ज्ञात हों। इसके अतिरिक्त ध्येय को स्पष्ट रूप से जानने के बिना कोई कार्य भली भांति सफल नहीं होता। अठारहवीं शताब्दि तक बहुत से राज्यों का संविधान स्पष्ट न था। सारे नीतिज्ञ इस बात पर सहमत हैं कि हर एक राज्य, चाहे वह प्रजातान्त्रिक हो वा निरंकुश, किसी न किसी संविधान पर आधारि होता है। यदि कोई राज्य है और उसमें राज्य शक्ति वा सर्वोच्च शक्ति (Sovereignty) भी है, तो आवश्यक है कि कुछ नियमों का ऐसा संग्रह भी हो, चाहे वह संग्रह लिखित हो वा अलिखित, जिनके अनुसार राज्य के भिन्न २ अंग और विभाग अपना २ काम कर सकें। यह सिद्ध हुआ कि प्रत्येक राज्य के लिए उसके संविधान (Constitution) का होना अति आवश्यक है।

२. संविधान की परिभाषा—प्रत्येक राज्य का शासन किसी विशेष ध्येय को सामने रख कर कुछ नियमों के अनुसार चलाया जा सकता है। इन नियमों के संग्रह को राज्य का संविधान (Constitution of the State) कहते हैं। संविधान की परिभाषा विभिन्न नीतिज्ञों ने भिन्न २ प्रकार से की है। नीतिज्ञ डिसे (Dicey ,

लिखता है कि राज्य संविधान उन शासन सम्बन्धी नियमों का नाम है, जो प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से राज्य की अधिकार शक्ति पर अपना प्रभाव डालते हैं। दूसरा नीतिज्ञ वूलसे (Woolsey) राज्य संविधान की परिभाषा इन सरल शब्दों में करता है— "किसी राज्य का संविधान उन नियमों का संग्रह हो जाता है, जो राज्य की शासन शक्ति (सरकार की शक्ति), नागरिकों और सरकार और नागरिकों के परस्पर सम्बन्धों की व्याख्या स्पष्ट शब्दों में करते हैं"। एक और नीतिज्ञ जेलीनेक (Jellinec) संविधान की व्याख्या का विस्तृत वर्णन इस प्रकार करता है। उसका कथन है कि "राज्य का संविधान उन नैतिक सिद्धान्तों (Judicial rules) का संग्रह होता है जो राज्य के मुख्य अंगों का वर्णन करता है, उनकी *उत्पत्ति और विकास पर* प्रकाश डालता है, उनके परस्पर सम्बन्ध को स्पष्ट करता है, उनके कार्य क्षेत्र को दर्शाता है और उनमें हर एक का राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में मौलिक स्थान नियत करता है।"

३. संविधान की विषय सूची—प्रत्येक विज्ञ (बुद्धिमान्) व्यक्ति की प्रबल अभिलाषा होती है कि राज्य की सरकार एक निश्चित सिद्धान्त के अनुसार हो, सरकारी अधिकारियों तथा कर्मचारियों के अधिकार और कर्त्तव्य सीमित हों और साधारण जनता के भी कुछ मौलिक अधिकार हों जिनमें सरकार किसी प्रकार का हस्तक्षेप न कर सके। निष्कर्ष यह है कि किसी देश के संविधान के निर्माण में निम्नलिखित बातें होनी चाहिए—

(१) सरकार के विभिन्न अंगों वा विभागों का स्वरूप और उत्पत्ति (निर्माण) का वर्णन हो।

(२) हर एक विभाग के अधिकार और कर्तव्य अलग-अलग दिये गए हों और उन के परस्पर सम्बन्ध पर भी प्रकाश डाला गया हो।

(३) जन साधारण का सरकार के कार्यों पर नियन्त्रण रखने की विधि और प्रणाली को पुष्टि प्राप्त हो।

(४) नागरिकों के साधारण और राजनैतिक अधिकारों की घोषणा (Declaration of Civil and Political Rights) की गई हो।

(५) यद्यपि उन सिद्धान्तों और घटनाओं की ओर भी संकेत किया गया हो, जिनके कारण संविधान की अन्य धाराओं तथा उप-धाराओं का निर्माण किया गया है, तो यह कार्य्य बड़ा लाभदायक सिद्ध होगा।

(६) समय के अनुसार संविधान में परिवर्तन करने का पर्याप्त अवकाश (अवसर) हो।

अच्छे संविधान के लक्षण—एक अच्छे संविधान में निम्नलिखित गुण पाये जाते हैं—

(१) एक अच्छा संविधान जनता के लिए स्वराज्य के अधिक से अधिक अधिकार स्वीकृत करता है।

(२) एक अच्छा संविधान देश को भूत कालीन संस्कृति, सभ्यता, प्रचलित प्रथाओं और देशवासियों के व्यवहार और स्वभाव को सामने रख कर निर्माण किया जाता है।

(३) एक अच्छे विधान के नियम थोड़े होते हैं परन्तु स्पष्ट शब्दों में दिये जाते हैं। उसमें सरकार की साधारण रूप-रेखा का वर्णन भी होता है।

यदि संविधान बहुत विस्तृत होगा तो उसमें परिवर्तन की सम्भावना अधिक रहेगी और ऐसा करने में अनेक प्रकार की कठिनाइयां उपस्थित होंगी।

(४) एक अच्छा संविधान रहस्यपूर्ण (पेचीदा) नहीं होता, बल्कि इसमें हर एक बात स्पष्ट होती है। इस का लाभ यह है कि

जनता अपने देश के संविधान को समझ सकती है और उस पर चलने का प्रयत्न करती है।

(५) अच्छे संविधान का क्षेत्र बहुत विस्तृत होता है और इसमें सरकार की शाखाओं और विभागों का वर्णन आ जाता है।

४. संविधान के प्रकार—नीचे हम संविधान के कुछ प्रकार वर्णन करते हैं—

(क) विकसित और निर्मित संविधान (Evolved and Enacted Constitution)—

कई देशों के संविधान इतने प्राचीन हैं कि इतिहास में उनके आरम्भ का समय निश्चित नहीं हो सकता। ऐसे संविधान किसी विशेष समय पर नहीं बने बल्कि कई एक शासन की रीतियां हैं जो परम्परा से चली आ रही हैं और उनमें संशोधन और परिवर्तन होता रहा है। कई शताब्दियों के अनन्तर इन प्रथाओं तथा परम्पराओं ने पूर्णतया संविधान का रूप ग्रहण कर लिया है। ऐसे संविधान को विकसित संविधान (Evolved Constitution) कहते हैं। विकसित संविधान का अच्छा उदाहरण इंगलैण्ड का संविधान है। इसके सब अंग लोक-सभा (House of Commons), सम्राट (Emperor), और अधीश-सभा (House of Lords) आज से कई सौ साल पहिले से स्थापित हुए थे और समय २ पर कई नूतन कानून सम्मिलित कर दिये गए। ऐसे संविधान में प्राचीन प्रथाओं तथा रीतियों का आभास बहुत मिलता है और ऐसे विधान का कुछ भाग लिखित और कुछ अलिखित होता है।

जब किसी देश के रहने वाले अपनी आवश्यकता के अनुसार किसी विशेष समय पर अपना संविधान स्थायी रूप में बना लेते हैं तो उस संविधान को निर्मित संविधान (Enacted Constitution) कहते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका (U.S.A.) का शासनविधान निर्मित संविधान का सुन्दर उदाहरण है। अब उत्तरी अमेरिका की कुछ

रियासतों (States) ने मिलकर इंगलैण्ड के अधिकार से स्वतंत्रता प्राप्त की तो ईस्वी सन् १७८३ में इन रियासतों ने मिलकर अपने देश के लिए एक विशाल शासन-विधान का निर्माण किया। भारत का संविधान भी निर्मित है, और उसमें प्रत्येक विषय की व्याख्या भली प्रकार की गई है।

विकसित शासन विधान की जड़ तो भूतकाल में होती है और उस में पुरानी रीतियों तथा प्रथाओं की झलक पाई जाती है परन्तु इसका पग सदा उन्नति के पथ पर होता है। जब प्रजा को किसी नवीन नियम की आवश्यकता हुई, तत्काल उसमें सुधार कर दिया। विकसित संविधान वाले राज्यों में क्रान्ति (revolution) की संभावना कम होती है। ऐसे संविधान में परिवर्तन समय के अनुकूल सरलता से किया जाता है। इसके प्रतिकूल निर्मित शासन विधान में सुगमता से तोड़-फोड़ नहीं हो सकती और समाज में स्थिरता उपस्थित रहती है। परन्तु इसमें यह दोष भी है कि जब सुगमता से परिवर्तन नहीं होता तो देश में क्रांति की सम्भावना अधिक होती है और सारे संविधान को तोड़कर नए संविधान बनाने की आवश्यकता पड़ जाती है। रूस का वर्तमान संविधान निर्मित है और देश में सन् १९१७ की क्रान्ति के पश्चात् इसका निर्माण किया गया था।

(ख) लिखित और अलिखित संविधान (Written and unwritten Costitutions)—

कई नीतिज्ञ संविधानों का विभाजन लिखित संविधान और अलिखित संविधान के रूप में करते हैं। लिखित संविधान वह संविधान होता है जिसमें राज शासन के मौलिक सिद्धांत, नियम और अधिकार एक ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित किए जाते हैं। ऐसे संविधान में राजशासन सम्बन्धी प्रायः हर एक बात लिखी हुई होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका (U.S.A) का संविधान लिखित संविधान का उदाहरण है। इस संविधान में सरकार के अंगों, उनके अधिकारों, नागरिकों के अधिकारों

आदि से संबंधित सारे नियम विस्तार पूर्वक दिए हुए हैं। इसके विपरीत अलिखित संविधान में राजशासन के मौलिक सिद्धान्त स्पष्ट रूप में लिखे हुए नहीं होते और ये बहुत कुछ देश की प्राचीन रीतियों और प्रथाओं पर अवलम्बित होते हैं। इंगलैंड का संविधान अलिखित संविधान का उदाहरण है, क्योंकि इंगलैंड में कोई ऐसा संविधान नहीं जिस में राजा के अधिकारों, कार्यकारिणी समिति (Cabinet) का निर्माण और वर्तव्यों या जनता के मौलिक अधिकारों का वर्णन हो। स्मरण रहे कि किसी देश का समग्र संविधान पूर्णतया लिखित नहीं हो सकता और न ही पूर्णतया अलिखित होता है। लिखित और अलिखित संविधानों में अन्तर केवल दरजे का होता है। इंगलैंड का संविधान अलिखित कहा जाता है परन्तु वहां भी मैग्नाकार्टा (Magna Carta), अधिकार पत्र (Bill of Rights) और १९११ का एक्ट आफ पार्लियामेंट आदि की आवश्यक बातें लिखित रूप में उपस्थित हैं। इसी प्रकार अमेरिका का संविधान यद्यपि लिखित माना जाता है तो भी प्रधान के चुनाव की विधि और सरकार के शासन विभाग और न्याय विभाग के परस्पर सम्बन्ध आदि बातें अलिखित हैं और देश की परम्परा के अनुसार हैं।

लिखित संविधान स्पष्ट और निश्चित होता है और जब किसी बात पर मत भेद हो जाए तो संविधान की उस विशेष धारा को पढ़ कर सन्देह की निवृत्ति हो सकती है। सरकार के हर एक अंग के विभागों के अधिकार और भिन्न २ विभागों के परस्पर सम्बन्ध विस्तार से वर्णन किये हुए होते हैं। इसलिए राजशासन अच्छे से अच्छा हो सकता है। जब ऐसे संविधान में परिवर्तन कम होता है, तो इस कारण समाज में स्थिरता अधिक होती है और प्रतिदिन साधारण घटना के लिए न तो परिवर्तन हो सकता है और न तुरन्त ही परिवर्तन की मांग का किसी को साहस होता है। अलिखित संविधान लचीला या स्थिति-स्थापक (flexbile) होता है और इसमें यथासमय परि-

वर्तन सरलता से हो सकता है। यही कारण है कि जिन देशों का शासन विधान अलिखित होता है वहां विशेष घटनाओं पर नियन्त्रण हो जाता है और क्रान्ति की सम्भावना बहुत कम होती है।

(ग) दृढ़ और लचीले संविधान (Rigid and Flexible Constitutions)—

संविधानों के प्रकार कभी कभी दृढ़ (rigid) और लचीले (Flexible) के रूप में भी गिनाए जाते हैं। दृढ़ संविधान वह होता है जिस में परिवर्तन सरलता से न हो सके और लचीला संविधान वह होता है जिसमें समयानुसार परिवर्तन में कठिनाई न हो। सरलता और कठिनाई अपेक्षाकृत (relative) शब्द हैं। संसार मे कोई कार्य्य सदा सरल और सदा कठिन नहीं होता। इसलिए संविधानों का यह बंटवारा वैज्ञानिक दृष्टि से ठीक नहीं। इस विभेद के मूल में जो विचार काम कर रहा है, वह यह है कि कुछ देशों में साधारण नियमों और वैधानिक नियमों मे अन्तर है। वहां संविधान और नियम के परिवर्तन का अधिकार धारा सभा के हाथ में नहीं होता है। ऐसे देश का संविधान दृढ़ (rigid) कहलाता है, क्योंकि इसमें परिवर्तन के लिए विशेष प्रयत्न करना पड़ता है। इसके विपरीत जिन देशों में साधारण नियम और वैधानिक नियम केवल धारासभा के हाथ मे होते हैं, वहां नियमों में परिवर्तन सरलता से हो सकता है और उन देशों के संविधान को लचीला (flexible) कहा जाता है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में साधारण नियम तो वहां की कांग्रेस (धारा सभा) बनाती है और वही इसमें परिवर्तन कर सकती है परन्तु शासन संविधान में परिवर्तन के लिए यह आवश्यक है कि परिवर्तन के प्रस्ताव को पहिले कांग्रेस की सिनेट और प्रतिनिधि सभा (Senate and House of Representatives) के दो तिहाई सदस्य पास करें और फिर उसको रियासतों की धारासभा तीन चौथाई सदस्यों की सहायता से पास करें। स्पष्ट है कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के संविधानमें परि-

वर्तन कठिन हो जाता है और ऐसा संविधान दृढ कहलाता है। ब्रिटेन (Britain) में साधारण कानून और संविधान एक ही दर्जा के हैं, दोनों को पार्लियामेंट एक ही रीति से बनाती और बिगाड़ती रहती है। अर्थात् इस संविधान में परिवर्तन करने में बहुत कठिनाई नहीं है और वहां का संविधान लचीला (flexible) कहलाता है।

दृढ संविधान का पहला गुण यह है कि यह स्थायी होता है और साधारण जनता इसको समझ सकती है। इस संविधान का दूसरा गुण यह है कि सरकारी कर्मचारी के अधिकार स्पष्ट रूप में दिए हुए होते हैं। यदि वे उनका दुरुपयोग करें तो दण्ड के भागी हो सकते हैं। तीसरा गुण इसका यह है कि इसके अधीन दलबन्दी कम होती है और देश का शासन भली भांति चलता रहता है। दृढ संविधान में कई हानियां भी हैं। कोई संविधान सदा के लिए सर्वाङ्ग सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता। उसकी दृढता के कारण जनता का उत्साह घट जाता है और क्रांति की सम्भावना हो सकती है।

लचीले संविधान का बड़ा गुण यह है कि जनता को यह विश्वास होता है कि वह जब चाहे संविधान में परिवर्तन करा सकती है। जनता की सरकार के साथ सहानुभूति रहती और देश में क्रांति का आरम्भ नहीं होता। ज्यों २ जनता में जागृति हो जाती है और उसके विचारों में परिवर्तन होता चला है, त्यों त्यों बिना किसी कठिनाई के वे अपने संविधान में इच्छानुसार परिवर्तन करा लेती है। इससे स्पष्ट है कि लचीला संविधान जनता के जोश और समय के उतार-चढ़ाव का मुकाबिला कर सकता है। लचीले संविधान में कई हानियां भी हैं। जो संविधान बार २ बदलता रहता है, वह संविधान सामयिक होता है और इससे देश को लाभ कम होता है। बार २ परिवर्तन करने के कारण देश में राजनैतिक दल बढ़ जाते हैं और देश की प्रगति रुक जाती है। लचीले संविधान में अधिकारियों के अधिकार बहुत विस्तृत होते हैं और वे लोगों की निजी स्वतन्त्रता को हानि पहुँचाते हैं। यह संविधान

केवल उन देशों में सफल हो सकता है, जहां की जनता सुशिक्षित और उत्तरदायी हो।

५. एक-आत्मक और संघ-आत्मक संविधान—

कुछ विद्वान् एकात्मक और सङ्घात्मक सरकारों को सामने रख कर संविधानों को इसी प्रकार दो भागों में बांटते हैं—

एकात्मक संविधान (Unitary Constitution)—एकात्मक संविधान में सारे देश का शासन एक केन्द्र से होता है। यद्यपि अपनी सुविधा के लिए केन्द्रीय सरकार प्रान्तों की सरकार को तथा अन्य स्थानीय संस्थाओं को थोड़े बहुत अधिकार दे रखती है और जब चाहे ये अधिकार वापिस भी ले सकती है। इङ्गलैंड का संविधान एकात्मक है, केन्द्र में एक केन्द्रीय सरकार, एक केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति (Cabinet), एक केन्द्रीय संसद (Parliament) और एक केन्द्रीय न्यायालय को अधिकार प्राप्त होते हैं और इन्हीं के आधीन शेष अधिकारी और कर्मचारी अपना २ काम करते हैं।

संघात्मक संविधान (Federal Constitution)—सघात्मक संविधान में केन्द्रीय सरकार अवश्य होती है, परन्तु प्रान्तों को, जो इस संघ में सम्मिलित हैं बहुत से अधिकार प्राप्त होते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहिए कि देश के राजशासन के अधिकार केन्द्र और प्रांतों में बांटे जाते हैं। जिन विषयों का सम्बन्ध सारे देश से होता है, वे केन्द्र के पास होते हैं। अर्थ, मुद्रा, नोट (Currency), बैंक, रक्षा, रेल, तार, डाक आदि केन्द्रीय सरकार के अधीन होते हैं। शिक्षा, रक्षा, कृषि, शिल्प, कला, व्यापार, मजदूरी, जनसेवा (Public Works) न्याय, पुलिस, स्थानीय सस्थायें (Local Bodies) आदि विषयों में प्रांतीय सरकार केन्द्र से स्वतन्त्र होती हैं और अपनी इच्छानुसार इनका प्रबन्ध करती हैं। कुछ ऐसे विषय भी होते हैं जिन पर केन्द्र और प्रांत दोनों का अधिकार होता है। प्रायः इन विषयों के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार और प्रांतीय सरकार में झगड़ा

हो जाता है। केवल इन विषयों में केन्द्रीय सरकार प्रांतीय सरकार के निर्णयों की उपेक्षा कर सकती है और ऐसे कानून पास कर सकती है कि एक या एक से अधिक प्रांतीय सरकारों के निर्णय को रद्द कर दे। सङ्घात्मक संविधान की सफलता के लिए यह अति आवश्यक है कि सङ्घात्मक-संविधान लिखित हो और इसमें केन्द्रीय और प्रांतीय सरकारों के अधिकार और कार्य क्षेत्र की व्याख्या भली प्रकार की गई हो, ताकि संशय और फूट की संभावना उत्पन्न न हो सके।

मीमांसा—एकात्मक संविधान में सारे अधिकार केन्द्रीय सरकार के हाथ में होते हैं। यद्यपि कुछ अधिकार प्रांतीय सरकारों के हाथ में भी होते हैं किंतु प्रांतीय सरकार के केन्द्रीय सरकार से अल्प महत्व-पूर्ण (Inferior) होने के कारण केन्द्रीय सरकार की आज्ञा और इच्छा का उल्लङ्घन नहीं कर सकती। एकात्मक सरकार में प्रबन्ध, संगठन और कानून की एकता होती है, शक्ति केन्द्रित होती है, और शासन का व्यय कम होता है। इसमें दोष यह है कि स्थानीय स्वराज्य भली प्रकार नहीं फलता और विशाल देश के लिए तो यह संविधान उपयोगी नहीं हो सकता, केन्द्रीय सरकार के पास कार्य बहुत होता है और वह इस को संभाल नहीं सकती।

सङ्घात्मक संविधान में राष्ट्रीय एकता (National Unity) के साथ २ प्रांतीय या स्थानीय स्वराज्य (Provincial Autonomy) का भी विकास होता रहता है। अपने २ क्षेत्र में केन्द्रीय और प्रांतीय सरकारें योग्यता से अपने २ कार्य कर सकती हैं और किसी का बोझ असह्य नहीं होता। भारतवर्ष विशाल देश है, इसमें भिन्न २ जातियां भिन्न प्रदेशों में निवास करती हैं, खान-पान और वेश-भूषण में भी महान् अन्तर है। ऐसे विशाल देश के लिए तो सङ्घात्मक संविधान बहुत उपयोगी है। इस संविधान में कई यदचनें हैं। यदि दो तीन प्रांत विरोध कर बैठें तो सारे सङ्घ राज्य को छिन्न-भिन्न कर डालें। प्रत्येक प्रांत में वहाँ की स्थानीय समस्याओं के अनुकूल भिन्न २ कानून पास

होते रहते हैं और सारे देश में एकता नहीं रहती। किसी प्रांत की शिक्षा प्रणाली एक प्रकार की है तो दूसरे प्रांत की अन्य प्रकार की। इस प्रकार सारे अंग परस्पर सहयोग नहीं कर सकते। इन त्रुटियों को दूर करने के लिए केन्द्रीय सरकार को परामर्श दातृ समिति (Advisory Committee) द्वारा सारे देश के कार्यों को एकस्तर (level) पर लाने का प्रयत्न करना उचित होगा।

६. भारत का संविधान (The Constitution of India)—भारत १५ अगस्त १९४७ को अंग्रेजों की अधीनता से स्वतन्त्र हुआ। २९ अगस्त १९४७ को संविधान निर्माण समिति स्थापित की गई। इस समिति ने संविधान की तय्यारी में दो साल ग्यारह महीने सत्रह दिन अर्थात् लग-भग तीन वर्ष लगाये। यह संविधान अपनी अन्तिम अवस्था में ३९५ धाराओं (articles) और ८ अनुसूचियों (schedules) पर सम्मिलित है। भारतसंविधान लिखित और निर्मित (written and enacted) है और जगत् भर के राज्यों के संविधानों से अधिक विस्तृत है। इस संविधान में सारे संविधानों के गुण और भारत की सभ्यता की झलक पाई जाती है।

एक केन्द्रीय (unitary) और संघात्मक (federal) सरकारों पर विचार किया गया है। इंगलिस्तान की सरकार एक केन्द्रीय और संयुक्त अमरीका की सरकार संघात्मक सरकार के अच्छे उदाहरण हैं। इंगलिस्तान के सारे राज्यशासन के अधिकार वहां की संसद और मन्त्रिमण्डल (Parliament and Cabinet of Ministers) के हाथ में है और वहां का राजा वहां की सरकार का वैधानिक शिरोमणि (Constitution of Head) होता है और वहां के राज्यशासन के सारे काम संसद और मन्त्रिमण्डल की सम्मति से होते रहते हैं। इसी प्रकार हमारे देश का राष्ट्रपति (President) भी वैधानिक प्रधान (Constitutional President') है और शासन के सभी काम

मन्त्रिमण्डल की सम्मति से हो रहे हैं और मन्त्रिमण्डल अपने कामों के लिए संसद् के आगे उत्तरदाई है। जहां तक केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों का परस्पर सम्बन्ध है, हमारा संविधान अमरीका के संघात्मक संविधान के समान है—अर्थात् प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय सरकार से सर्वथा स्वतन्त्र हैं। स्पष्ट है कि भारत का नवीन संविधान इंगलिस्तान के पार्लियामेंटरी और अमरीका के संघात्मक संविधानों का मेल है और दोनों के गुणों का संग्रह है।

Questions (प्रश्न)

1. What do you understand by the term constitution ? On what principles is the classification of modern constitutions based ?

संविधान शब्द की परिभाषा क्या है और आजकल के राज्यों के संविधान किन किन सिद्धान्तों पर आश्रित हैं ?

2. Point out the differance between a Written and an Unwritten constitution and mention the merits and demerits of each.

लिखित और अलिखित संविधानों का अन्तर करो और बताओ कि हर एक संविधान के गुण और अवगुण क्या हैं ?

3. Clearly distinguish between a Federal and a Unitary Constitution.

एकात्मक और संघात्मक संविधानों का भेद स्पष्ट रूप से वर्णन करो।

4. Distinguish between—

(a) Evolved and Enacted Constitution.

(b) Rigid and Flexible Constitution.

अन्तर वर्णन करो—

(क) विकसित और निर्मित संविधानों में,

(ख) दृढ़ और लचीले संविधानों में,

5. What kind of constitution is the Constitution of India ? Give some details of the constitution.

स्वतन्त्र भारत का संविधान किस प्रकार का संविधान है ? इस संविधान का कुछ विस्तृत वर्णन करो ।

बारहवां अध्याय

नागरिक जीवन की मौलिक भावनाएं और आदर्श

Fundamental Aspirations and Ideals of Civic Life

१. नागरिक जीवन की भावनाएं—यह विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है कि समाज, संघों और राज्य का निर्माण केवल मनुष्य जीवन की सफलता और उन्नति के लिए किया जाता है। सबसे अच्छा राजशासन वह गिना जाता है जो इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अच्छे साधनों का प्रबन्ध करता है। मनुष्य की सबसे प्रथम आवश्यकताएं और अभिलाषाएं स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुता हैं। परन्तु जन-साधारण इन शब्दों के महत्व से अपरिचित हैं और नागरिक जीवन को सफलता के लिए इनका महत्व समझना बहुत आवश्यक है।

(१) स्वतन्त्रता (Liberty)

१. हर एक मनुष्य का अधिकार है कि वह अपने कार्यों में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो, परन्तु साधारण व्यक्ति स्वतन्त्रता का अभिप्राय यह समझ बैठे हैं कि जैसा उनके मन में आवे वैसा करें और उनके कार्यों में किसी प्रकार की बाधा न डाली जाए। इस प्रकार की मन-मानी और वास्तविक स्वतन्त्रता में बड़ा भारी अन्तर है। उदाहरण रूप में एक कमरे में दो विद्यार्थी रहते हैं, एक विद्यार्थी तो पुस्तक उठाकर पढ़ने लग जाता है, क्योंकि कल उसने परीक्षा में बैठना है और दूसरा विद्यार्थी बाजा उठाकर गाने-बजाने लग जाता है। कहिये ये दोनों विद्यार्थी कैसे एक कमरे में रह सकेंगे और कहां तक एक दूसरे के मित्र और सहायक बन सकेंगे? एक और उदाहरण लीजिए और अनुमान कीजिए कि दो मकान एक दूसरे के साथ हैं। एक मकान में तो रेडियो चल रहा है और परिवार के लोग सुन्दर २ गीत सुन रहे हैं और साथ

ही अट्टहास भी कर रहे हैं। दूसरे मकान में रहने वाला परिवार पूर्णतया शोक में मग्न है और मृत्युशय्या पर पड़े हुए अपने प्रियजन के चारों ओर बैठा हुआ रो रहा है। स्पष्ट है कि दोनों परिवार अपनी २ स्वतन्त्रता का प्रयोग तो कर रहे हैं परन्तु एक दूसरे के जीवन को सुखी नहीं बना रहे। इन दोनों उदाहरणों से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि हम अपनी स्वतन्त्रता का प्रयोग ठीक रूप से केवल उस अवस्था में कर सकते हैं जबकि हम ऐसा करने से दूसरों के सुख और शान्ति में बाधा न डालें।

२. मनुष्य सामाजिक जीव है, इस कारण दूसरों के साथ मिल-जुल कर रहकर ही प्रसन्न और सुखी रह सकता है। यह प्रसन्नता केवल उस समय हो सकती है जब साथ रहने वालों के हृदयों में एक दूसरे के प्रति समान रूप से आदर (regard) हो और वे अपने कार्यों को इस प्रकार करें कि दूसरों के सुख तथा कार्य कलाप में बाधा न हो। ज्ञात हुआ कि स्वतन्त्रता का अर्थ समाज के भीतर ऐसी परिस्थिति बनाने का है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास भली भाँति कर सकें। ऐसी स्वतन्त्रता का प्रयोग करने के लिए समाज कुछ नियमों का निर्माण करता है जो व्यक्ति उन नियमों का पालन करते हैं, अच्छे नागरिक कहलाते हैं और वही स्वतन्त्रता का रहस्य समझते हैं। यह एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है कि स्वतन्त्रता पर नियन्त्रण आवश्यक है। इस कहावत का अभिप्राय यह है कि मनुष्य अकेला जंगल में तो रहता नहीं, वह तो समाज के अन्दर रहता है, इसलिए उसको समाज के अन्य सदस्यों के सुख और आराम का ध्यान रखना होगा और केवल स्वतन्त्रता के अधिकार का स्वार्थ के लिए प्रयोग करना निरर्थक होगा। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति आने जाने वाले लोगों की भीड़ से भरे हुए बाजार के ठीक मध्य में मोटर कार चलाने का हठ कर रहा है। निश्चय ही ऐसी अवस्था में कोई भी उसको अपने अधिकार के प्रयोग की आज्ञा न

देगा। इसका अपनी स्वतन्त्रता का यह अधिकार तो बाजार में यातायात को समाप्त कर देगा। इस प्रकार की स्वतन्त्रता तो केवल एक व्यक्ति की स्वतन्त्रता होगी और इसका परिणाम तो केवल जिसकी लाठी उसकी भैंस (Might is Right) की कहावत को चरितार्थ करना होगा और मनुष्य समाज जंगल में रहने वाले हिंसक पशुओं का समूह वा टोला बन जायगा। अतः यह सिद्ध है कि स्वतन्त्रता के अधिकार के सच्चे प्रयोग के लिए कुछ नियन्त्रण आवश्यक है।

३. ई० १७८९ में फ्रांस की क्रान्ति के अवसर पर अधिकारों की घोषणा में स्वतन्त्रता की परिभाषा इन सुन्दर शब्दों में की गई थी "स्वतन्त्रता प्रत्येक ऐसे काम करने का अधिकार है जिसके करने से दूसरों को हानि नहीं पहुँचती"। इस सुनहरी सिद्धांत को सामने रखकर हम कह सकते हैं कि हर एक मनुष्य की स्वतन्त्रता पर कुछ न कुछ नियन्त्रण है और यह नियन्त्रण केवल सारे समाज की भलाई के लिए है। इस नियन्त्रण के बिना न तो व्यक्ति स्वयं सुखी रह सकता है और न दूसरों को सुखी रहने देता है। सुखी जीवन का सुनहरी नियम है कि "तुम औरों से ऐसा व्यवहार करो जैसे व्यवहार की तुम औरों से आशा रखते हो।" इस कारण अपनी दैनिकचर्या में हम को दूसरों के सुख का ध्यान रखना होगा और किसी प्रकार की मनमानी न करनी होगी। ऐसा कार्य ही वास्तविक स्वतन्त्रता है।

४. स्वतन्त्रता और कानून—स्वतन्त्रता का साधारण लोग यह अर्थ समझ बैठे हैं कि जो काम वे करें उसके करने पर किसी प्रकार का नियंत्रण न हो। परन्तु राज्य और उसके कानून (State and its-laws) नागरिकों के कामों पर कुछ न कुछ नियंत्रण (restraint) लगाते हैं। इस कारण कभी २ यह युक्ति उपस्थित की जाती है कि स्वतंत्रता (liberty) और राजनैतिक अधिकार (political authority) एक दूसरे के प्रतिकूल हैं। कानून जो राज्य बनाते हैं वे नागरिकों को कुछ कार्यों के करने से रोकते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिए

कि कानून व्यक्तियों की स्वतंत्रता में बाधा डालते हैं और उसे कम करते हैं। परन्तु यह विचार ठीक नहीं है। स्वतंत्रता का अभिप्राय यह नहीं है कि मनुष्य के कार्यों पर किसी प्रकार का नियंत्रण न हो। स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं है कि जो किसी के मन में आवे वैसा ही करता रहे। इस प्रकार की मनमानी करने की आज्ञा दी जाए तो बलवान निर्बलों पर अत्याचार करेंगे, जनसाधारण के जीवन और धन की रक्षा न हो सकेगी, और संसार में सबसे अधिक स्वतंत्र केवल सबसे अधिक बलवान और धनवान ही होगा। इस प्रकार दीन और निर्धन तो कभी किसी रूप में स्वतंत्रता का उपभोग न कर सकेंगे। वास्तव में पूर्ण स्वतंत्रता तो सबके लिए असम्भव है। यदि इस प्रकार की स्वतंत्रता हो तो हत्यारे और चोर को दण्ड नहीं दिया जा सकेगा।

२. जनसाधारण समान अधिकारों का उपभोग कर सके, इस प्रयोजन के लिए किसी न किसी वैधानिक शक्ति का होना परम आवश्यक है, जो बलवानों पर ऐसा नियंत्रण रखे कि वे निर्बलों तथा निर्धनों को न दबा सकें और न समाप्त कर सकें। ऐसी शक्ति केवल राज्य शक्ति (State Authority) ही हो सकती है। राज्यशक्ति का कर्तव्य है कि वह इस बात का निरीक्षण करे कि राज्य के अंदर रहने वाले सभी नर नारी अपनी स्वतंत्रता का उपयोग इस प्रकार करते हैं जिससे दूसरों की स्वतंत्रता में किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित नहीं होता। इससे यह स्पष्ट है कि राज्य ही हर एक नागरिक को अपनी स्वतंत्रता भोगने के लिए सुविधाएं प्रदान करता है, राज्य के प्रबन्ध से ही हरएक नागरिक को स्वतंत्रता का वास्तविक लाभ प्राप्त हो सकता है। राज्य की सत्ता के बिना स्वतंत्रता का अस्तित्व भी असम्भव हो जाता है। जब देश में अशांति और अराजकता हो तो स्वतंत्रता के विषय में वार्तालाप करना भी निरर्थक हो जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि स्वतंत्रता के उपभोग के लिए राज्य शक्ति का अस्तित्व अनिवार्य है।

६. राज्य संविधान का निर्माण करके सब नागरिकों को अपनी स्वतंत्रता के उपभोग का अवसर प्रदान करता है। कुछ नियमों (laws) द्वारा ही स्वतंत्रता के क्षेत्र का निर्णय किया जाता है और इस मर्यादा के भीतर रह कर प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्वतंत्रता के प्रयोग करने का अवसर मिल जाता है। जो व्यक्ति अज्ञानता के कारण दूसरों की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करते हैं उन को राज्य ऐसा करने से रोकता है। यदि कोई नहीं रुकता तो राजशासन उसको उसके अपराध के लिए न्याय विभाग द्वारा दण्ड दिलवाता है। इसलिए यह कहना अनुचित न होगा कि स्वतन्त्रता राज्य के विधान पर अवलम्बित है और संविधान ही स्वतंत्रता की रक्षा करता है।

(२) समानता (Equality)

१. समानता का राजनैतिक अर्थ—कुछ नीतिज्ञ मनुष्य की प्राकृतिक समानता पर बल देते हैं, और कहते हैं कि प्रकृति ने सब मनुष्यों के हाथ, पांव, आंख आदि अंग समान बनाए हैं और खाना पीना, सोना, जागना, आदि क्रियाएं भी सब मनुष्यों की समान हैं। इस कारण सब मनुष्यों की आवश्यकताएं एक जैसी हैं और सब मनुष्यों के साथ समानता का बर्ताव किया जाए। कुछ नीतिज्ञ कहते हैं कि प्रकृति ने सब मनुष्यों को बराबर नहीं बनाया। कोई बलवान है तो कोई निर्बल, कोई बुद्धिमान् है तो कोई मूर्ख, कोई सुन्दर है तो कोई कुरूप, कोई जन्म से ही आनन्द और सुख का जीवन व्यतीत कर रहा है तो कोई सारी आयु कष्टों का शिकार बना हुआ है। इसलिए मनुष्यों को समानता का सिद्धांत ठीक नहीं है। दोनों वर्गों के विचारों को सामने रखकर नागरिकों की समानता का अभिप्राय यह है कि—राजशासन सब नागरिकों को समान समझे, राज्य में किसी विशेष व्यक्ति को किसी प्रकार के विशेष अधिकार न हों, जीवन विकास के लिए सब नागरिकों को समान रूप में आवश्यक अवसर प्राप्त हों। यदि

कोई इन्जीनियर बनना चाहे तो उसे ऐसा बनने का अवसर दिया जाए, और यदि कोई डाक्टर बनना चाहे तो मेडिकल कालेज में प्रवेश के लिए उसको किसी प्रकार की रुकावट न हो। राज्य कोई ऐसा विधान न बनाए जिसमें एक ही अपराध के लिए धनी और निर्धन के दण्ड में किसी प्रकार का अन्तर हो, देश, जाति और वर्ण आदि के कारण किसी से पक्षपात न किया जाए, सब धार्मिक सम्प्रदायों के अनुयायियों को एक ही दृष्टि से देखा जाए और वैधानिक रूप में यह घोषणा की जाए कि देश के विधान के सामने सारे नागरिक समान और बराबर हैं और प्रत्येक नर नारी के जीवन विकास के लिए अवसर और सुविधाओं की समानता ही सच्ची समानता है।

२. समानता के प्रकार—मनुष्य जीवन के कई अंग (aspects) हैं और उनके विचार से समानता के कई प्रकार हैं जिनको संक्षिप्त वर्णन नीचे किया जाता है—

(१) सामाजिक समानता—सब मनुष्य मनुष्य हैं, इस लिए समाज के अन्दर धर्म, जाति, धन, व्यवसाय, वृत्ति आदि के कारण किसी प्रकार की असमानता नहीं होनी चाहिए। स्त्री, पुरुष, ब्राह्मण अछूत आदि सब के लिए आत्म उन्नति के अधिकार समाज के अन्दर समान हों।

(२) राजनैतिक समानता—वोट का अधिकार या राजशासन में किसी पद ग्रहण का सबको समान अधिकार होना चाहिए। अधिकार की अनिवार्य शर्त योग्यता है। एक अशिक्षित ब्राह्मण या क्षत्रिय राजनैतिक समानता के नाम पर जिले का कलक्टर नहीं बन सकता। इसके विपरीत एक शिक्षित अछूत या निर्धन मनुष्य को उसके वंश व जाति के कारण शासन पद से वञ्चित करना अन्याय होगा।

(३) सांस्कृतिक और साम्प्रदायिक समानता—सब धर्म संप्रदाय राज्य की दृष्टि में समान हों और सबके साथ एक जैसा बर्ताव करना उचित है। शिक्षा का सब को अधिकार हो और प्रत्येक पाठ-

शाला में पढ़ने का अधिकारी है, इसके मार्ग में वंश, धर्म या निर्धनता के कारण बाधा डालना असमानता होगी।

(४) आर्थिक समानता—आर्थिक आवश्यकताएं प्रायः सब मनुष्यों की एक जैसी हैं, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को धन कमाने और अपनी शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करने का समान अवसर दिया जाए। साधारण रूप में आर्थिक समानता का अर्थ यह है कि (१) हर एक प्राणी की एक निश्चित सीमा से कम आय न हो, ताकि आर्थिक कठिनता के कारण उसका जीवन दुःखी न हो। (२) एक कला कुशल या शिल्पी को एक निश्चित सीमा से अधिक वेतन न दिया जाए ताकि वह धन की अधिकता के कारण व्यसनों में न पड़ जाये या समाज के निर्धन और दीन व्यक्तियों से दुर्व्यवहार न कर सकें। (३) हर एक परिवार के बालकों को शिक्षा और कला सीखने के लिए समान सुविधाएं दी जाएं ताकि वे समाज के योग्य सदस्य बन सकें। (४) प्रत्येक व्यक्ति के दैनिक कार्य इस प्रकार नियत हों कि उसको अपनी अवस्था के सुधार और आत्मिक उन्नति का अवसर मिल सके।

(५) वैधानिक समानता—राज्य के विधान (कानून) की दृष्टि में सब नागरिक समान हों, न्यायालयों में सब के साथ न्याय एक सा हो, एक प्रकार के अपराध के लिये धनी, निर्धन, अधिकारी (अफ़सर) और चपड़ासी के दण्ड में किसी प्रकार का भेद न किया जाए। धन और जीवन की रक्षा के सम्बन्ध में सब पुरुषों का अधिकार समान और राजशासन सबकी रक्षा एक जैसी करे।

(३) बन्धुता (Fraternity)

स्वतन्त्रता और समानता दोनों अपने २ स्थान पर महत्वपूर्ण हैं परन्तु इसकी महत्ता का अनुभव केवल तब होगा जबकि राज्य के नागरिकों के मन में एक दूसरे के लिए अगाध प्रेम हो। अरस्तू का कथन है कि सच्ची समानता बन्धुता के अन्दर छुपी हुई है। परन्तु सच तो यह है कि स्वतंत्रता और समानता दोनों का यथार्थ अनुभव बिना

प्रेम और बन्धुता के हो ही नहीं सकता। प्रेम ही तो जीवन रस है। यदि पति-पत्नी में प्रेम न हो तो परिवार सुखी नहीं रह सकता, यदि पड़ोसियों में एक दूसरे के लिए सम्मान न हो तो मुहल्ले और ग्राम का जीवन आनन्दमय नहीं हो सकता। इसी प्रकार नगर और प्रांत तथा देश का जीवन सुखी और सफल नहीं हो सकता, यदि देश में रहने वाले सभी नागरिकों में अपने देश में रहने वाले सभी प्राणियों के लिए अगाध प्रेम न हो।

स्वतंत्रता, समानता, और बन्धुता की त्रिमूर्ति नागरिक जीवन का आदर्श है। जिस देश के नागरिकों को व्यक्तिगत, सामाजिक तथा राजनैतिक अधिकारों के प्रयोग मे स्वतंत्रता नहीं, जिसके अन्दर धनी-निर्धन, ऊंच-नीच, छूत-अछूत की असमानता का विष विद्यमान है और जिस देश के रहने वालों का परस्पर प्रेम नहीं, व उनके मन में अपने देश व राष्ट्र के लिए प्रेम नहीं वह देश नरक समान है और उसका नाश अनिवार्य है। इसलिए अच्छा राजशासन स्वतंत्रता, समानता और बन्धुता की त्रिमूर्ति का उपासक होता है। इस उपासना का परिणाम न केवल व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को ही उन्नत करता है बल्कि राजनैतिक जीवन को भी सफल बनाता है।

२. नागरिक जीवन के आदर्श

१—नागरिक आदर्श का अर्थ और महत्त्व—एक अंग्रेजी कवि ने लिखा है कि महापुरुषों की जीवनियां हमें जताती हैं कि हम अपनी जीवनियों को ऊंचा और सुन्दर बना सकते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि हर एक मनुष्य किसी ध्येय को सामने रख कर काम करता है, अपने ध्येय तक पहुँचने का प्रयत्न करता है और इस प्रकार अपने जीवन को सफल बनाता है। यही अवस्था देश और राष्ट्रों की है। प्रत्येक राष्ट्र तथा राज्य अपने सामने कुछ लक्ष्य, ध्येय अथवा आदर्श रख कर काम करता है और नागरिक जीवन को सफल और सुखी बनाता है। प्राचीन भारतवर्ष, रोम और यूनान ने विशेष विधियों

को सामने रख कर काम किया और विशेष प्रकार की सभ्यताओं का विकास किया। वर्तमान कालीन राज्यों और राष्ट्रों का भी कर्तव्य है कि वे अपने नागरिकों के सामने निश्चित आदर्श रखें और अपने कार्य्य-क्रम का उसके अनुसार निर्णय करें। जाति व राष्ट्र अपने उच्च आदर्श को राष्ट्रीय शिक्षा (National Education) के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा को इस विधि से चलाया जाए जिस से नागरिकों के विचार और आचार मानव जीवन के सच्चे आदर्श के अनुसार ढल जाएं।

२—मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज के अन्दर रह-कर वह सुखी रह सकता है, इस कारण सच्चा नागरिक आदर्श वह होगा जो व्यक्ति को समाज के भीतर रहकर उच्च और सुन्दर जीवन की ओर प्रेरित करेगा। स्वतंत्रता, समानता, बन्धुता, नागरिक जीवन की आधारभूत भावनाएं हैं और इन भावनाओं पर मनुष्य उच्चलता कूदता और काम करता है। इसलिए नागरिक जीवन का अच्छा आदर्श इन भावनाओं को सामने रखकर मनुष्य के व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक जीवन को सफल बनाने का मार्ग दर्शायेगा। इतिहास से पता चलता है कि भिन्न २ जातियों और देशों में नागरिक जीवन के आदर्श भिन्न २ थे। स्पार्टा वाले नागरिकों को शूरवीर बनने, कष्टों तथा दुःखों से न घबराने, योग्य सैनिक बनने और स्वास्थ्य बनाए रखने पर बल देते थे। रोम तथा एथेन्स वालों के समीप नागरिक जीवन का आदर्श स्वस्थ शरीर, स्वस्थ मन और सुन्दर विचार थे। प्राचीन भारतवर्ष में नागरिक जीवन का आदर्श स्वयं जीवित रहो और दूसरों को जीवित रहने दो (Live and let live others) के सिद्धांत पर आधारित था, समाज को चार वर्णों में विभक्त किया हुआ था और हर एक व्यक्ति का यह मुख्य धर्म था कि वह अपने वर्ण सम्बन्धी कर्तव्यों का पालन भली भांति करे। यह वर्ण व्यवस्था आरंभ में केवल गुण कर्म स्वभाव के अनुसार की गई थी किन्तु पैतृक

(hereditary) हो जाने के कारण यह प्रथा कुछ काल के अनन्तर जातीय संगठन के मार्ग में बाधा बन गई।

३—प्राचीन काल और वर्तमान काल में दिन-रात का अन्तर है। प्राचीन काल मे जन सख्या थोडी थी, यातायात के साधन कम थे और जीवन भी अधिक संघर्षमय न था। वर्तमान काल तो वैज्ञानिक युग है, यातायात के साधनों में बडी उन्नति हो गई है और वायुयान, रेल तथा जलयान आदि साधनों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना सुगम हो गया है। यन्त्रों के आविष्कार के कारण जीविका के साधन बदल गए हैं, जन संख्या भी बढ गई है, गांवों के लोग भी नगरों की ओर आकृष्ट हो रहे हैं, इस कारण सामाजिक और नागरिक जीवन बड़ा जटिल (पेचीदा) हो गया है। आधुनिक आवश्यकताओं के अनुसार नागरिक जीवन के आदर्श के भी कई अंग है, जिनकी व्याख्या नीचे की जाती है—

(१) स्वास्थ्य—नागरिकों को चाहिए कि वे स्वस्थ, कर्मण्य और चतुर रहने को कला सीखें। मनुष्य की सारी क्रियाएं इसके स्वस्थ शरीर पर निर्भर हैं। शरीर के स्वस्थ होने के बिना काम करने की शक्ति के नागरिक अधिकारों और कर्तव्यों का पूरा करना असम्भव हो जायगा। नागरिक जीवन के इस आदर्श की प्राप्ति के लिए आवश्यक होगा कि स्कूलों और कालजों में शारीरिक शिक्षा (Physical Education) को अनिवार्य बनाया जाए, शिक्षा केन्द्रों में मध्याह्न आहार (Mid-day meals) का प्रबन्ध किया जाए और बालकों को शुद्ध दूध पिलाया जाए।

(२) भ्रातृ-भाव—एक दूसरे से मित्रता और प्रेम केवल समानता की भावना से दृढ़ हो सकता है। सब मनुष्य एक ही परमात्मा की सन्तान हैं और आपस में भाई २ हैं, इस वास्ते राज्य के सभी नागरिकों में भ्रातृ-भाव (Brotherhood of man) का संचार किया जाए, उनके हृदयों को सहानुभूति और सहयोग की भावनाओं से पूर्ण किया जाए और

उनको परस्पर प्रेम और एकता के साथ रहने के पाठ पढ़ाए जाएं।

(३) राज-भक्ति—बिना भूमि के राज्य का अस्तित्व नहीं, इस कारण प्रत्येक राज्य निवासी का परम कर्तव्य हो जाता है, कि वह अपनी जन्मभूमि को अपनी माता के समान समझे और उसके गौरव की रक्षा के लिये अपने प्राणों तक को देने के लिये तय्यार रहे। परन्तु राज भक्ति को धर्म और सत्य से पृथक् न किया जाए,साथ ही राज भक्ति की प्राप्ति के साधन भी परम पवित्र हों। अर्थात् अपने देश तथा राष्ट्र के गौरव और मान को बढ़ाने के लिए दूसरी जातियों तथा देशों पर आक्रमण तथा अत्याचार न किए जाएं और न किसी अन्याययुक्त (unjust) युद्ध में भाग लिया जाए, बल्कि सारे विश्व में शान्ति के सिपाही (soldiers of peace) बन कर काम करना चाहिए। स्वतन्त्र भारत के सर्व प्रथम प्रधान मन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरू ने संयुक्त राष्ट्र व्यवस्थापिका परिषद् (U.N.O.) के पेरिस अधिवेशन में विश्व के राष्ट्रों को सम्बोधित करते हुए कहा कि भारतवर्ष के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भारतीय स्वतन्त्रता के संग्राम में सत्य तथा अहिंसा (truth and nonviolence) को प्रधान स्थान दिया। उनका आदेश था की ध्येय की प्राप्ति के लिये जो साधन प्रयोग किए जावें, वे भी परम पवित्र हों और हिंसा तथा कपट के प्रभाव से दूषित न हों। यदि इन पवित्र साधनों के बिना भारत स्वतन्त्र भी हो जाए तो उस स्वतन्त्रता को त्याग दिया जाए। गांधी जी की इस पवित्र तथा सार्वभौम शिक्षा को संसार में फैलाने के लिए सर्वोदय समाज की स्थापना की गई है जिसके प्रचारक इस समय संसार के कोने २ में शान्ति का सन्देश पहुँचा रहे हैं।

(४) लोकसेवा परायणता (Public Spirit)—स्वार्थ को त्याग कर मनुष्य मात्र की सेवा के लिए तैयार हो जाने के भाव को लोक-सेवा परायणता कहते हैं। प्रत्येक सच्चे नागरिक को तन मन धन से अपने सम्बन्धियों, पड़ोसियों और दूसरे सभी मनुष्यों की सेवा करनी

चाहिए। सेवा धर्म सब धर्मों से महान् है। इस प्रजातान्त्रिक युग में तो इस धर्म की आवश्यकता बहुत बढ़ गई है। यदि सदाचारी, योग्य और निस्वार्थी नागरिक अपने देश और जाति के कार्यों में भाग न लें तो दुराचारी, अयोग्य और स्वार्थी लोग देश के राजशासन पर अधिकार कर लेंगे और उपद्रव मचायेंगे। इस लिए प्रत्येक नागरिक का परम कर्तव्य है कि वह देश के सभी कार्यों में सहायता और सहयोग दे और अपने वोट का सदुपयोग करे, सच्ची गवाही देने से न घबराए, म्युनिसिपल बोर्ड आदि व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्य बनने के लिए तैय्यार रहे और थोड़ा सा कष्ट उठा कर जाति और देश की सेवा के लिये हर समय तैय्यार हो जाए। हर एक नागरिक को चाहिए कि वह राज्य अधिकारियों और कर्मचारियों के कार्यों पर ध्यान रखे, उनकी त्रुटियों को *निर्भय होकर प्रकाशित करे* और देश के राजशासन को हर प्रकार के दुराचार और अन्याय से बचाने में सहयोग दे। मनुष्यमात्र की भलाई की कामना रखना लोक सेवा का सच्चा उद्देश्य है।

(५) सामाजिक सुधार—किसी उपवन अथवा बाग़ को ठीक अवस्था में रखने के लिए कांट छांट (pruning) अति आवश्यक है। बाग़ में जो पौधे और शाखाएं निकम्मी हो जाती हैं और लाभ और शोभा के स्थान पर हानि और अशोभा का कारण बनती हैं, एक चतुर माली बड़ी चतुरता से उनकी कांट छांट करता रहता है। इसी प्रकार सामाजिक जीवन की कई रीतियां जो किसी समय बड़ी लाभदायक थीं अब निरर्थक हो गई हैं और कुरीतियां बन गई हैं। ऐसी कुरीतियों के संशोधन में कभी विलम्ब नहीं करना चाहिए। युग के साथ २ ऐसे संशोधनों और सुधारों की आवश्यकता होती रहती है। समाज सुधार के लिए नागरिक सुधारसमितियों का निर्माण किया जाए और समाज, सुधार के कार्यों को प्रोत्साहित करके देश को उन्नत किया जाए।

(६) राष्ट्रीय संस्कृति का महत्व—किसी देश या जाति की

सम्पत्ति उसके साहित्य, कला संगीत और विज्ञान आदि से सम्मिलित है। देश की इस सम्पत्ति को बढ़ाने के लिए अपने स्वभाव और प्रवृत्ति के अनुसार उचित भाग लिया जाए और जहां तक हो सके, अपनी राष्ट्रीय रीति नीति को लक्ष्य बना कर काम करना चाहिए। न केवल इतना बल्कि देश के प्राचीन साहित्य, विज्ञान तथा कलाओं की रक्षा के लिए उचित साधनों का प्रयोग किया जाए। विज्ञान के आविष्कारों से लाभ उठा कर देश की कृषि तथा शिल्प (agriculture and industry) को उन्नत किया जाए, अनुसन्धानों और आविष्कारों (Researches and inventions) की भावनाओं को प्रोत्साहित किया जाए ताकि देश की सम्पत्ति में इन साधनों द्वारा वृद्धि हो सके।

३. नागरिक जीवन के आदर्श की प्राप्ति के साधन

नागरिक जीवन के आदर्श का महत्व व्यक्ति, समाज और राज्य को सुन्दर और सम्पन्न बनाना है। इस आदर्श की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित साधनों का प्रयोग अति आवश्यक है—

(१) राज्य की सरकार प्रजातान्त्रिक हो। बिना प्रजातान्त्रिक राजशासन के नागरिकता के भाव उन्नत नहीं हो सकते। नागरिक जीवन की आधार भूत भावनाएं स्वतन्त्रता, समानता, और बन्धुता प्रजातान्त्रिक राजशासन के भीतर ही पूरी हो सकती हैं। जब व्यक्तियों को देश की व्यवस्थापिका सभाओं में प्रतिनिधित्व की प्राप्ति होती है तो शासन विधान का निर्माण नागरिक जीवन के आदर्शों के अनुकूल होता है और राजशासन इस ध्येय की प्राप्ति के अनुकूल साधनों का प्रयोग करता है।

(२) देश के भीतर विश्वजनीन और अनिवार्य (universal and compulsory) शिक्षा का प्रबन्ध किया जाए और पाठशालाओं और कालेजों के पाठ्यक्रम में नागरिक शास्त्र एक अनिवार्य विषय नियत किया जाए, वयस्कों (adults) के लिए रात्रि पाठशाला स्थापित की जाएं। भारत सरकार ने नागरिक जीवन के आदर्श

की प्राप्ति के लिए सामाजिक शिक्षा (Social Education) की योजना तैयार कर ली है और अनुभव के लिए देहली प्रान्त मे इसका सर्वप्रथम प्रयोग आरम्भ कर दिया है। मो० अबुल कलाम आजाद शिक्षामंत्री सामाजिक शिक्षा की परिभाषा करते हुए लिखते हैं कि सामाजिक शिक्षा उस शिक्षा प्रणाली को कहते हैं जो साधारण जनता में नागरिक जागृति उत्पन्न करे और उनके भीतर एकता और संगठन की भावना को उन्नत करे। इसी प्रकार वयस्कों की शिक्षा के मौलाना साहिब तीन अंग वर्णन करते हैं—(१) अनपढ़ वयस्कों को साक्षर बनाना (२) अशिक्षित नागरिकों में शिक्षित दल उत्पन्न करना (३) नागरिकता के व्यक्तिगत और समाज सम्बन्धी अधिकारों और कर्तव्यों को पूरा करने के लिए प्रोत्साहित करना और भावनाओं को जगाना। बिना राष्ट्रीय अनिवार्य शिक्षा के नागरिक जीवन के आदर्श की प्राप्ति असम्भव है।

(३) नागरिकों को भली भांति ज्ञान कराया जाए कि राज्य की सर्वोच्चसत्ता नागरिकों के अन्दर केन्द्रित है। यदि नागरिक शिक्षित, जागृत और कर्तव्यशील न होंगे तो मनुष्य जीवन के आदर्श की प्राप्ति का प्रयत्न निष्फल होगा। नागरिकों को अपने वोट के सदुपयोग का रहस्य समझाया जाए और वे दृढ प्रण कर लें कि वे दुराचारी, अयोग्य और स्वार्थी व्यक्ति को वोट न देंगे। राजशासन के कार्य की कड़ी देखभाल की जाय ताकि शासन के अधिकारी और कर्मचारी अच्छे नागरिक जीवन के विकास में किसी प्रकार की बाधा न डाल सकें।

(४) प्राय: यही कहा जाता है कि भूतकाल सुनहरी युग था और हमारे पिता पितामह ने बड़ी उन्नति की थी और वर्तमान युग में अधर्म, अन्याय और अत्याचार बढ़ गया है। युग के बनाने वाले हम स्वयं हैं। यदि हम दृढ़ निश्चय कर लें कि हम ने इस युग मे राम राज्य लाना है तो निश्चय ही काया पलट हो जाएगा। इस कारण जनता का दृष्टिकोण उन्नतिशील (progressive) बनाया जाय और नित्य

नवीन उपायों से लोगों को आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाय और ऐसे साधनों का प्रयोग किया जाए कि वे देश की प्राचीन संस्कृति को नई विचार धारा से विभूषित करके देश की प्राचीन और नवीन संस्कृति का समन्वय कर सकें।

Questions (प्रश्न)

1. What are the fundamental aspirations of civic life and how far are these related to one another ?

नागरिक जीवन की मौलिक भावनाएं क्या हैं और इनका परस्पर सम्बन्ध क्या है ?

2. Define equality and comment upon the different forms of equality.

समानता की परिभाषा करो और इसके भिन्न २ स्वरूपों तथा प्रकारों पर आलोचना लिखो ?

3. Amplify the statement that "law is the condition of liberty."

"स्वतन्त्रता का भोग कानून पर निर्भर है।" इस वाक्य की व्याख्या विस्तार पूर्वक करो ?

4. What are the ideals of civic life ? Explain their importance for success in life.

नागरिक जीवन का आदर्श क्या है ? सफल जीवन की प्राप्ति में इसका क्या महत्व है ?

5. What are the ideals of citizenship and what are the hindrances to good citizenship

नागरिकता के आदर्श क्या हैं, और उनकी प्राप्ति में कौन २ सी बाधायें हैं ?

6. Describe the methods to realize the ideals of civic life.

नागरिक जीवन के आदर्श की प्राप्ति के साधन वर्णन करो।

7. Write short notes on :-

(a) Patriotism.
(b) Public spirit
(c) Social reform.
(d) National culture.

निम्नलिखित विषयों पर नोट लिखिए

(क) देश भक्ति
(ख) लोक सेवा परायणता
(ग) सामाजिक सुधार
(घ) राष्ट्रीय संस्कृति

तेरहवां अध्याय

प्रतिनिधित्व (नुमाइन्दगी) और चुनाव

(Representation & Election)

१. नवीन राज्य और जनता

(The Modern State & the Electorate)

१—निरकुंश शासकों का युग समाप्त हो चुका है और अब जीवन के हरएक स्तर में जनता की आवाज़ सुनी जाती है। भूमण्डल के बहुत से राज्यों (States) में जनता के प्रतिनिधि जनता की इच्छानुसार वहां का राजशासन चला रहे हैं। जो राजशासन जनता के सुख के लिए जनता की इच्छानुसार जनता के प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाता है, उसको प्रजातान्त्रिक सरकार कहते हैं। प्रजा-तान्त्रिक सरकार में जनता की ज़िम्मेदारी या उत्तर-दायित्व (responsibility) बहुत होता है। केन्द्रीय, प्रान्तीय और स्थानीय सरकारों के संचालक जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि (representatives) ही होते हैं। प्रान्त, जिला वा नगर की भलाई और उन्नति प्रतिनिधियों की योग्यता दयानतदारी और निःस्वार्थ-सेवा पर आश्रित होती है। यदि प्रतिनिधि अपना कर्तव्य योग्यता और दयानतदारी से पूरा कर रहे हैं तो साधारण जनता आनन्द में रहती है और सारा देश उन्नति के रास्ते पर चला जाता है।

२. नागरिक जीवन की मौलिक भावनाएं स्वतंत्रता, समानता और बंधुता हैं। सब नागरिक अपने विचारों के प्रगट करने में स्वतन्त्र हैं, यदि इस स्वतंत्रता के प्रयोग से दूसरे नागरिकों की स्वतंत्रता में किसी प्रकार का विघ्न नहीं पड़ता। सारे नागरिक एक दूसरे के भाई हैं और

उसको एक दूसरे के साथ भाइयों जैसा बर्ताव करना उचित है। इन दोनों अधिकारों में महत्वपूर्ण अधिकार समानता का है और इसका अभिप्राय यह है कि राज्य की दृष्टि में सब नागरिक समान हैं और नगर, जिला, प्रांत और राज्य के शासन प्रबन्ध में भाग लेने के अधिकार सब नागरिकों के समान हैं। म्युनिसिपिल कमेटी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, प्रांतीय तथा केन्द्रीय धारा सभाओं के सदस्यों को चुनने या सदस्य चुने जाने के लिए उम्मीदवार (candidate)खड़ा होने में किसी नागरिक के मार्ग में उसके धर्म, जाति, व्यवसाय अथवा किसी और कारण से किसी प्रकार की रुकावट न डाली जाएगी। हर एक नागरिक अपनी स्वतन्त्र इच्छा से वोट दे सकेगा, स्वयं सदस्य बनने के लिए उम्मीदवार खड़ा हो सकेगा और किसी सरकारी पद पर नियुक्ति से वंचित न किया जा सकेगा।

३.—इस सम्बन्ध में तीन प्रश्न उत्पन्न होते हैं। एक प्रश्न तो यह है कि प्रतिनिधित्व का ढंग कैसा होगा और उस ढंग के अनुसार हर एक नागरिक अपने मत या वोट (vote) का सदुपयोग किस सीमा तक कर सकेगा। दूसरा प्रश्न यह है कि राज्य में रहने वाली सभी जातियों, सम्प्रदायों, संघों (associations) आदि के सदस्य अपने राज्य की सरकार में समान रूप में भाग कैसे ले सकेंगे और इस सम्बन्धमें किसी अल्पसंख्यक जाति (minority comniunity or group) के अधिकार कुचले तो नहीं जा रहे। तीसरा प्रश्न वोट देने की शर्तों (conditions) का है। क्या वे शर्तें ऐसी कड़ी तो नहीं कि राज्य के बहुत से नागरिक वोट देने से वंचित रह जाते हैं। इन तीनों प्रश्नों पर अब बड़ी गम्भीरता से विचार किया जाएगा।

२. प्रतिनिधित्व के ढग

(Methods of Representation)

१—प्रजातान्त्रिक राज्य शासन में राज्य की सर्वोच्चसत्ता जनता में केन्द्रित होती है और राज्य के सारे कार्य जनता की इच्छानुसार

किए जाते हैं। जनता की इच्छा के प्रगट करने के कई तरीके हैं। इनमें से प्रसिद्ध दो हैं—प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष। इन दोनों का अभिप्राय, गुण और त्रुटियां नीचे वर्णन की जाती हैं—

१ प्रत्यक्ष निर्वाचन (Direct Representation)—जब म्युनिसिपल बोर्ड डिस्ट्रिक्ट बोर्ड या किसी अन्य व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों के चुनाव में मतदाता स्वयं भाग लेते हैं और वोट डालने जाते हैं तो उस तरीके को प्रत्यक्ष निर्वाचन (Direct Representation) कहते हैं। इस प्रतिनिधित्व का यह तरीका बहुत पुराना है और इसकी उत्पत्ति यूरोप में सबसे पहिले यूनान और रोम में हुई। उस समय सारा देश छोटे २ नगरों में बंटा हुआ था और हर एक नगर में एक स्वतंत्र सरकार शासन प्रबन्ध करती थी। हर एक नगर एक प्रकार से सम्पूर्ण राज्य (City-State) के नाम से पुकारा जाता था। हर एक नगर के रहने वालों के अधिकार समान थे और राज्य के प्रबन्ध में सभी भाग ले सकते थे। समय २ पर सारे नागरिक इकट्ठे होकर अपने राज्य के कानून बनाते थे, कर (tax)लगाते थे, बजट तैयार करते थे, राज्य अधिकारियों को चुनते थे और राज्य की अन्य समस्याओं पर विचार करते थे। इस प्रकार के प्रतिनिधित्व(Representation) में अधिक सहयोग की आवश्यकता होती है और इसका क्षेत्रफल छोटा हो और जनसंख्या भी बहुत न हो।

(२) प्रत्यक्ष निर्वाचन के गुण और हानियां— प्रजातांत्रिक राज्य का अभिप्राय यही है कि मतदाता स्वयं निर्वाचन में भाग लें और जिस व्यक्ति को वे योग्य समझें उसको अपना प्रतिनिधि चुनें। इस प्रकार के निर्वाचन में कई गुण हैं। एक गुण तो यह है कि मतदाताओंको अवसर मिलता है कि वे प्रार्थियों (candidates)की नीति को जानें, परखें और स्वयं राजनैतिक विषयों में रुचि लें। दूसरा गुण जो कि प्रजातांत्रिक प्रणाली के अनुकूल है यह यह है कि इसमें सा-

धारण जनता में समानता, स्वतंत्रता और बन्धुता के गुणों का विकास होता है और यही गुण सभ्य, सुखी और सफल जीवन में सहायक हैं। इस प्रणाली में कई हानियां भी हैं। मतदाताओं की अधिक संख्या अयोग्य होती है और वे राजनैतिक विषयोंसे अपरचित होनेके कारण प्रार्थियों की योग्यता की जांच नहीं कर सकते। यह सम्भव है कि साधारण मतदाता किसी अयोग्य व्यक्ति की मीठी २ बातों अथवा किसी अन्य प्रलोभन में आकर उसको वोट दे दें और योग्य, सेवा परायण और निःस्वार्थी प्रार्थी को सेवा से वंचित कर दें।

(३) अप्रत्यक्ष निर्वाचन (Indirect Representation) इस प्रणाली में मतदाता प्रार्थियों को वोट नहीं देते, बल्कि कुछ थोड़ी संख्या में योग्य व्यक्तियों को चुनते हैं, फिर वे व्यक्ति अपने वोटों द्वारा प्रतिनिधि चुनते हैं। इस प्रणाली, द्वारा चुनने में दो निर्वाचनों की आवश्यकता होती है। भारतवर्ष में संघ संसद (Union parliament) के लिए प्रतिनिधि अप्रत्यक्ष प्रणाली द्वारा चुने जाते हैं।

(४) अप्रत्यक्ष निर्वाचन के गुण और दोष—इस प्रणाली का एक लाभ तो यह है कि विश्वमत अधिकार (Universal Franchise) के प्रयोग में जो त्रुटियां हैं वे घट जाती हैं। इस प्रणाली में प्रतिनिधि साधारण जनता द्वारा जो कि अज्ञानी और निरक्षर होती हैं नहीं चुने जाते, बल्कि ऐसे व्यक्तियों द्वारा चुने जाते हैं, जो देश की समस्या को समझ सकते हैं और प्रार्थियों के गुणों से परिचित होते हैं। दूसरा लाभ यह है कि दलबन्दी की बुराइयों और संघर्ष से साधारण जनता बच जाती है। परन्तु इस निर्वाचन में बड़ा भारी दोष यह है कि यह प्रजातांत्रिक सिद्धांत के प्रतिकूल है, साधारण जनता के राजनैतिक विषयों में उत्साह लेने में बाधा डालता है और साधारण जनता को अपने प्रतिनिधि चुनने के अयोग्य समझा जाता है। जहां दलबन्दी की प्रथा पर्याप्त उन्नत है वहां अप्रत्यक्ष निर्वाचन उपहास (farce)

बन जाता है। यह प्रथा ठगी, घूस और मक्कारी को बढ़ाती है और साधारण जनता में स्वतंत्रता, समानता और बंधुता के गुणों का लोप हो जाता है। यही कारण है कि निर्वाचन की इस प्रणाली को धीरे २ लोग त्याग रहे हैं और प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली का प्रचार बढ़ रहा है।

३. निर्वाचन की साधारण विधि

(Ordinary Procedure of Election)

१. म्युनिसिपल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड या किसी अन्य व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों के निर्वाचन या चुनाव के लिए नगर, जिला या प्रांत को कुछ विभागों में बांटा जाता है और एक विभाग में रहने वाले वोटरों की सूची तैयार की जाती है। वोटर बनने के लिए कुछ शर्तें नियत की हुई होती हैं। जो २ व्यक्ति इन शर्तों को पूरा करते हैं उनका नाम वोटरों की सूची में लिखा जाता है। हर एक देश में वोटर बनने के नियम भिन्न २ होते हैं। सर्वप्रिय बात तो यह है कि हर एक वयस्क (adult) को वोट देने का अधिकार हो, परन्तु हर जगह पर ऐसा नहीं और वोटर बनने के लिए सम्पत्ति और शिक्षा की कुछ शर्तें लगी हुई हैं। इसके अतिरिक्त पागल, दीवालिए और अपराधी को वोट देने से वंचित किया गया है।

२. जब वोटों की सूची तैयार हो जाती है तो जो व्यक्ति सदस्य बनने के लिए खड़े होते हैं उनके नाम मांगे जाते हैं। प्रार्थी बनने की भी विशेष शर्तें होती हैं, जो व्यक्ति उन शर्तों को पूरा करते हैं, उनके नाम चुनाव के लिए स्वीकार किये जाते हैं। फिर चुनाव के लिए विशेष तिथियां नियत की जाती हैं। हर एक प्रार्थी के वोटों के लिए विशेष रंग के संदूक तैयार किए जाते हैं और पोलिंग स्टेशन या वोट देने के स्थान पर पहुँचाये जाते हैं। हर एक पोलिंग स्टेशन का इनचार्ज एक जिम्मेदार अधिकारी होता है। हर एक पोलिंग स्टेशन पर पोलीस का भी प्रबन्ध होता है ताकि वोटिंग निर्विघ्न समाप्त हो जाए। प्रार्थियों के संदूकों के पास अधिकारी बैठा रहता है और हर एक वोटर अपने

वोट की पर्ची लाता है और जिस प्रार्थी को वोट देना चाहे उसके संदूक में पर्ची डाल देता है। पर्ची डालने का काम सारा दिन जारी रहता है और जब नियत समय समाप्त हो जाए तो संदूक को भली भांति बंद करके जिम्मेदार अधिकारी को सौंपा जाता है।

३. संदूकों के खोलने और वोटों के गिनने के लिए समय नियत किया जाता है और प्रार्थियों वा उनके एजण्टों की उपस्थिति में ये संदूक खोले जाते हैं और वोट गिने जाते हैं। जिन प्रार्थियों को वोट सब से अधिक मिलते हैं वे व्यवस्थापिका सभा के सदस्य चुने जाते हैं।

४. चुनाव के सम्बन्ध में कई प्रकार की गड़बड़ियां की जाती हैं। आजकल दलबंदी (Party System) का युग है और प्रार्थी भिन्न २ राजनैतिक दलों की ओर से खड़े किये जाते हैं। ये दल अपने पक्ष के गुण और दूसरे दलों के दोष व्याख्यानों द्वारा प्रगट करते हैं। कई लोग तो बड़े नीच प्रकृति के होते हैं। वे वोटरों को घूस (रिश्वत) देकर वोट प्राप्त करते हैं। सरकार प्रयत्न करती है कि इस प्रकार के दोष दूर हो जावें और निर्वाचन शांति पूर्वक समाप्त हो जाए। रिश्वत तथा अन्य दोषों को दूर करने के लिए विशेष नियम बने हुए हैं और इसी कारण एक नियम द्वारा निर्वाचन के व्यय पर भी शर्त लगाई गई है। अनुचित व्यय को रोकने के लिए प्रत्येक प्रार्थी से कुछ अमानत भी ली जाती है और चुनाव के अनन्तर प्रत्येक प्रार्थी के व्यय का देखभाल भी की जाती है।

४. अल्प-संख्यक जातियों का प्रतिनिधित्व

(Representation of Minorities)

१—प्रजातान्त्रिक सरकार में राज्य की सर्वोच्चसत्ता जनता में केन्द्रित होती है, इसलिए किसी राज्य की सरकार में भिन्न २ समूहों का उचित प्रतिनिधित्व बहुत आवश्यक है। यदि अल्पसंख्यक समूहों के प्रतिनिधि सरकार में न हों तो बहुसंख्यक समूह के हाथों अल्प-

संख्यक समूहों के अधिकार सुरक्षित नहीं रह सकते बल्कि उनके कुचले जाने की सम्भावना होती है। नीतिज्ञ मिल्स (Mill) राज्य के सारे शासन सम्बन्धी कार्यों को केवल बहुसंख्यक समूह के हाथ में सौंप देने को बुरा समझता है और कहता है कि प्रजातान्त्रिक सरकार के सभी अंगों में अल्प संख्यक समूहों का उचित प्रतिनिधित्व बहुत आवश्यक है। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रजातान्त्रिक सरकार में बहुसंख्यक दल शासन करता है और अल्प संख्यक दलों को उसकी आज्ञा का पालन करना पड़ता है परन्तु अल्प संख्यक जातियों को उनकी संख्या के अनुसार प्रतिनिधित्व देना न केवल न्याय है बल्कि राज्यशासन में आसानी उत्पन्न करता है, और देश की उन्नति भी आसान हो जाती है।

२—अल्प-संख्यक जातियों के प्रतिनिधित्व (representation) के लिए कई ढंग बनाये गये हैं। इनमें से अधिक प्रसिद्ध समानुपाती प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) है। इस ढंग के अनुसार हर एक जाति को किसी धारासभा वा स्थानीय स्व-राज्य संस्था में उसकी जन-संख्या वा वोटरों की संख्या के अनुसार प्रतिनिधित्व मिल जाता है। यह ढंग दो प्रकार का होता है। एक को हेअर विधि (Hare System) और दूसरे को सूची विधि (The List System) कहते हैं। इन दोनों विधियों का पृथक् २ वर्णन नीचे किया जाता है—

(१) हेअर विधि (The Hare System)

१—यह विधि सबसे पहले १८५१ में एक अंग्रेज नीतिज्ञ थामस हेयर (Thomas Hare) ने निकाली थी। इस विधि को अधिमानित्व विधि (Preferential System) या हस्तान्तरण मत विधि (Transferable Vote System) भी कहते हैं। इस विधि के प्रयोग के लिए हर एक मत केन्द्र या वार्ड (Ward) में तीन पद (Seats) का खाली होना आवश्यक है। परन्तु अधिक पदों

(seats) के सम्बन्ध में कोई नियन्त्रण नहीं। प्रार्थी (candidates) साधारण टिकट पर खड़े होते हैं और हर एक मतदाता (voter) केवल एक प्रार्थी को मत (vote) दे सकता है। परन्तु मत की परची (ballot paper) पर प्रार्थियों के नाम के आगे १, २, ३ आदि अंक लिख देता है। जिसका अभिप्राय यह है कि सबसे अधिक योग्य व्यक्ति नम्बर १ को, दूसरे स्थान पर नम्बर २ को और तीसरे स्थान पर ३ अंक वाले व्यक्ति को योग्य समझता है। निर्वाचन के लिए हर एक प्रार्थी (candidate) को एक विशेष संख्या मतों (votes)की प्राप्ति करनी पड़ती है और इस विशेष संख्या वा कोटा (quota) के जानने की विधि यह है कि जितने वोट चुनाव के समय पर डाले गए हैं, उनकी संख्या को पदों (seats) की संख्या पर भाग दिया जाता है और भागफल (quota)वोटों की उस विशेष संख्या या कोटा को प्रकट करता है, जो प्रत्येक प्रार्थी को सदस्य चुने जाने के लिए प्राप्त करना पड़ता है। वोटों की पहिली गिनती में केवल नम्बर १ के प्रार्थियों के वोटोंकी गिनती की जाती है। जब किसी प्रार्थी को वोटें विशेष संख्या (quota) पर पहुँच जाती है तो उस प्रार्थी को निर्वाचित समझा जाता है और उस प्रार्थी की बाकी वोटें प्रार्थी नम्बर २ को दी जाती हैं। इस प्रकार जितने सदस्य चुनने हों, वे चुन लिए जाते हैं।

(२) सूची विधि (The List System)

कई देशों, उदाहरण रूप में, फिनलैन्ड में समानुपाती प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) का प्रयोग एक अन्य ढंग से किया जाता है और वह ढंग सूची विधि (The List-System) कहलाता है। इसका अभिप्राय यह है कि भिन्न-भिन्न जातियों के वोट भिन्न-भिन्न सूचियों (lists) में बांटे जाते हैं और हर एक प्रार्थी को दिये हुए वोट उसकी जाति (Community) के वोटों की सूची में रखे जाते हैं। हर एक मतदाता (voter) इतने वोट दे सकता है जितनी सीटें (seats) खाली हों। परन्तु,

वह प्रत्येक प्रार्थी को केवल एक ही वोट दे सकता है। निर्वाचन के लिए वोटों का कोटा (quota) हेयर विधि (Hare System) के अनुसार प्राप्त किया जाता है और इसके पश्चात् हर जाति (Community) के वोटों को कोटा (quota) पर भाग दिया जाता है और भाग फल उस जाति की सीटों (seats) की संख्या ज्ञात करता है। इस ढंग से हर एक जाति या दल की सीटों का निर्णय हो जाता है। तदनन्तर हर एक जाति वा दल के सदस्य हेयर विधि (Hare System) के अनुसार चुने जाते हैं।

(३) परिसीमित मत विधि (*The Limited Vote-System*)

१—अल्प-संख्यक जातियों को प्रतिनिधित्व देने के एक और ढंग को परिमित मत विधि (The Limited Vote System) कहते हैं। इस विधि के प्रयोग के लिए कम से कम तीन पदों (Seats) का निर्वाचन आवश्यक है। हर एक जिला या वार्ड (Ward) में जितने पद (seats) खाली हों मतदाताओं को उससे कुछ न्यून प्रार्थियों को वोट देने का अधिकार दिया जाता है और वह किसी प्रार्थी को एक से अधिक वोट नहीं दे सकता। उदाहरण रूप में यदि पांच पदों को भरने के लिए निर्वाचन किया जाए तो हर एक मतदाता को तीन प्रार्थियों को एक-एक वोट देने का अधिकार होगा। इस विधि से अल्प-संख्यक समूह को दो पदों की प्राप्ति का अवसर मिल जायगा। जहां तीन चार अल्प-संख्यक समूह हों, वहां यह विधि उचित परिणाम प्राप्त न कर सकेगी। इस विधि से लाभ वह अल्प-संख्यक जाति प्राप्त कर सकेगी, जिसकी जन-संख्या काफी हो।

(४) एकत्रित मत विधि (The Cumulative-Vote System)

१ एकत्रित मत विधि के अनुसार प्रत्येक मतदाता को उतने वोट देने का अधिकार दिया जाता है जितने पदों को भरने की आवश्यकता हो

और वह अपने सारे वोट एक प्रार्थी को दे सकता है या अगर चाहे तो दो या तीन प्रार्थियों में बांट सकता है। इस विधि का अभिप्राय यह है कि अल्प-संख्यक जाति अपने सारे वोट अपने एक या दो या अधिक प्रार्थियों को देकर उनको निर्वाचित करा सकती है। इस विधि में अवगुण यह है कि यह साम्प्रदायिक घृणा और जाति भेद के भावों (Communalism & Sectariansim) को उभारता है और देश के संगठन को तोड़ता है। यदि तीन चार अल्प-संख्यक जातियां मिल जायें तो बहु संख्यक जाति को अपने उचित प्रतिनिधित्व से वंचित कर दें।

२ अल्प संख्यक जातियोंको म्यूनिसिपल कमेटी, डिस्ट्रिक्टबोर्ड तथा अन्य व्यवस्थापिका सभाओं में प्रतिनिधित्व (representation) देने की जितनी विधियां ऊपर वर्णन की गई हैं, वे बहुत पेचीदा हैं और उन पर आचरण करना कठिन है और प्राय: अभीष्ट फल प्राप्त नहीं होता। फिर भी अल्प-संख्यक समूहों को अधिकार देने व प्रसन्न करने के लिये कोई न कोई प्रबन्ध आवश्यक हो जाता है। जनता की भिन्न २ समूहों में बांट देश और जाति के लिए बहुत हानिकारक है। जन साधारण का दृष्टिकोण बहुत संकुचित हो जाता है, और राष्ट्रीय भलाई और उन्नति पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता है। इस प्रकार देश के अन्दर संगठन, एकता और बन्धुता के पवित्र भाव घटते जाते हैं और स्वार्थ, तंगदिली और ईर्षा आदि अवगुण जड़ पकड़ते जाते हैं। पराधीन भारतवर्ष (१५ अगस्त १९४७ से पहिले) में हिन्दु-मुसलिम फूट इतनी बढ़ गई कि भारतवर्ष को हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दो टुकड़ों में बांटने के बिना स्वतन्त्रता की प्राप्ति असम्भव हो गई थी। स्वतंत्र भारत में भी अल्पसंख्यक जातियों के अधिकारों की समस्या दो वर्षों तक चलती रही और भय यह था कि कहीं भविष्यसंविधान में भी यह विष प्रवेश न कर जाये। देश का सौभाग्य समझिये या नेताओं की निपुणता समझिये कि अछूतों (Harijans or-

Untouchables) के बिना किसी अन्य जाति को अल्प-संख्यक नहीं माना गया और न उनकी विशेष रक्षा का विश्वास दिलाया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि भारत अपने संविधान में सब नागरिकों के अधिकार के समान अवसर उत्पन्न करने का उत्तरदायी है। अब आशा की जाती है कि भविष्य भारत राज्य में एकता, समानता और संगठन बढ़ता जायेगा और हर एक नागरिक अपने स्वार्थ को छोड़ समूचे भारतवर्ष की उन्नति का ध्यान रखेगा।

५. विशेष प्रतिनिधित्व

(Representation of specal Interests]

१—कई नीतिज्ञों का विचार है कि किसी व्यवस्थापिका सभा में प्रतिनिधित्व न केवल राजनैतिक दलों को दिया जावे बल्कि हरएक पेशे (profession), आर्थिक संस्था (Economic Institution) आदि को दिया जाए ताकि समाज के सभी अंग देश की उन्नति में भाग ले सकें। इस विचार धारा के अनुसार व्यापारियों, शिल्पकारों, ज़मीनदारों, यूनीवर्सिटी आदि संस्थाओं के लिए, व्यवस्थापिका सभा में कुछ पद (seats) पृथक् कर दिए जायें।

२—इस प्रकार के विशेष अधिकार प्रजातान्त्रिक और राष्ट्रीय सिद्धान्तों के विरुद्ध हैं, और ऐसे वोटरों को साधारण जनता से विशेष समझा जाता है। यह प्रतिनिधित्व देश के अन्दर फूट और ईर्षा के बीज बोता है और देश के संगठन को दूषित करता है।

६. मताधिकार

(Right to Vote)

प्रजासत्तात्मक राज्य में मताधिकार प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्धाधिकार माना गया है और वर्ण, रूप, जाति, धर्म, लिंगादि का विचार किए बिना सब वयस्कों का मताधिकार (Universal Adult Franchise) स्वीकृत है। परन्तु वास्तविक रूप में हर एक नागरिक को कुछ शर्तों को पूरा करना पड़ता है, इससे पूर्व कि वे मत दान के अधिकारी हों।

प्रत्येक देश में कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनको वोट का अधिकार नहीं मिलता। अवयस्क, उन्मादी, पागल, दीवालिया, दरिद्र और अभियुक्तों को मताधिकार से वंचित रखा गया है। कुछ राज्यों में सरकारी कर्मचारी और सैनिक सिपाहियों को भी मतदान का अधिकार नहीं क्योंकि वे किसी एक दल के नहीं, बल्कि सारे देश के सेवक होते हैं। मताधिकार की शर्तों में से दो शर्तें ऐसी हैं जो प्रायः हर एक देश में मानी जाती हैं—एक धन की शर्त और दूसरी शिक्षा की शर्त। हम इन दोनों शर्तों की व्याख्या और समीक्षा नीचे करते हैं—

(१) धन सम्पत्ति की शर्त—नियम यह है कि उस नागरिक को, जो राज्य को एक निश्चित कर न देता हो या जिसके पास निश्चित सम्पत्ति न हो, उसको मताधिकार न दिया जाए। धन की शर्त लगाने का तात्पर्य यह है कि जो धन हीन है उसको सार्वजनिक जीवन में कोई रुचि नहीं होती अथवा वह धन प्राप्ति के लोभ में अपने वोट का सदुपयोग न करेगा। परन्तु आज कल के नैतिक विचार इस शर्त के विरुद्ध हैं और कहा जाता है कि धन का योग्यता से कोई सम्बन्ध नहीं, धन कमाना सांसारिक कार्य है, और निर्वाचन के कार्य को इसके आधीन करना अनुचित है।

(२) शिक्षा की शर्त—शिक्षा पर पर्याप्त बल दिया जाता है। जोहन स्टुअर्ट मिल का कथन है कि "यह सर्वथा अनुचित है कि साक्षर हुए बिना किसी को वोट का अधिकार दिया जाए"। जब तक मतदाता पूर्णतया सुशिक्षित न हों, वे अपने वोट का सदुपयोग नहीं कर सकते। यदि अपठित और अज्ञानी लोगों को मताधिकार दिया जाए तो देश में उपद्रव मच जाए। इसलिए व्यक्ति, समाज और राज्य की भलाई के लिए आवश्यक है कि विश्वमताधिकार (Universal Suffrage) के प्रदान के पूर्व सर्वांगीण अनिवार्य शिक्षा (Universal Compulsory Education) का प्रबन्ध किया जाए।

इसमें सन्देह नहीं कि मतदाताओं को चतुर, बुद्धिमान और गंभीर

होना चाहिए, परन्तु ये गुण केवल शिक्षा से प्राप्त न होंगे। संसार में ऐसे अपठित व्यवसायी (business men) हैं जिन्होंने अपनी चतुरता और सावधानता से अपने काम में सफलता प्राप्त की है। अकबर महान् अपठित था, परन्तु राजशासन सम्बन्धी कार्यों में वह आचार्य माना जाता था। इस कारण अपठित होने के कारण मताधिकार से किसी को वंचित रखना अनुचित होगा। निरक्षर व्यक्ति प्रायः मूर्ख नहीं होते, परन्तु प्रत्येक अवस्था में अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध एक अच्छे राज्य के लिए सर्व प्रथम कर्तव्य है और जिस राज्य के नागरिक सबसे अधिक शिक्षित होंगे, वही राज्य अवश्य ही सबसे अधिक उन्नत और सफल होगा।

७ विश्वमताधिकार
(Universal Adult Franchise)

१—विश्वमताधिकार के सिद्धान्त का अर्थ यह है कि प्रत्येक वयस्क पुरुष तथा स्त्री का अधिकार है कि वह राज्य की व्यवस्थापिका सभाओं के निर्वाचन में भाग ले और अपना वोट दे। प्रजातान्त्रिक राजशासन का अर्थ है प्रजा का राजशासन और यह उचित है कि हर एक नागरिक को मताधिकार प्राप्त हो।

२—विश्व मताधिकार के गुण—(१) प्रजातान्त्रिक राज्य में सर्वोच्च सत्ता का केन्द्र देश की सारी जनता है, इस लिये हर एक नागरिक का अधिकार है कि वह देश की व्यवस्थापिका सभाओं (Representative Bodies) के सदस्यों के चुनाव में भाग ले और मत दे।

(२) राजशासन के कार्यों में देश में रहनेवाले सभी व्यक्तियों और जातियों की स्वीकृति प्राप्त करने का केवल साधन विश्वमत अधिकार का प्रयोग है। अभी तक कोई और ऐसा साधन नहीं मिला जिस से सारी जनता की इच्छा और मनोभाव का पता लगाया जा सके।

(३) राजशासन एक प्रकार का व्यवसायिक संघ (Business Firm) है, जिसके चलाने में हर एक नागरिक की हानि और लाभ है। इसलिए हर एक नागरिक, चाहे वह धनी हो या निर्धन, साक्षर हो या

निरत्तर, का यह अधिकार है कि वह राजशासन की नीति और कार्यक्रम (policy and programme) के निश्चय करने में भाग ले सके और भाग लेने का उपाय केवल मात्र मताधिकार का प्रयोग है।

(४) समाज की भिन्न २ संस्थाओं के अधिकार सुरक्षित होंगे और उनको सरकार के विरुद्ध कोई आपत्ति न होगी, यदि उन्हें बिना किसी वर्ग भेद के वोट देने का अधिकार हो। यदि समाज के किसी अंग को वोट देने से वंचित किया जाए तो देश में अशाँति और असन्तोष की अग्नि सुलगती रहेगी, क्योंकि ये हर समय अपनी कठिनाइयों और आपत्तियों का संशोधन कराने का प्रयत्न करते रहेंगे। यदि प्रत्येक को वोट देने का अधिकार होगा तो भिन्न २ अंग आपस में मिलकर ऐसा समझौता कर लेंगे जिससे योग्य और निःस्वार्थ व्यक्तियों को व्यवस्थापिका सभाओं का सदस्य चुना जायेगा और समाज के अंग सन्तुष्ट भी रहेंगे।

३. विश्व मताधिकार की हानियां—(१) कोई भी अधिकार हो केवल उस व्यक्ति को दिया जाता है, जो उसका उचित प्रयोग कर सके। हर एक अधिकार के पीछे कुछ कर्तव्य भी हैं और जो लोग उन कर्तव्यों के महत्व से अनभिज्ञ हैं, वे उस अधिकार के लेने के योग्य नहीं होते, इसलिए राजशासन में वोट का अधिकार केवल उन लोगों को मिलना चाहिए जो राजशासन के मर्म को समझते हैं।

(२) साधारण जनता अनपढ़ और अज्ञानी होती है और वह उत्तरदायी सरकारों को रीति नीति से अनभिज्ञ होती है, इसलिए उनको बिना समझे वोट का अधिकार देनेसे देशको अवनति और हानि होगी। जोन स्टुअर्ट मिल लिखता है कि मैं इसको अत्यन्त बुरा समझता हूँ कि लिखने, पढ़ने और गणित का साधारण ज्ञान न होने पर भी किसी को मत देने का अधिकार दिया जाए। नीतिज्ञों का विचार है कि मत देने का अधिकार केवल उनको दिया जाय जो पर्याप्त पढ़े-लिखे हों, राजनैतिक ज्ञान से शून्य न हों, धनवान तथा सम्पन्न हों और समाज में उनका कुछ मान भी हो।

इसमें सन्देह नहीं कि वर्तमान प्रजातान्त्रिक राजशासन की प्रवृत्ति (tendency) विश्ववयस्क मताधिकार (Universal Adult Franchise) की ओर है। यदि शिक्षा को मताधिकार की कसौटी माना जाय तो हर एक राज्य का पहला कर्तव्य है कि वह अपने नागरिकों की शिक्षा का पूरा २ प्रबन्ध करे। धन संपत्ति की शर्त अनुचित प्रतीत होती है और मताधिकार के मार्ग में यह बाधा न डाले। वर्तमान प्रजातान्त्रिक राज्य प्रयत्न कर रहे हैं कि प्रत्येक नागरिक के खाने, पीने, पहनने, रहने और रोगी होने पर चिकित्सा का प्रबन्ध सन्तोषजनक हो और सारे नागरिक पेट भर कर निश्चिन्त होकर सो सकें।

४ भारतवर्ष में मताधिकार—भारतवर्ष का मत प्रदान के सम्बन्ध में आदर्श विश्वमत अधिकार है और यहां की सब से बड़ी और प्रभावशाली राजनैतिक संस्था इंडियन नेशनल कांग्रेस इस आदर्श की पूर्ति के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ (pledged) रही है। विश्वमताधिकार में बहुत से गुण हैं और विशेषकर इसका बड़ा भारी लाभ यह है कि भारतवर्ष में विभिन्न साम्प्रदायों, जातियों, वर्णों आदि के लोग केवल विश्वमताधिकार द्वारा ही देश के राजशासन में भाग ले सकते हैं, और सन्तुष्ट रह सकते हैं। कुछ वर्ष हुए भारतीय विश्वमताधिकार समिति (Indian Franchise Committee) ने विश्वमताधिकार का विरोध किया था और उसका कारण यह था कि अभी तक देश में केवल आठ प्रतिशत लोग ही पढ़ित हैं।

अब भारत स्वतन्त्र है और स्वतन्त्र भारत के संविधान में विश्व मताधिकार को स्वीकार किया गया है। अब आबादी का ४० प्रतिशत धारासभाओं और स्थानीय स्वराजी संस्थाओं में भाग ले सकेगा। इस समय भारत की जनसंख्या ३६ करोड़ है। अवयस्कों और अस्वस्थों (disabled) को छोड़ कर १६ करोड़ वयस्क नर-नारी को वोट का अधिकार दिया गया है। इतनी बड़ी मात्रा में निर्वाचन का प्रबन्ध अभी तक किसी देश को नहीं करना पड़ा।

५. मतदाताओं का राजशासन पर नियन्त्रण—यह युग प्रजातान्त्रिक राजशासन का है और हर एक राज्य की सरकार का निर्माण साधारण जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों से होता है निर्वाचन के समय प्रार्थी जनता से बड़े २ प्रण करता है, कि देश की व्यवस्थापिका सभाओं तथा अन्य सभाओं के सदस्य बनकर जनता के हित के कार्यों को बड़ी सावधानता और पवित्रता से करेंगे। परन्तु जब उन के हाथ में शक्ति वा अधिकार आ जाते हैं तो की हुई प्रतिज्ञाओं से आँखें मूंद लेते हैं जिससे राजशासन में कई प्रकार की त्रुटियां आजाती हैं, इसलिये सरकार के कार्यों पर नियन्त्रण रखना मतदाताओं का कर्तव्य हो जाता है। नियन्त्रण की कई विधियां हैं और सुविधा के लिए इन विधियों को दो भागों में बांटा गया है—

अप्रत्यक्ष प्रभाव—प्रजातांत्रिक राजशासन की सफलता जनमत (public opinion) पर निर्भर है और जनमत से प्राय: सरकारी अधिकारी और कर्मचारी भयभीत रहते हैं, इसलिए राजशासन को सुव्यवस्थित करने के लिए जनमत को बनाए रखना आवश्यक है।

यदि कोई अधिकारी वा कर्मचारी कर्तव्य में उपेक्षा करता है वा जनता के साथ अच्छा वर्ताव नहीं करता तो सभाओं समाचारपत्रों और सूचनाओं द्वारा उनकी त्रुटियों को प्रकट किया जाता है, इससे वे अधिकारी अपने व्यवहार में परिवर्तन करने पर विवश हो जाते हैं और कर्तव्यशील बन जाते हैं।

जनता शासन की बुराईयों के लिए प्रतिनिधि मण्डल (deputation) द्वारा भी सरकार को सूचित कर सकती है।

परन्तु ये कार्यवाहियां शासक वर्ग को उचित नियन्त्रण में रखने के लिए अपर्याप्त होती हैं, इसलिए कई राज्यों में प्रत्यक्ष विधियों का प्रयोग भी किया जाता है—

प्रत्यक्ष नियन्त्रण—यदि चुनाव जल्दी २ किए जाएं तो प्रतिनिधि दोबारा चुने जाने की कामना से अपना कार्य दयानतदारी से करते हैं। यदि किसी राज्य की सरकार अपने कार्यों को भली प्रकार नहीं कर

रही होती तो अविश्वास का प्रस्ताव पास कर के दोबारा चुनाव द्वारा–चतुर, योग्य और निःस्वार्थी व्यक्तियों को चुना जा सकता है। परन्तु मर्यादा से अधिक चुनाव अच्छे नहीं होते।

यदि मतदाता किसी अधिकारी वा सदस्य के व्यवहार से असन्तुष्ट हों तो वे एक याचना-पत्र (petition) द्वारा इस अधिकारी या प्रतिनिधि से प्रार्थना करते हैं कि वह अपने पद से त्याग पत्र दे देवे वा दोबारा चनाव के लिए उपस्थित हो। इस विधि को वापिस बुलावा (recall)कहते हैं।

कभी २ मतदाता धारासभाओं को याचना पत्र (petition) देते हैं और उस में देश की उन्नति के लिए कई योजनाएं (proposals) लिख देते हैं और प्रार्थना करते हैं कि इन मांगों को स्वीकार किया जाए। यदि धारासभा इन मांगों की ओर विशेष ध्यान नहीं देती तो जनता की ओर से संग्रह वा रिफ्रेण्डम (referendum) की मांग की जाती है। रिफ्रेण्डम उस विधि को कहते हैं, जिसके द्वारा कुछ बिलों पर जनता की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए उनके वोट लिए जाते हैं। यदि वे बिल वा प्रस्ताव नियत बहुमत प्राप्त कर लेते हैं, तो वे देश का विधान बन जाते हैं।

अप्रत्यक्ष निर्वाचन की विधियां बहुत अनुपयुक्त, भद्दी तथा मह‌ंगी हैं, इस लिए इन का बहुत प्रयोग अच्छा नहीं।

Questions(प्रश्न)

1. Write a short note on the various methods by which the people of a country can be associated with the task of its government.

संक्षिप्त रूप से वर्णन करो कि किसी देश के नागरिक अपने देश की सरकार के कार्यों में किस प्रकार उत्साह ले सकते हैं।

2. Explain clearly what you understand by the

direct and indirect representation. State its good and bad points.

स्पष्ट रूप से वर्णन करो कि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व का अभिप्राय क्या है। दोनों प्रकार के प्रतिनिधित्वों के गुण और हानियाँ बताओ।

3. Write an essay upon the different methods of affording representation to minorities in government institutions.

अल्प-संख्यक जातियों का सरकारी संस्थाओं में प्रतिनिधित्व देने के ढंगों पर एक निबन्ध लिखो।

4. Discuss the qualifications of voters and justify that universal education must precede universal enfranchisement.

मतदाताओं के मताधिकार की विवेचना करो और समर्थन करो कि विश्व शिक्षा विश्वमताधिकार के लिये अनिवार्य है।

5. What do you understand by the universal adult franchise and discuss the advantages and disadvantages of the system.

विश्वमताधिकार का अभिप्राय क्या है। विश्वमताधिकार के लाभ और हानियां वर्णन करो।

6. Discuss how the electorate can exercise control over the government.

उन विधियों को वर्णन करो जिनके प्रयोग से मतदाता अपने राज्य की सरकार पर नियंत्रण रख सकते हैं।

7. Write short notes on—

(a) Direct election and indirect election.

(b) Direct control and indirect control.

(c) Representation of special interests.
(d) Ordinary procedure of election.

निम्नलिखित विषयों पर अपने विचार लिखो :—

(क) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष निर्वाचन
(ख) प्रत्यक्ष नियन्त्रण और अप्रत्यक्ष नियन्त्रण
(ग) विश्व प्रतिनिधित्व
(घ) निर्वाचन की साधारण विधि

चौदहवां अध्याय

जनमत और राजनैतिक दल

(Public Opinion and Political Parties)

(क) जनमत ((Public Opinion)

१—हर एक राज्य की सरकार का यह पहिला कर्तव्य है कि वह सदैव अपनी प्रजा को इच्छाओं की जांच करती रहे । प्रत्येक सावधान और समझदार सरकार प्रयत्न करती है कि प्रजा उसकी आज्ञाओं का प्रसन्नता से पालन करे, उसके कार्य्यों की प्रशंसा करे और उसकी नीति (policy and programme) में सहयोग दे । प्रजा की भी हमेशा यही मनोकामना रहती है कि शासक वर्ग हमारी इच्छाओं और आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर अपना कार्य्य-क्रम नियत करे । प्रजातान्त्रिक सरकारों में जनता की सम्मति और इच्छाओं का अनुमान व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों के निर्वाचन के समय हो सकता है । परन्तु एक निर्वाचन और दूसरे निर्वाचन के मध्य में पर्याप्त समय व्यतीत हो जाता है और जनता जो देश की सर्वोच्च सत्ता (sovereignty) की वास्तविक स्वामिनी है, बहुत दीर्घकाल तक अपने प्रतिनिधियों के हाथ में अपनी शक्ति नहीं रखना चाहती, इस कारण यह आवश्यक हो जाता है कि कुछ ऐसे साधन स्वीकार किए जाएं जिनसे जनता राजशासन की नीति और कार्य्यों से परिचित रह सके । यदि ऐसे साधनों का प्रयोग न किया जाये तो शासक वर्ग और जनता के मध्य भ्रान्ति और अविश्वास फैल जाता है और राजशासन का काम भली प्रकार नहीं चल सकता । अतः अपने मत (opinion) वा इच्छा (wishes) के प्रकाश करने से जनता देश की सरकार पर अपना नियंत्रण रख सकती है

और शासक वर्ग भी प्रमाद, आलस्य, घूस और बददियानती का शिकार नहीं बनता।

२. जनमत की परिभाषा—निरंकुश शासन का काल समाप्त हो चुका है और आधुनिक राजशासन में हर एक स्थान पर जनता वा प्रजा की आवाज को महत्त्व है। प्रजातान्त्रिक राजशासन की यह विशेषता है कि वह साधारण जनता वा प्रजा की इच्छाओं, भावनाओं और विचारों को सामने रख कर अपने सारे कार्य्य करता है। जन साधारण की सम्पूर्ण भावनाओं, इच्छाओं और विचारों को जनमत (Public Opinion) कहते हैं। मनुष्यों की रुचियां भिन्न २ होती हैं, उन के विचार भी भिन्न २ होते हैं। विचारों की भिन्नता के कारण देश के अन्दर भिन्न २ राजनैतिक दलों (Political Parties) की स्थापना होती रहती है और यही दल देश के राजशासन सम्बन्धी विषयों पर अपने-अपने विचार प्रगट करते रहते हैं। जनमत का यह अभिप्राय नहीं कि देश के नर-नारी किसी विशेष समस्या पर सहमत हों, न ही देश के बहुमत राजनैतिक दल (majority party) के मत वा विचार को जनमत कह सकते हैं, क्योंकि यह सम्भव है कि बहुमत दल पक्षपात वा स्वार्थ से प्रेरित होकर ऐसा निश्चय कर ले जिससे अल्प संख्यक दल (minority party) वा अन्य राजनैतिक दलों को हानि पहुँचे और उस निश्चय से जनसाधारण का कल्याण न हो। स्पष्ट है कि जनमत का आधार सारी जनता वा प्रजा के कल्याण की भावना हो, स्वार्थ और द्वेष की प्रेरणा न हो। यह तो हर एक मनुष्य जानता है कि देश के सारे मनुष्यों का किसी एक विषय पर एक मत होना असम्भव है, परन्तु उस विषय की मौलिक बातों पर सहमत होना असम्भव नहीं, चाहे उस विषय की विस्तारपूर्वक व्याख्या (details) में मतभेद हो जाये। इस लिए जनमत का अर्थ न तो सारी जनता का मत है, न ही बड़े राजनैतिक दल का मत है, बल्कि जनमत उस मत या विचार को कहते हैं जो कि पूर्णतया सारे

देश की सारी जनता के हित पर आधारित हो। ऐसा मत या विचार एक महानुभाव व्यक्ति का विचार भी हो सकता है, अल्प सख्यक राजनैतिक दल (minority party) का विचार भी हो सकता है और बहुसंख्यक राजनैतिक दल (majority party) का मत भी हो सकता है। यदि देश का राजशासन इन तीनों प्रकार के मतों या विचारों पर ध्यान देकर उस मत को अपनाता है जो सर्व साधारण के सुख और हित के लिए है, तो ऐसा राजशासन अपने देश वालों से न्याय करता है। सम्भव है कि आरम्भ में ऐसे निर्णय को अधिक सहयोग प्राप्त न हो, परन्तु निर्णय के लाभ अनुभव करने पर जनमत उसके पक्ष में हो जायगा।

३. जनमत का संविधान और शासन पर प्रभाव—आज-कल सरकारों पर जनमत का प्रभाव बहुत भारी है। हर प्रकार की सरकार, चाहे वह कितनी ही अनुपयुक्त क्यों न हो, अपने अधिकार के लिए जनमत पर निर्भर है। निरंकुश राजा भी जनमत से घबराते हैं। यही कारण है कि तानाशाही सरकारों में प्रोपेगण्डा (propaganda) और प्रचार पर बहुत अधिक बल दिया जाता है। वर्तमान प्रजातान्त्रिक सरकारें जनता के प्रतिनिधियों द्वारा चलाई जाती हैं और ये सरकारें अपनी नीति (policy) और कानून (laws) को देश की धारा सभाओं मे स्वीकार कराने के लिए जनमत का आश्रय लेती हैं। प्रत्येक प्रतिनिधि की इच्छा होती है कि वह दोबारा चुना जाए। यदि वह कोई कार्य्य जनमत के विरुद्ध करता है तो उसके दोबारा चुने जाने का अवसर कम हो जाता है। इस लिए सब देशों की सरकारें अपने जन-मत का अनुमान लगाती रहती हैं और उसी के अनुसार काम करती रहती हैं। धारा सभा में कोई कानून पास नहीं हो सकता, जिसके पक्ष में अधिक से अधिक वोट प्राप्त न हो सकें। इस लिए सरकार को वे समस्त नीतियां और योजनाएं (policies and schemes) त्याग करनी पड़ती हैं जो जनमत

के विरुद्ध होती हैं। एक अच्छा राजशासन अपनी जनता को सुशिक्षित, जागृत और देश की समस्याओं से परिचित रखने का पूरा २ प्रयत्न करता है। ऐसे राज्य में जनता अपने लाभ और हानि को भली प्रकार समझ सकती है। इसी कारण जनमत शासन सम्बन्धी कार्यों की सफलता में बहुत लाभदायक होता है। सामाजिक और व्यक्तिगत उन्नति के लिए स्वतन्त्रता अनिवार्य है और स्वतन्त्रता को स्थाई रखने के लिए आवश्यक है कि जनसाधारण शासन सम्बन्धी कार्यों से अपरिचित न हो, बल्कि राजनैतिक रूप में जागृत हो, प्रेस और सभा समितियों द्वारा सरकार के कार्यों पर अपना मन्तव्य प्रकाशित करता रहे। इस प्रकार जनमत के प्रकाशन में सरकार और प्रजा दोनों का सहयोग रहता है और देश तथा जाति उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होते रहते हैं।

४. जनमत के संगठन के साधन—हर एक समाज में तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं जो जनमत के निर्माण में सहायक बनते हैं। पहिले प्रकार में नीतिज्ञ, लेखक और विद्वान् सम्मिलित हैं। इस वर्ग के लोग सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विषयों के संबन्ध में अपनी नीति और योजनाएं (policies and schemes) प्रगट करते हैं और अपने मन्तव्य की पुष्टि में युक्तियां उपस्थित करते हैं। दूसरे प्रकार के वे लोग हैं जो पहिले प्रकार के लोगों की नीतियों और योजनाओं का निरीक्षण करके उसमें परिवर्तन और संशोधन करते हैं। तीसरे प्रकार में सर्वसाधारण जनता सम्मिलित है। ये प्रायः अनभिज्ञ होते हैं और भेड़चाल वाली लोकोक्ति को चरितार्थ करते हैं। ऐसे लोगों के सम्बन्ध में जनमत के निर्माण और प्रचार के लिए बड़े २ साधनों की आवश्यकता होती है। उनमें से कुछ साधनों का वर्णन नीचे किया जाता है—

(१) प्रेस (Press)—जनमत के निर्माण और प्रकाशन का सब से अधिक शक्तिशाली साधन समाचार पत्र हैं। समाचार पत्र लोगों को

सामयिक घटनाओं (current events) का समाचार देते हैं और सम्पादकीय लेखों (editorial articles) में उन पर समालोचना की जाती है। इन समाचारों और लेखों का प्रभाव पढ़ने वालों के मन पर पड़ता है और इस प्रकार जनमत का निर्माण होता रहता है। प्रेस का प्रभाव सामाजिक और आर्थिक जीवन पर इतना अधिक पडता है कि प्रेस को सरकार का चौथा अंग गिना जाता है।

प्रेस के इतने महत्वपूर्ण होने के कारण समाचार-पत्रों के संचालकों से आशा की जाती है कि वे ठीक २ समाचार प्रकाशित करें, इन पर समालोचना भी निष्पक्ष होकर करें और अपने उत्कृष्ट ज्ञान व अनुभव से साधारण जनता को ठीक मार्ग का प्रदर्शन करें। कई समाचार पत्र अपने दल के समाचारों को बढा चढा कर लिखते हैं और दूसरे दलों के सम्बन्ध में समाचारों को तोड़ फोड कर लिखते हैं। ऐसा करना सत्याचरण और सद् व्यवहार के विरुद्ध है और देश तथा जाति से द्रोह है।

यदि प्रेस अपना कर्त्तव्य दियानतदारी से पूरा करता है तो उसकी स्वतन्त्रता पर किसी प्रकार की बाधा नहीं होनी चाहिये। प्रेस न केवल सरकार के नियन्त्रण से स्वतंत्र हो बल्कि धनिक वर्ग की दलबन्दी से भी विमुक्त हो। प्रेस को आज्ञा दी जाय कि वह सरकार के कार्य्यों की स्वतंत्रता के रूप से कटु-आलोचना करे और आलोचना करते समय साधारण जनता के हित को ध्यान में रखे। प्रेस धनाढ्य लोगों के चंगुल में फंसा हुआ न हो। धनाढ्य और पूंजीपतियों के अधीन होकर प्रेस केवल अपने स्वामियों की भलाई के समाचार प्रकाशित करते हैं और साधारण जनता के हित को उपेक्षा कर जाते हैं। ऐसा करना न केवल अनुचित है, बल्कि अधर्म और अन्याय है।

(२) दल प्रचार (Party Propaganda)—हर एक देश में कई राजनैतिक दल होते हैं जो अपने २ दल के उद्देश्यों, कर्तव्यों आदि की व्याख्या भाषण, समाचार-पत्र और छोटी पुस्तकों द्वारा करते हैं। प्रत्येक दल के सदस्य निर्वाचन से कुछ समय पूर्व देश के कोने २

में जाते हैं, सभाओं का आयोजन करते हैं और देश की आर्थिक तथा राजनैतिक दशा पर अपने विचार प्रकट करते हैं। ये लोग अपने २ दल के उद्देश्यों और कार्यक्रम (aims and programme) को जनता के सामने रखते हैं, उनको अपने अधिकारों और कर्तव्यों से परिचित करते हैं और इस प्रकार देश के अन्दर जनमत के निर्माण में बड़ी सहायता देते हैं।

नोट—राजनैतिक दलों के निर्माण, ध्येय, गुण और हानियों का वर्णन इसी अध्याय के अन्दर किया गया है।

(३)धार्मिक संस्थाएं (Religious Institutions) मनुष्य केवल पेट भर कर सुखी नहीं होता, बल्कि इस को मानसिक और आत्मिक आहार की भी आवश्यकता पड़ती है। इन आवश्यकताओं को केवल धार्मिक संस्थाएं, ऋषि, मुनियों और विद्वान् पूर्वजों के बनाए हुए ग्रन्थ पूरा करते हैं। प्राचीन काल में धार्मिक संघों का मनुष्य के सामाजिक और नैतिक जीवन पर बड़ा प्रभाव रहा है। यद्यपि विज्ञान के विकास के साथ २ धर्ममत (मजहब) का प्रभाव कम हो रहा है, फिर भी अभी तक जनमत के निर्माण में मज़हब का बड़ा भारी हाथ है। मज़हब का प्रभाव अच्छा भी पड़ता है और बुरा भी। यदि मज़हब मनुष्य मात्र मे सद्गुणों का संचार करता है, सहानुभूति, उदारता और सहयोग के पाठ पढ़ाता है और मानव सन्तान को समानता और बन्धुता के सूत्र में पिरोता है तो इस का प्रभाव नागरिक जीवन को स्वर्गीय जीवन बनाता है। धार्मिक संस्थाओं के आचार्यों, संचालकों और नेताओं की प्रत्येक बात पर सीधे सादे लोग बड़ा विश्वास करते हैं, इस लिए इन संस्थाओं का यह सच्चा कर्तव्य होना चाहिए कि वह देश के सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन की उन्नति करने में सहयोग दें।

(४) शिक्षण संस्थाएं (Educational Institutions)—स्कूल कालेज आदि संस्थाएं देश के बालकों के विचारों को जैसा चाहें बना सकती हैं। आज के बालक कल के नागरिक होंगे और इस

सम्बन्ध में सब शिक्षण संस्थाओंका यह परम कर्तव्य-हो जाता है कि वे अपने देश के बालकों और युवकों के कोमल हृदयों पर व्यक्तिगत, सामाजिक और राजनैतिक जीवन के सम्बन्ध मे उच्च विचार अङ्कित करें। तर्क और ज्ञान सम्बन्धी मत का निर्माण केवल इन संस्थाओं के भीतर होता है, जहां आचार्य तथा शिष्य प्रति घड़ी और प्रतिक्षण कक्षा के कमरों में, व्याख्यानों में, वाचनालयों और पुस्तकालयों में एक दूसरों से मिलते रहते और विचारों का आदान प्रदान करते है। कई महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में ऐसे विभाग होते हैं जहां केवल राजनीति की शिक्षा दी जाती है। इस विभाग के आचार्यों का उत्तरदायित्व-बढ़ जाता है और ये लोग देश के युवकों को अपने देश की सेवा के सच्चे साधन पढ़ा सकते हैं और इस प्रकार देश के राजनैतिक जनमत को लाभदायक बना सकते है।

(५) भाषण (platform)—सभाओं में सुने हुए उपदेशों, व्याख्यानों, विषयों के प्रतिपादन, खण्डन-मण्डन और वाद-विवाद से जनता के विचारों में विकास और परिवर्तन होता है। सत्यार्थी, देश हितैषी और ज्ञानी वक्ता अपने विचारों से देश के जनमत का निर्माण भली भांति कर सकते हैं और नागरिक और राजनैतिक जागृति से देश की अवस्था सुधार सकते हैं। जब महात्मा गांधी सीधी सादी बातें अपने सरल भाषण में कहते थे तो इन का प्रभाव सुनने वालों के हृदयों पर बड़ा भारी पड़ता था। पं० मदनमोहन जी मालवीय ने अपनी भाषण-शक्ति द्वारा राजाओं, महाराजाओं और साधारण जनता से धन एकत्रित करके बनारस विश्वविद्यालय की स्थापना की। अत: प्लेटफार्म जनमत के निर्माण में एक बड़ा शक्तिशाली शस्त्र है और देश के सामाजिक और राजनैतिक वातावरण को ठीक बनाए रखने में इस का सदुपयोग करना चाहिए।

(६) रेडियो और सिनेमा (Radio and Cinema)—देश में जागृति उत्पन्न करने, बौद्धिक तथा मानसिक विकास करने के लिए

रेडियो और सिनेमा अच्छे साधन बन सकते हैं। इन के द्वारा मनो-विनोद के अतिरिक्त ज्ञान प्राप्ति भी पर्याप्त हो जाती है। देश के जीवन को सुखी और उन्नत करने के लिए इन कलाओं की सहायता ली जा सकती है। दोनों कलाओं को ऐसे ढंग से चलाया जाए, जिस से देश का आचार और व्यवहार उन्नत हो जाए।

(७) व्यवस्थापिका सभाएं (Legislative Assemblies)- व्यवस्थापिका सभाओं में सभी प्रकार के विचार वाले होते हैं और उन के भाषण समाचार पत्रों में छपते हैं। साधारण जनता उनके भाषणों को सुनती है, लेखों को पढ़ती है, और उन की बुद्धिमत्ता और विचार वैचित्र्य से प्रभावित होती है। व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों के भाषण और समाचार पत्रों में उन पर आलोचना (critioism) साधारण जनता के अन्दर नागरिक तथा राजनैतिक (civil and political) जागृति उत्पन्न करते हैं।

(ख) राजनैतिक दल (Political Parties).

१. राजनैतिक दल की आवश्यकता और उत्पत्ति—किसी विषय के सम्बन्ध में सारे मनुष्यों के विचार एक जैसे नहीं होते। राजनैतिक कार्यों पर विभिन्न विचारों के कारण जनता भिन्न भिन्न समूहों में विभक्त हो जाती है, इस कारण दलों की उत्पत्ति का बड़ा कारण विचारों की विभिन्नता है। सारे प्रजातान्त्रिक देशों में राजनैतिक दल पाए जाते हैं और प्रजातान्त्रिक राजशासन के आरम्भ होने के साथ ही इन दलों की उत्पत्ति होती जाती है। भारत में तो अभी प्रजा-तान्त्रिक राजशासन का नाम मात्र ही सुना जा रहा था कि इण्डियन नेशनल कांग्रेस नामक राजनैतिक दल की स्थापना १८८५ ई० में हुई थी। इस दल के बलिदानों और महान् कार्यों का इतिहास महान् और उज्ज्वल है और आज स्वतन्त्र भारतवर्ष के राजशासन की बागडोर इसी दल के नेताओं के हाथ में है। इस दल के अतिरिक्त सोशलिस्ट

पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी आदि राजनैतिक दल भारतवर्ष में काम कर रहे हैं।

राजनैतिक दल की परिभाषा—राजनैतिक दल ऐसे व्यक्तियों का समूह होता है, जो किसी विशेष राजनैतिक सिद्धान्त में विश्वास रखते हों, अथवा राजनैतिक दल एक संगठित संघ होता है जिस का उद्देश्य किसी विशेष देश के राजशासन को अपनी इच्छा के अनुसार चलाना होता है। इस संघ के सदस्य प्रायः एक ही विचार और एक ही ध्येय को ध्यान में रख कर काम करते हैं। एक नीतिज्ञ ने विस्तार पूर्वक राजनैतिक दल की व्याख्या इस प्रकार की है—"राजनैतिक दल कुछ व्यक्तियों के उस समूह को कहते हैं जिन का दृष्टिकोण अपने देश के वर्तमान राजनैतिक विषयों पर एक सा होता है और वे सब इस लिए संगठित होते हैं कि देश के राजशासन को अपने विचारों के अनुसार चलावें वा देश के राजशासन में अपने विचारों के अनुसार परिवर्तन लावें।

३. विसंवादी गुट की परिभाषा——राजनैतिक दल प्रायः अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये शान्ति-मय और वैधानिक साधनों का प्रयोग करते हैं और व्याख्यानों तथा समाचार पत्रों द्वारा अपने विचारों की पुष्टि में जन साधारण की सहायता और सहयोग की प्राप्ति का प्रयत्न करते हैं। यदि कोई दल देश में प्रचलित विधान की आज्ञाओं को भंग करके झगड़ा फ़िसाद करता है, देश की शांति और व्यवस्था में बाधा डालता है और बल के प्रयोग से लोगों को अपने साथ मिलाने का यत्न करता है तो ऐसे दल को राजनैतिक दल कहना अनुचित है। ऐसे गड़बड़ करने वाले दल को विसंवादी गुट (faction) कहते हैं। ऐसे दल के सदस्यों को अपने उद्देश्य का पूरा ज्ञान नहीं होता और वह केवल स्वार्थ के वश होकर अनुचित साधनों से काम लेते हैं।

४. दल और गुट में अन्तर—दल के सदस्य किसी विशेष

राजनैतिक ध्येय की प्राप्ति के लिए जन साधारण की विचारधारा को वैधानिक उपायों से बदलने का यत्न करते हैं, सदाचार और सद्-व्यवहार को नहीं छोड़ते और अन्तःकरण से देश की उन्नति में भाग लेते हैं। इसके विपरीत गुट (faction) में अविश्वासपात्र और स्वार्थी व्यक्ति सम्मिलित होते हैं, जिन का राजनैतिक आदर्श स्पष्ट नहीं होता, और जो केवल मात्र स्वार्थ सिद्धि के लिए उचित अनुचित साधनों का प्रयोग करते हैं। अपने विरोधी दलों से सिरफुटौवल पर उतर आते हैं और देश के शान्त वातावरण को क्षुब्ध करते हैं। जहां राजनैतिक दल देश के राजशासन में परिवर्तन केवल जन-साधारण के हित के लिये करते हैं, वहां निस्वार्थी गुट राजशासन को हथिया कर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं और देश को अधोगति की ओर ले जाते हैं। एक नीतिज्ञ ने दल और गुट के अन्तर को संक्षिप्त रूप में इस प्रकार वर्णन किया है—दल तो सिरों की गणना द्वारा ध्येय को प्राप्त करता है और गुट सिरों को तोड़ फोड़ कर अपना स्वार्थ सिद्ध करने का प्रयत्न करता है। इस भाषण का अभिप्राय यह है कि दल शांतिमय उपायों से जन साधारण के विचारों को अपने अधिकार में करने का प्रयत्न करते हैं, म्युनिसिपल बोर्ड तथा धारा सभा के चुनावोंने अपने आदमियों के लिए अधिक से अधिक मत (वोट) प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। इसके विपरीत गुट वाले दंगा फिसाद करके अज्ञानी और निरपराध लोगों के 'सरफुटौवल' के साधन पैदा करते हैं।

५. राजनैतिक दल के कर्तव्य—राजनैतिक दलों का आवश्यक कर्तव्य यह है कि वह साधारण जनता में राजनैतिक जागृति उत्पन्न करें, नागरिकों को कर्तव्यों और अधिकारों की शिक्षा दें और जनमत (public opinion) को संगठित करें। प्रजातन्त्र राज्य में राज-नैतिक दल बहुत लाभदायक होते हैं, यदि वे राज्यशासन के कार्यों की आलोचना निष्पक्ष रूप से करें। प्रजातन्त्र राज्य में वह दल राज्य शासन करता है, जिसको लोगों की सब से अधिक सहायता प्राप्त

होती है, जिस के सदस्य किसी व्यवस्थापक चुनाव में अधिक संख्या में चुने जाते हैं अर्थात् जिनको राजनैतिक बहुमत (political-majority) प्राप्त होती है। उस दल के नेता और सदस्य देश के राजशासन का प्रबन्ध करते हैं और देश की सरकार कहलाते हैं। दूसरे दल को विरोधी पक्ष (opposition) कहते हैं। विरोधी पक्ष सरकार के कार्यों का निरीक्षण करता रहता है। इस निरीक्षण तथा आलोचना के भय से सरकार अपने कार्यों को भली भांति करती रहती है। प्रत्येक दल बहुमत की प्राप्ति के लिए निम्न लिखित कार्यों को करता रहता है—

(१) प्रत्येक दल अपनी नीति और ध्येय को सुन्दर और स्पष्ट शब्दों में प्रकाशित करता है, और प्रचार द्वारा अधिक से अधिक प्रसिद्धि (publicity) देता है।

(२) किसी संस्था के चुनाव से बहुत समय पूर्व राजनैतिक प्रचार (Political Propaganda) समाचार पत्रों, घोषणाओं, सूचनाओं, व्याख्यानों, सभाओं, तथा प्रदर्शनों द्वारा किया जाता है। अपने सिद्धान्तों की विशेषता और दूसरे सिद्धान्तों की हीनता को जनता के सामने रखा जाता है।

(३) मतदाताओं को अधिक से अधिक संख्या में अपने दल का सदस्य बनाया जाता है, और मतदाताओं की सूची में उनका नाम लिखवाया जाता है, ताकि आगामी चुनाव में भाग ले सकें।

(४) जिन २ पदों का निर्वाचन होना है, उनके लिए अपने दल के योग्य प्रार्थी (candidates) खड़े किए जाते हैं और दल के सदस्यों तथा अन्य लोगों को उन प्रार्थियों को वोट देने के लिए बाध्य किया जाता है।

(५) निर्वाचन (चुनाव) लड़ने के लिए धन एकत्रित किया जाता है, साधारण जनता को अपने सिद्धान्तों से परिचित किया जाता है, और निर्वाचन के स्थानों पर मतदाताओं को बड़े आदर और सम्मान

से पहुँचाने का प्रबन्ध किया जाता है।

(६) यदि निर्वाचन में बहुमत प्राप्त हो जाए तो देश के शासन के लिए अपने दल के योग्य सदस्यों को उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया जाता है और जनता से की गई प्रतिज्ञाओं को पूर्ण करने के साधन अपनाए जाते हैं। यदि बहुमत प्राप्त न हो और विरोधी पक्ष (opposition) में काम करना पड़े तो सरकार के कार्यों की निरन्तर आलोचना की जाती है, और समय २ पर सरकार को सतर्क किया जाता है (Warning is given) और यदि बहुदल सरकार साधारण हित के कार्यों में प्रमाद करती है तो अविश्वास का प्रस्ताव (Vote of No-confidence) भी उपस्थित किया जाता है।

इससे स्पष्ट है कि प्रजातांत्रिक राजशासन राजनैतिक दलों की सहायता से अच्छे से अच्छा बनाया जा सकता है, यदि सरकारी दल और विरोधी दल दोनों दयानतदारी और जनता की सेवा के भाव से प्रेरित होकर काम करें।

६. दलबन्दी के लाभ—(१)राज्य की सीमाएं दूर २ तक फैली हुई होती हैं और अधिकांश जन संख्या छोटे २ गांवों तथा देश के कोनों में पाई जाती है। इसलिए प्रायः जन संख्या सामयिक घटनाओं (current events) से अपरिचित होती है, इस कारण देश के हित और अहित की समस्याओं में भाग नहीं ले सकती। दल बन्दी की संस्था से साधारण जनता में राजनैतिक जागृति बड़ी सरलता से आ जाती है। प्रत्येक दल के प्रचारक देश के कोने २ में पहुँच कर अपनी पार्टी के ध्येय के महत्व से मतदाताओं को सूचित करते हैं और अपने दल के प्रार्थियों के लिए मतों की याचना करते हैं।

(२) दल बन्दी के कारण बहुत से उदासीन (apathetic) नागरिक भी देश के हित के कार्यों में भाग लेने पर विवश हो जाते हैं। जब विभिन्न दलों के प्रचारकों की ओर से सामाजिक तथा राजनैतिक विषयों के सम्बन्ध में उनके मत का महत्व उनके हृदय-पर अंकित किया

जाता है और समझाया जाता है कि हर एक व्यक्ति योग्य प्रार्थी को मत प्रदान करके देश की सच्ची सेवा कर सकता है।

(३) प्रजातांत्रिक राजशासन को स्थायी बनाने के लिए दल का संगठन अति आवश्यक है। किसी भी दल वाली सरकार (Party Government) निश्चिन्त होकर काम नहीं कर सकती जब तक धारा सभा में उसे बहुमत प्राप्त न हो, *सरकारी दल और विरोधी दल की संख्या में पर्याप्त अन्तर न हो*। थोड़े अन्तर की अवस्था में सरकारी दल (Government Party) निर्भय होकर कोई काम नहीं कर सकता।

(४) दलबन्दी के कारण किसी देश की सरकार में मनमानी चलाने का अवसर कम हो जाता है। विरोधी दल की आलोचना के भय से सरकारी दल हर एक काम को सोच समझ कर करता है और सरकार के अधिकारियों और कर्मचारियों को मन-मानी करने से रोकता है। घूस, पक्षपात और बेईमानी (Corruption, Favouritism and Dishonesty) आदि दुर्गुणों से राजशासन को बचाने का पूरा २ प्रबन्ध किया जाता है।

(५) सरकारी दल अपना बहुमत बनाए रखने के लिए प्रायः लोक सेवा के कार्यक्रम (Programme of Public Service) को हाथ में लेकर अपने दल को सर्वप्रिय (popular) बनाने का यत्न करता है। इस का परिणाम जहां दल के लिए लाभदायक होता है, वहां देश के जन साधारण की शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक अवस्था भी उन्नत हो जाती है।

७. दलबन्दी की हानियां—(१) राजनैतिक दलों की संख्या यथासम्भव थोड़ी होनी चाहिए। प्रायः दो दल सरकारी दल और विरोधी दल पर्याप्त होते हैं। यदि दलों की संख्या बढ़ जाए तो देश में स्थायी सरकार (Permanent Government) नहीं होती और अस्थायी सरकार जनता के हित के कार्यक्रम को हाथ में नहीं ले सकती।

(२) जनता के राजनैतिक दलों में विभक्त होने के कारण देश में दल पक्षपात (party spirit) का रोग फैल जाता है और लोग दल-भक्ति की वेदी पर देश भक्ति को निछावर कर देते हैं। दल के पक्ष को उन्नति देने के लिये ऐसे अनुचित कार्य करने लग जाते हैं जिन से देश को हानि होती है।

(३) कभी २ दलबन्दी व्यक्तिगत शत्रुता का रूप धारण कर लेती है, अर्थात् एक दल के नेता का दूसरे दल के नेता से किसी अन्य कारण से वैर होता है, परन्तु वे इस शत्रुता और ईर्ष्या के विष को अपने दल के लोगों में भर देते हैं। इस से एक दल दूसरे दल के अच्छे कामों को भी बुरा बतलाने में संकोच नहीं करता। प्रत्येक दल अपने कार्य्य क्रम को सराहता है और दूसरे दल के कार्य्यक्रम की निन्दा करता है। इस व्यर्थ के वादविवाद में पर्याप्त समय, परिश्रम, शक्ति, और धन का नाश होता है और जनता अपने मत का सदुपयोग नहीं कर सकती।

(४) दलबन्दी में व्यक्तित्व (individuality) का सर्वनाश हो जाता है, दल के प्रत्येक सदस्य को दल के कार्य्य क्रम के अनुसार काम करना पड़ता है। अपने दल के नियन्त्रण में रहना पड़ता है, अपने निजी विचारों को दबाना पड़ता है। इस प्रकार व्यक्ति के स्वतन्त्र विचारों का विकास बन्द हो जाता है। इस कारण कभी कभी बहुत योग्य व्यक्ति ऐसे दलों से पृथक् रहते हैं और देश उनकी योग्यता से लाभ नहीं उठा सकता।

(५) दल पक्षपात कभी २ बड़ा भयानक और घृणित रूप धारण कर लेता है। दल बन्दी के कारण अन्य दल के अथवा स्वतन्त्र विचारों वाले योग्य से योग्य व्यक्ति को भी सेवा से पृथक् कर दिया जाता है और उसके स्थान पर अपने दल के अयोग्य और अकर्मण्य व्यक्ति सरकारी पदों पर नियुक्त किए जाते हैं। इस से राजशासन में घूस, बेईमानी और ईर्ष्या आदि दुर्गुण प्रवेश कर जाते हैं और देश को हानि पहुँचती है।

(६) वोटों की प्राप्ति के लिए कभी२ साधारण लोगों की अनुचित चाटुकारी (flattery) की जाती है और उनको कई प्रकार के प्रलोभन दिए जाते हैं। इस प्रकार देश के सदाचार और शिष्टाचार को बड़ी ठेस लग जाती है, देश का राजशासन निर्बल हो जाता है और समूचे देश का गौरव कम हो जाता है।

८. दलबन्दी के सुधार के साधन --इसमें सन्देह नहीं कि दलबन्दी में कई त्रुटियां हैं, परन्तु इसके लाभ त्रुटियों को अपेक्षा बहुत अधिक हैं। दलबन्दी की त्रुटियां सरलता से दूर हो सकती हैं, यदि देश के अन्दर नागरिक शिक्षा का भली भांति प्रचार किया जाए, लोगों को देश और जाति के प्रति अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान कराया जाए और मनुष्य जीवन के उद्देश्य का महत्व लोगों के मन पर अंकित किया जाए। प्रजातान्त्रिक राजशासन का संचालन बिना दलबन्दी के असम्भव तथा निरर्थक हो जाता है। जब मनुष्यों के स्वभाव और प्रवृत्तियां भिन्न २ हैं, तो उनका विभिन्न दलों में विभक्त होना अनिवार्य है परन्तु दलों के नेता और सर्वेसर्वा में दयानतदारी, सच्चाई, देशभक्ति निःस्वार्थ सेवा आदि सद्गुणों का होना अति आवश्यक है। नागरिकों में सद्गुणों का संचार देश की शिक्षा प्रणाली पर निर्भर है : देश का शिक्षा प्रबन्ध परम-उच्च श्रेणी का होना चाहिए। विभिन्न दलों के लोगों का जातीय चरित्र (national character) उच्चकोटि का हो, और जनमत (public opinion) सुशिक्षित और वास्तविक हो। यदि देश की शिक्षा और प्रचार सुधर जाएं तो विभिन्न दलों के अन्दर काम करने वाले व्यक्ति भी सदाचार के स्वामी होंगे, देश के सच्चे सेवक होंगे और दलबंदी का परिणाम भी देश के हित में लाभदायक सिद्ध होगा।

Questions (प्रश्न)

1. What is public opinion ? How is public opinion formed and expressed ?

जनमत का अभिप्राय क्या है ? जनमत का निर्माण किस प्रकार होता है और इसके प्रकट करने के साधन क्या है।

2. Write an essay on, "The influence of the press on public activity"

निम्नलिखित विषय पर निबन्ध लिखो—

"प्रकाशन (press) का जनता के कार्यों पर प्रभाव"

3. Describe the influences which shape publ ic opinion, what is the role of public opinion under a democratic government ?

उन प्रभावों को वर्णन करो जो जनमत का निर्माण करते हैं। प्रजातांत्रिक राज्यशासन में जनमत का काम क्या है ?

4. Define a political party and discuss its main functions in a modern state.

राजनैतिक दल की परिभाषा करो और समझा कर लिखो कि आधुनिक राज्य में राजनैतिक दलों का कर्तव्य क्या है ?

5 Distinguish between a faction and a political party, what are the merits and demerits of the party system?

गुट और दल का अंतर लिखो ? दलबंदी के गुण और अवगुण विस्तार पूर्वक वर्णन करो ?

6. What part do political parties play in the work of the state and the awakening of the citizens ?

राजनैतिक दल राज्य के कार्यों और नागरिकों की जागृति में किस प्रकार का और क्या भाग लेते हैं ?

7. What are the chief agencies that would mould public opinion on modern lines ? Discuss the

the strength and limitations of these agencies.

जनमत के निर्माण के साधन कौन से हैं ? इन साधनों की शक्ति और सीमा की व्याख्या करो ।

पन्द्रहवां अध्याय

राष्ट्रवाद, साम्राज्यवाद और अन्तर्राष्ट्रवाद
(Nationalism, Imperialism & Internationalism

१. राष्ट्रवाद–Nationalism

१. राज्य (State)—समाज, संघ और राज्य के अर्थ और उद्देश्य पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। इन तीनों संस्थाओं का निर्माण केवल मनुष्य जीवन के विकास और सुख के लिए किया जाता है और इनकी उपयोगिता का अनुमान भी इस बात से किया जाता है कि वे संस्थाएं किस सीमा तक मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में सहायक हैं। यह बात भी प्रसिद्ध है कि मनुष्य सामाजिक जीव है, और उसके व्यक्तित्व का विकास केवल समाज और उसके अन्तर्गत विभिन्न संघों द्वारा किया जाता है। राज्य समाज के अन्दर बड़ा महत्वपूर्ण संघ है जो मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास और उसके अधिकारों और कर्तव्यों के सदुपयोग के साधनों का प्रबन्ध करता है। राज्य के संगठन, उस के अंगों और कर्तव्यों की व्याख्या भी पिछले अध्यायों में विस्तारपूर्वक की गई है परन्तु इस स्थान पर केवल इतना बताना उचित होगा कि राज्य किसी विशेष भूमिखंड में रहने वाले लोगों का राजनैतिक संगठन होता है जो उनके सुखपूर्वक जीवन का प्रबन्ध करता है, और ऐसी स्थिति बनाए रखता है जिस में हरेक व्यक्ति को अपने विकास के पूरे अवसर मिलते हैं। अतः राज्य की सरकार राज्य में शान्ति, सुरक्षा न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, स्वास्थ्य, सफाई, खेती, सिंचाई, उद्योग, व्यापार, यातायात के साधनों आदि का पूरा२ प्रबन्ध करती है और अपने नागरिकों के व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक जीवन को उन्नत करती रहती है।

२. राष्ट्र (Nation)—इस अध्याय में एक नये विषय पर विचार करते हैं, जिसका राज्य संघ के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। वह विषय राष्ट्र (Nation) है। राष्ट्र उन मनुष्यों का संघ है, जिनमें एक साथ रहने की इच्छा होती है, जो संगठित होकर अपनी उन्नति में विश्वास रखते हैं, अनेक भाषाओं और धर्ममतों के होते हुए भी परस्पर प्रेम और सहानुभूति रखते हैं, जिनको कई राजनैतिक समस्याएं समान होती हैं और देश तथा राज्य पर आने वाली आपत्तियों का मिलकर सामना करते हैं। जिस राष्ट्र के लोग एक भूमिखण्ड में रहते हैं, एक ही भाषा बोलते हैं, एक ही वंश या जाति के होते हैं, एक ही सभ्यता या रिवाज रखते हैं, और एक ही प्रकार का रहन-सहन रखते हैं, वह राष्ट्र दृढ़ गिना जाता है और राष्ट्र पर आने वाली आपत्तियों का सामना भली भान्ति कर सकता है।

३. राज्य और राष्ट्र में अन्तर—चौथे अध्याय में राज्य की परिभाषा और इसके आवश्यक अंगों-भूमि, जनता, सरकार और स्वतन्त्रता-का वर्णन किया गया है और बताया गया है कि राज्य के अस्तित्व के लिए ये चारों अंग अनिवार्य हैं। राष्ट्र में भी ये चारों बातें पाई जाती हैं और इसके अतिरिक्त वहां भाषा, सभ्यता, धर्म आदि की समानता भी राष्ट्र पुष्टि के लिए आवश्यक है। राज्य केवल राजनैतिक संगठन है और इस का सम्बन्ध भूमि से आवश्यक है। अगर भूमि नहीं तो राज्य नहीं। राष्ट्र और राज्य की भौगोलिक सीमाएं एक ही होतीं हैं। यूरोप में स्पेन और पुर्तगाल एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, उनकी भाषा और धर्म भी एक है और साठ वर्ष से एक राज्य के अधीन रह चुके हैं, परन्तु वे एक राष्ट्र नहीं बल्कि दो राष्ट्र हैं। स्विटज़रलैंड राज्य में तीन राष्ट्रों या जातियों के लोग रहते हैं।

४. राष्ट्रीयता (Nationalism)—राष्ट्र को संगठित, शक्तिशाली और उन्नत करने के लिए आवश्यक है कि राष्ट्र के सदस्य परस्पर प्रेम, सहानुभूति, स्वार्थ-त्याग, सहयोग आदि सद्गुणों से भूषित हों

और अपनी राष्ट्रीयता के लिये हर प्रकार का बलिदान करने को तैय्यार हों। राष्ट्र के सदस्यों के भीतर ऐसी विचारधारा और मनोवृत्ति को राष्ट्रीयता (Nationalism) कहते हैं। राष्ट्रीयता एक पवित्र विचारधारा है, जिससे राष्ट्र की पुष्टि और वृद्धि होती है और इस के विकास से देशवासियों के सुख और सम्पत्ति में उन्नति होती है और मनुष्य मात्र का भी भला होता है। इस भावना के कारण राष्ट्र में एकता रहती है और राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति अपने देश और राष्ट्र पर तन, मन, धन निछावर कर देता है। राष्ट्रीयता से प्रभावित होकर मनुष्य स्वार्थ का त्याग कर देता है और कष्ट उठाने में आनन्द अनुभव करता है यदि ऐसा करने से उसके राष्ट्र और राष्ट्र के सदस्यों का भला होता है। धीरे २ यह मनोवृत्ति देशभक्ति में बदल जाती है और देशभक्त अपने देश की स्वतन्त्रता को स्थिर रखने के लिए हजारों कष्ट उठाता है और प्रसन्न रहता है।

५. राष्ट्र (Nation) का वंश या जाति (Race) से कोई संबंध नहीं और न ही राष्ट्र का अभिप्राय राज्य (State) है, बल्कि राष्ट्र राज्य से कुछ अधिक है। राष्ट्रवादी (Nationalists) विभिन्न राष्ट्रों की विशेष रीतियों (traditions) और संस्कृतियों (cultures) के विकास और उन्नति के समर्थक हैं। उनके विचार के अनुसार मनुष्यों के प्रत्येक विशेष समूह में कुछ विशेष लक्षण (quality) या सभ्यता होती है, जिसकी रक्षा मनुष्य मात्र की भलाई के लिये आवश्यक है। परन्तु यह रक्षा केवल उस अवस्था में सम्भव है जब कि वह समूह अपने संविधान (Constitution) और संस्थाओं (Institutions) के विकास में स्वतन्त्र हो। अर्थात् हर एक शुद्ध राष्ट्रीय समूह को राजनैतिक रूप में स्वतन्त्र होना चाहिये। परन्तु यह राष्ट्रीय भाव संकुचित (exclusive) न हो बल्कि विभिन्न राष्ट्रों के परस्पर सम्बन्ध प्रेम पूर्वक हों, क्योंकि ऐसे

आचरण में ही विभिन्न राष्ट्रों की अपनी उन्नति और सारे जगत की उन्नति और शान्ति का रहस्य छुपा हुआ है।

६. राष्ट्रवाद के अनुसार नागरिकों का कर्तव्य किसी राजा व सरकार की भक्ति के स्थान पर अपने राष्ट्र की भक्ति हो जाता है। जिन लोगों के भाव, विचार, व्यवहार आदि एक जैसे होते हैं, वे लोग अपनी इच्छा से एक ऐसा समूह बना लेते हैं, जो राजनैतिक रूप में स्वतन्त्र हो। इस समूह वा राष्ट्र के सदस्य अपनी सरकार के स्वरूप का स्व निर्णय करते हैं, अपने शासन अधिकारी स्वयं चुनते हैं और अन्य समूहों अथवा राष्ट्रों से अपना अस्तित्व स्थिर रखने का प्रयत्न करते हैं। हर एक राष्ट्र को अपने अपने अस्तित्व को स्थिर रखने के अधिकार को आत्म-निर्णय (Self-determination) कहते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप में इसका प्रचार विशेष रूप में हुआ। सन् १९१४-१८ ई० के महान् युद्ध में राष्ट्रों के आत्म-निर्णय का अधिकार (Right of Self-determination of Nations) अंग्रेजों और इनके साथियों के प्रचार का सिंह नाद (Slogan of propaganda) बन गया और परिणाम यह हुआ कि युद्ध की समाप्ति पर सारा यूरोप छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। आत्म निर्णय के सिद्धान्त के सीमा से अधिक प्रयोग का परिणाम बहुत बुरा निकला। युद्ध की समाप्ति पर तत्काल ही जर्मनी में हिटलर ने जर्मन -वंशवाद (German Racialism) का प्रचार किया और अपने देशवासियों में ये भाव भरे कि केवल जर्मन वंश (German Race) ही दुनिया पर शासन करने के योग्य है। उसने जर्मन नवयुवकों को युद्ध के लिये तैयार किया और धीरे-धीरे आस-पास के राष्ट्रों को हड़पना आरम्भ किया और इसी प्रकार द्वितीय महायुद्ध सन् १९३९-४५ ई० की नींव रखी। इस महायुद्ध में जो विनाश हुआ, उसके धक्के से अभी तक दुनिया नहीं सम्भल सकी।

७. राष्ट्रवाद के लाभ—राष्ट्रवाद के प्रचार ने यूनान के प्राचीन स्वराज्य के आदर्श (Ideal of Autonomy) अर्थात् लोगों के आत्मनिर्णय के अधिकार (Right of All People to Self-determination) को पुनर्जीवित किया और पराधीनता के अन्याय को नंगा किया। अल्पसंख्यक जातियां (Minorities) इस सिद्धान्त के प्रयोग से अपने आप को बहुसंख्यक जातियों (Majorities) के अत्याचार से मुक्त होने का प्रयत्न करती हैं और बहुसंख्यक जातियां अल्प संख्यक जातियों को अपने भीतर लीन करने का प्रयत्न करके राष्ट्रीय एकता को प्राप्त करती हैं। कुछ लेखक आत्मनिर्णय के अधिकार का राष्ट्रीयता से कोई संबन्ध नहीं मानते और उनके विचारानुसार उन देशों के अतिरिक्त, जहां केवल एक विशेष समूह (Distinct Group) निवास करता है, अमरीका और स्विट्ज़रलैण्ड में, जहां कई विभिन्न विशेष समूह निवास रखते हैं, स्वतन्त्रता अधिक है—और इस प्रकार वे राष्ट्रीयता को राजनैतिक संगठन से पृथक समझते हैं। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के अतिरिक्त राष्ट्रीयता के प्रचार से कला और साहित्य (Art and Literature) में बड़ी उन्नति हुई है। इसके प्रचार से विभिन्न राष्ट्रीय राज्यों (Nation-States) में आर्थिक उन्नति के क्षेत्रों में स्वस्थ स्पर्धा [Healthy rivalry] के भाव उत्तेजित हो गये और हर एक राष्ट्र अपनी मनोवृत्ति और प्रकृति के अनुसार विशेष कलाओं और सभ्यता का विकास करता है और इस प्रकार मनुष्य मात्र के सुख और उन्नति के साधनों में वृद्धि होती है।

८. राष्ट्रवाद की हानियाँ—राष्ट्रवाद पर बड़ा भारी आक्षेप यह किया जाता है कि इसके प्रचार से राष्ट्र (Nation) का राजनैतिक दृष्टिकोण संकुचित हो जाता है और संकुचित विचारों का परिणाम विभिन्न राष्ट्रों में स्पर्धा और शत्रुता होती है। अखण्ड राष्ट्रीयता के कारण अन्तर्राष्ट्रीय झगड़े पैदा हो जाते हैं और मनुष्य

मात्र की उन्नति रुक जाती है। राष्ट्रवाद के प्रचार से एक छोटा राष्ट्र जब बलवान हो जाता है, अन्य देशों वा राष्ट्रों को पराजित करके अपने में मिलाने का प्रयत्न करता है और अन्य राष्ट्रों के सुख दुख से उदासीन होकर उपेक्षा करता है। राष्ट्रवाद के बुरे प्रभाव को रोकने के लिए यूरोप में शक्ति तुलना (Doctrine of Balance of Powers) के सिद्धान्त, अन्तर्राष्ट्रीय संधियों (International treaties) आदि साधनों का प्रयोग होता रहा है। राष्ट्रों के संघ (League of Nations) और संयुक्तराष्ट्रों के संघ (U.N.O) का निर्माण भी केवल संकुचित राष्ट्रीयता के आक्रमणों को रोकने और अन्तराष्ट्रीय शान्ति का राज्य स्थापित करने के लिए किया गया है।

नोट—लीग श्राफ नेशन्ज़ और यू. एन. श्रो. का वर्णन इसी अध्याय में आगे जाकर किया गया है।

६. राष्ट्रीयता का शुद्ध स्वरूप-जिस प्रकार व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के बिना व्यक्ति का विकास नहीं होता, उसी प्रकार राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के बिना राष्ट्र की उन्नति नहीं होसकती। मानव जाति के लिए आवश्यक है, कि विभिन्न राष्ट्रों (Nations) को राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो जिससे प्रत्येक राष्ट्र या जाति अपनी सभ्यता, साहित्य और विशेष गुणों (qualities) को उन्नत कर सके और इस प्रकार सारे संसार की सभ्यता, सुख, उन्नति और वृद्धि मे सहायक हो सके। इस में संदेह नहीं कि राष्ट्रीयता के भावों को "स्वयं जीवित रहो और दूसरों को जीवित रहने दो (live and let live) के सिद्धान्त के अनुकूलप्र त्साहित किया जाए तो विभिन्न राष्ट्रों की उन्नति सार्वभौम उन्नति की वृद्धि में सहायक होती है। परन्तु इतिहास से प्रतीत होता है कि इस सुनहरी सिद्धान्त को राष्ट्रीयता के विकास में नहीं बरता गया। १६१४-१६१८ के युद्ध की समाप्ति पर नए राष्ट्रों की उत्पत्ति हुई और उन्होंने नए राज्य स्थापित किए और उन में बहुत ने शीघ्र ही स्वार्थ, संकुचित और शान्तिभङ्ग करने वाली मनोवृत्तियों का

शिकार हुए और एक शक्तिशाली राष्ट्र दूसरे निर्बल राष्ट्र को कुचलने लगा। इस प्रकार जगत में घृणा, ईर्ष्या, और स्वार्थ के विचार बल पकड़ गए और उन धूर्त विचारों का परिणाम १६३६-४५ का महान् युद्ध था। यद्यपि दूसरा महान् युद्ध १६४५ में समाप्त हुआ परन्तु जगत् की शान्ति को भंग करने के बादल अभी तक छाए हुए हैं।

२. साम्राज्यवाद (Imperialism)

१. साम्राज्य (Empire) का क्षेत्रफल बहुत विस्तृत होता है और उस में कई देश और उपनिवेश सम्मिलित होते हैं, जिनमें विभिन्न जातियां (races) बसी हुई होती हैं और इन जातियों में किसी एक जाति (race) के व्यक्ति उस साम्राज्य की सरकार का प्रबन्ध करते हैं। साम्राज्य प्राचीन काल से चले आते हैं। भारतवर्ष में कई चक्रवर्ती राजा थे जिन के अधीन कई छोटे २ राज्यों के स्वामी थे। सिकन्दर महान् का साम्राज्य, रोमन साम्राज्य और ब्रिटिश साम्राज्य इतिहास में बहुत प्रसिद्ध हैं।

२. साम्राज्यों की उत्पत्ति वा निर्माण के मूल में नीतिज्ञों का यह विश्वास काम कर रहा है, कि किसी राज्य को या तो बढ़ना चाहिए या समाप्त हो जाना चाहिए। इस समाप्ति से बचने के लिए कई राज्यों ने आस-पास के छोटे और निर्बल राज्यों को जीत कर साम्राज्य स्थापित किए हैं। ऊपर वर्णित तीन साम्राज्य ऐसी नीति के क्रियात्मक उदाहरण हैं। प्राचीनकाल में साम्राज्यों की सीमाओं में वृद्धि बल शक्ति(force) द्वारा हुई। परन्तु वर्तमान काल में साम्राज्यों की उत्पत्ति का बड़ा कारण अपने देश के व्यापार को उन्नति देना और असभ्य जातियों को ईसाई धर्म की शरण में लाना था। जब पन्द्रहवीं शताब्दी में कोलम्बस ने अमेरिका को खोजा तो उस का अनुसरण करके यूरोप के कई देशों ने अपने नागरिकों को इस काम में लगाया और कई नूतन उपनिवेश खोजे

और उन को अपने राज्य का भाग बनाया। इस प्रकार यूरोपीय जातियों मे साम्राज्य स्थापित करने का उत्साह बढा। यूरोपीय साम्राज्यों की सत्तरहवी तथा अठारहवीं शताब्दी में अधिक उन्नति औद्योगिक क्रांति (Industrial Revolution) के कारण हुई। अपने कारखानों के लिए कच्चे माल की प्राप्ति और कारखानों मे तय्यार की हुई वस्तुओं को बेचने के लिए मण्डियों (markets) के लिए इन जातियों मे स्पर्धा का आरम्भ हुआ और इन जातियों ने सैनिक और जल शक्ति को बढाया और अपने आस-पास के राज्यों को अपने राज्य मे सम्मि-लित किया और साम्राज्य स्थापित किए।

३. साम्राज्यवाद के गुण—साम्राज्यवादियों का कहना है कि यद्यपि साम्राज्यवाद का दृष्टिकोण संकुचित है और इस की नींव जातीय विशेषता (racialism) पर रखी गई है, फिर भी साम्राज्य की भावना स्वाभाविक और अनिवार्य है। साम्राज्यवाद के पक्ष मे बड़ी बात यह है कि यह पृथ्वी के बहुत बडे भाग मे शान्ति और समान विधान (Uniform Law) स्थापित करता है और इस से लोगों के विचार उदार हो जाते है। साम्राज्य के भीतर यातायात के साधनो के अच्छे हो जाने पर, विभिन्न सभ्यताओं, धर्मों और विचारों के लोगो के मेल और व्यापार से आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक अवस्था मे उन्नति होती है। इस के अतिरिक्त साम्राज्य विशेष योग्यतमावशेष (survival of the fittest) के सिद्धान्त का समर्थक है क्योंकि युद्ध में निर्बल और आलसी समाप्त हो जाते हैं और इस प्रकार सामा-जिक, राजनैतिक और आर्थिक सङ्गठन बढ जाता है।

४. साम्राज्यवाद की हानियां— साम्राज्यवाद की हानियां इसके गुणों से अधिक हैं। साम्राज्यवाद अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा को बढ़ाता है और मनुष्य मात्र की उन्नति को रोकता है। साम्राज्यवाद के कारण एक विशेष जाति में यह भाव भरता है कि उसकी जाति के रीति रिवाज और संस्थाएँ सर्वोत्तम हैं और वह इन को अन्य जातियों पर बल के

द्वारा ठोंसती है। किसी साम्राज्य के कानून और शासन करने के ढंग स्वभाव से ही उस जाति के कानून और विधियाँ होती हैं, जिन के हाथ में शासन की बागडोर होती है और इस प्रकार अन्य जातियों के कानून और संस्थाओं के गुणों से लाभ नहीं उठाया जाता। साम्राज्यवाद में विभिन्न स्थानीय संस्थाओं और कलाओं को दबाया जाता है और इस प्रकार समूचे मनुष्य जीवन को नीरस किया जाता है। साम्राज्यवाद निन्दनीय है, क्योंकि इस में मध्यम आवाज वाली जातियों के अधिकारों और गुणों को दबाया जाता है, ताकि राज्य करने वाली जाति को हानि न पहुंचे।

३. अन्तर्राष्ट्रवाद (Inte-rnationalism)

१. युद्धों द्वारा होने वाले, अत्याचार, विनाश और संसार में अशान्ति और असन्तोष के बादलों को छाया हुआ देख कर प्रत्येक मनुष्य का हृदय पीड़ित मनुष्यों और राष्ट्रों के लिए सहानुभूति के भावों से भर जाता है और वह पूछता है कि संसार के राष्ट्र या राज्य एक कुटुम्ब के समान परस्पर प्रेम से क्यों नहीं रहते और एक दूसरे से सहयोग क्यों नहीं करते। मनुष्यों की संसार भर के राष्ट्रों से परस्पर प्रेम और सहयोग से रहने की विचारधारा का नाम अन्तर्राष्ट्रीयता (Inter-nationalism) है। निस्सन्देह अन्तर्राष्ट्रीयता राष्ट्रीयता से अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह मनुष्यों के एक विशेष समूह या राष्ट्र के स्थान पर संसार भर के मनुष्यों या मनुष्यों के समूहों या राष्ट्रों या राज्यों की भलाई पर आधारित है। वर्तमान युग वैज्ञानिक युग है और यातायात की सुविधा ने सारे संसार को एक कुटुम्ब बना रखा है, हर एक राष्ट्र या राज्य अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरे राष्ट्रों या राज्यों की सहायता पर निर्भर है। इस प्रकार संसार भर के राष्ट्र स्वार्थ तथा संकुचित मनोवृत्ति को छोड़कर परस्पर प्रेम या सहयोग से रहने का विचार करें तो संसार भर में शान्ति की लहर दौड़ जाए और दुःखी तथा दीन प्रसन्न हो जाएं। अन्तर्राष्ट्री-

अता सुखी जीवन का आदर्श है, परन्तु इसको अभी तक बहुत थोड़े व्यक्तियों और राष्ट्रों ने अपनाया है, क्योंकि वे अभी तक अपने राष्ट्रीयता के विचारों को अन्तर्राष्ट्रीयता के विचारों से जोड़ नहीं सके।

२. राष्ट्रवाद और अन्तर्राष्ट्रवाद में अन्तर-राष्ट्रवाद(Nationalism) विभिन्न राष्ट्रों (Nations)के लिए उनके अपने स्वतन्त्र राज्यों (Free-States) के स्थापित करने के अधिकार या राष्ट्रों के आत्म-निर्णय के अधिकार (Right of self-determination of nations) पर बल देता है। इस अधिकार के प्रयोग का बड़ा लाभ यह है कि विभिन्न राष्ट्र अपने २ राज्यों की सीमाओं के भीतर अपनी विशेष सभ्यताओं और कलाओं (cultures and arts) की उन्नति देंगे और इस प्रकार समूचे मनुष्य जीवन (collective human-life) को सरल, सुन्दर और सबल बनाएंगे। जगत भर के राष्ट्रों के पारस्परिक झगड़ों को निपटाने के लिए राष्ट्रवाद शक्ति की तुलना [Balance of Powers], समझौते और युद्ध आदि के साधनों के प्रयोग की सिफारिश करता है। इसके विपरीत अन्तर्राष्ट्रवाद (Inter-nationalism) का ध्येय सार्वभौमिक एकता (World-unity) और सार्वभौमिक विधान (World law) थे। आरम्भ में सारे जगत् को एक साम्राज्य और एक ही विधान के अधीन लाने का प्रयत्न किया गया। इसके अनन्तर कार्यक्रम में इस प्रकार परिवर्तन किया गया कि जगत भर के राष्ट्रों का एक संघ (Federation) बनाया जाए और इन राष्ट्रों के पारस्परिक झगड़ों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय विधान (International Law) का निर्माण किया जाए।

३. यूरोप के इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापित करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय विधान के निर्माण में हालैण्ड, स्विट्ज़रलैण्ड, जर्मनी आदि देशों के न्यायशास्त्र निपुण व्यक्तियों (Jurists), विशेष करके हालैण्ड के ग्रोशिस (Grotins)

ने बड़े उत्साह से काम किया । ई० १८९९ और १९०७ को हेग कान्फ्रेंसों ने अन्तर्राष्ट्रीय नियमों को पूर्ण विधान का रूप दिया और कई अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का निर्णय इस विधान के अनुसार होता रहा। उन्नीसवीं शताब्दी में कई अन्तर्राष्ट्रीय संघों (International Organisations) का निर्माण हुआ, जिन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की संधियों, फैलने वाले रोगों के नियन्त्रण के उपायों आदि पर ध्यान दिया और इस प्रकार मनुष्य मात्र की उन्नति की समस्याओं के अध्ययन को अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से प्रोत्साहित किया।

४. लीग आफ नेशन्ज और इसके पश्चात् संयुक्त राष्ट्रों के संघ (U.N.O.) और इसके आधीन संस्थाएं अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को सुलझाने के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय विचारों को फैलाने में बड़ा जोर लगा रही हैं, परन्तु इनका प्रयत्न अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा को प्रबल बनाने और विभिन्न राष्ट्रों को मित्रता के सूत्र मे पिरोने में पूर्णतया सफल नहीं हुआ। इस असफलता का कारण इन राष्ट्रों के पारस्परिक पुराने संशय (suspicions) हैं और अभी तक राष्ट्रीय विशेषता (National Particularism) के विचार बहुत प्रबल हैं और इस सीमा तक जड़ पकड़ चुके हैं कि इनके जड़ से उखाड़ फैंकने में पर्याप्त समय लगेगा। परन्तु वर्तमान काल में यातायात की सुगमता, रेडियो, सिनेमा और आर्थिक निर्भरता (Economic Interdependence) आदि से आशा की जाती है कि शीघ्र सारा जगत् एक कुटुम्ब के समान होगा और लोग किसी विशेष राज्य के नागरिक कहलाने के स्थान पर जगत् के नागरिक (World Citizens) कहलाने में गौरव अनुभव करेंगे।

५. राष्ट्रों का संघ (League of Nations)—१९१४-१९१८ के महान् युद्ध की समाप्ति पर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के लिए एक संघ बनाया गया, जिसका नाम लीग आफ नेशन्ज (League of Nations) था। इस संघ के उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की उन्नति और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और रक्षा की प्राप्ति थे। इस

उद्देश्य की प्राप्ति के साधन ये थे—(१) पारस्परिक झगडों को निपटाने के लिए युद्ध न किया जाएगा ऐसा प्रण करना। (२) राष्ट्रों के मध्य उदारता, न्याय और सम्मानपूर्वक सम्बन्ध जोड़ना। (३) संसार के राज्यों वा राष्ट्रों के परस्पर बर्ताव के लिए अन्तर्राष्ट्रीय नियम बनाना, (४) सम्पूर्ण सन्धियों के अनुसार न्याय और सम्मान की स्थापना करना।

लीग अपनी कार्यकारिणी समिति द्वारा कार्य करती थी और इसका कार्यालय जनेवा में था इसकी कौंसिल के १४ सदस्य थे, जिनमें से पांच बड़ी शक्तियों के प्रतिनिधि थे और शेष अन्य राष्ट्रों से बारी २ से चुने जाते थे। कौंसिल के अधिवेशन वर्ष में तीन चार बार जनेवा (Geneva) में होते थे, परन्तु लीग आफ् नेशन को सफलता प्राप्त न हुई क्योंकि इसको बडे२ राष्ट्रों की सच्ची सहायता प्राप्त न थी। आरम्भ में संयुक्तराष्ट्र अमेरिका और रूस इसमें सम्मिलित न हुए और बाद में रूस लीग में सम्मिलित हुआ तो जापान, जर्मनी और इटली ने त्याग पत्र दे दिए। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय संस्था को अपने उद्देश्य की प्राप्ति में सफलता न हुई।

२. अटलांटिक चार्टर (The Atlantic Charter)—अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को मित्रता और सम्मानपूर्वक दृढ न कर सकने के कारण यूरोप में शत्रुता, ईर्ष्या और स्पर्धा के भावों को बढ़ने का अवसर मिल गया और १९३९ में यूरोप का दूसरा महान् युद्ध आरम्भ हुआ। युद्ध भी होता रहा और साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की चर्चा भी होती रही। इधर जर्मनी के डिक्टेटर ने यूरोप में नए संगठन पर अपने विचार प्रकट किए तो उधर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के प्रधान रूज़वेल्ट और इंगलैंड के प्रधान मन्त्री चर्चिल ने अटलांटिक चार्टर की घोषणा की जिसमें युद्ध के पश्चात् संसार के नये संगठन की रूप रेखा दर्शाई। रूज़वेल्ट ने चार स्वतन्त्रताओं, भाषण की स्वतन्त्रता, धर्म (मजहब) की स्वतन्त्रता, दरिद्रता से स्वतन्त्रता और भय से स्वतन्त्रता को अटलांटिक

चार्टर के चार स्तम्भ बताया। ७ सितम्बर १९४४ को डमबर्टन ओक्स (Dumbarton Oaks) के स्थान पर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, इंगलैंड, रूस और चीन ने मिलकर दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय संघ की स्थापना की और उस का नाम संयुक्त राष्ट्र संघ (United Nations Organisation) रखा।

४. संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्य—संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्य ये हैं—

(१) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और रक्षा को स्थिर रखना,

(२) राष्ट्रों के मध्य मैत्री सम्बन्धों को उन्नत करना,

(३) संसार की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मनुष्य मात्र के हित की समस्यों पर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना,

(४) इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र स्थापित करना।

इन उद्देश्यों के सम्बन्ध में निम्नलिखित सिद्धान्तों की स्वीकृति संघ के सदस्यों से आवश्यक है—

(क) संघ के सभी सदस्य राष्ट्रों की सर्वोच्च सत्तात्मक समानता को स्वीकार करना।

(ख) अटलांटिक चार्टर के अनुकूल सदस्य राष्ट्रों के अधिकारों और कर्तव्यों को पूरा करने में सहायता देना।

(ग) पारस्परिक झगड़ों को शान्ति पूर्वक साधनों से निपटाना।

(घ) किसी अन्य राष्ट्र के देश और स्वतन्त्रता पर सैनिक आक्रमण न करना।

(ङ) चार्टर के अनुसार यदि संघ शान्ति स्थापन करने पर कोई कार्यवाही करे तो उस कार्यवाही में संघ को सहायता देना।

(च) हर एक सदस्य राष्ट्र (Member-state) को स्वीकार करना कि वह अपने राज्य के भीतर रहने वाले नागरिकों के सुख और उन्नति के लिए जिम्मेदार है।

५. संघ के प्रबन्ध का संगठन—ऊपर वर्णन किए हुए उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संघ ने अपने कार्यों को आठ समितियों में बांटा हुआ है। इन समितियों का वर्णन नीचे किया जाता है—

(१) जनरल असेम्बली (General Assembly)—जनरल असेम्बली में हर एक राष्ट्र का एक प्रतिनिधि होता है। इस समय ५१ राष्ट्र संयुक्त संघ के सदस्य हैं और जनरल असेम्बली के सदस्यों की संख्या भी ५१ है। यह असेम्बली दुनिया भर की साधारण अवस्था का अध्ययन करती है और विशेष करके उन समस्याओं का गम्भीर अध्ययन करती है जो जगत् की शांति से सम्बन्धित होती हैं, और अपनी सिफ़ारशों को रक्षा समिति के पास भेज देती है।

(२) रक्षा समिति (Security Council)—रक्षासमिति के कुल सदस्य ११ हैं, जिनमें से पांच सदस्य इंगलैंड, रूस, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, फ्रांस और चीन हैं। ये पांच तो स्थाई सदस्य हैं और शेष छः सदस्यों को क्रम से अन्य सँयुक्त राष्ट्रों में से दो वर्ष के लिए चुना जाता है। इस समिति का एक काम तो यह है कि वह परमाणु शक्ति का नियन्त्रण करे और दूसरा काम इसके ज़िम्मे यह है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों की छानबीन करे। जहां कोई राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर अत्याचार करे वा आक्रमण करे तो आक्रमण कर्ता राष्ट्र के विरुद्ध उचित कार्यवाही करे।

(३) आर्थिक और सामाजिक समिति (Economical and Social Council)—इस समिति के १८ सदस्य हैं, जिनको जनरल असेम्बली चुनती है। इस समिति का उद्देश्य देश को आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का अध्ययन करना है और संसार के आर्थिक और सामाजिक जीवन के स्तर (Standard) को ऊंचा करना है। यह समिति युद्ध के आर्थिक कारणों को घटाने के साधनों का प्रयोग करती है।

(४) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (Inter National Court of justice) इस समिति के सदस्य १५ जज हैं, जिनका चुनाव जनरल असेम्बली करती है। यह न्यायालय स्थाई है और समिति अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों पर न्याय के दृष्टिकोण से सोच विचार करती है और अपना निर्णय देती है। यह न्यायालय ११ अप्रैल १९४६ को हेग में खोला गया।

(५) धरोहर समिति (Trusteeship Council)—इस समिति के पांच सदस्य तो पांच बड़े २ राष्ट्र हैं और इनके अतिरिक्त वे सब राष्ट्र इसके सदस्य हैं, जिनके अधीन उपनिवेश हैं। इस समय समिति के सदस्य आस्ट्रेलिया, बिलजियम, फ्रांस न्यूजीलैण्ड, इंगलैण्ड चीन, अमेरिका, रूस, मैक्सिको और इराक हैं। यह समिति इन बस्तियों के राजनैतिक, आर्थिक और राजनैतिक विकास पर ध्यान देती है।

(६) परमाणु शक्ति समिति (Atomic Energy Commission)—इस समिति के सदस्य रक्षा समिति के सारे सदस्य और कनाडा हैं। यह समिति परमाणु शक्ति के आविष्कार सम्बन्धी बातों पर विचार करती है।

(७) सैनिक प्रबन्ध समिति (Military Staff Committee)—यह समिति केवल पांच बड़े राष्ट्रों की सैनिक प्रतिनिधियों से बनी हुई है और रक्षा समिति के आदेश अनुसार आक्रमण कर्ता राष्ट्र के विरुद्ध कार्यवाही के लिए तैयार रहती है। धीरे २ अन्तर्राष्ट्रीय सेना के लिए प्रबन्ध किया जायगा।

(८) कार्यालय—(Secretariat) —यह संघ का कार्यालय एक सेक्रेटरी के अधीन काम करता है। वह सारे संयुक्त राष्ट्रों से पत्र व्यवहार करता है और अपनी रिपोर्ट जनरल असेम्बली और रक्षा समिति को भेजता है।

इन समितियों के अतिरिक्त कई अन्य संस्थाएं हैं, जो भोजन, कृषि, यातायात, शिक्षा, समाजसुधार आदि समस्याओं का अध्ययन अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से करती हैं।

(६).शिक्षा-विज्ञान-संस्कृति प्रसारक संघ (U. N. E. S. C. O.)—मनुष्यसमाज की उन्नति और विकास के वास्तविक साधन शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति हैं, और संयुक्त राष्ट्रसंघ ने इन तीनों साधनों के सदुपयोग के लिए यूनेस्को (U. N. E. S. C. O.—United Nations Educational, Scientific and Caltural Organisation) नामक संघ की स्थापना की और नवम्बर १६-४५ में लंदन में इस संघ का पहला अधिवेशन हुआ जिसमें भारत के पांच प्रतिनिधियों ने भाग लिया। ये महानुभाव सर जोहन सारजेन्ट, राजकुमारी अमृतकौर, डाक्टर जाकिर हुसैन, आचार्य अमरनाथ और मिस्टर समयद्वैन थे। इस संघ का प्रथम उद्देश्य संसार भर के विद्वानों, विज्ञान शास्त्रियों और शिक्षाचार्यों को एकत्रित करके ऐसी योजनाओं का प्रयोग किया जाना और ऐसे साधन बरते जाना है, जिनसे मनुष्य संतान को स्नेह, सहानुभूति और सहयोग, के सूत्र में परोया जाए और जगत की शान्ति सुख और सम्पन्नता में उन्नति और वृद्धि की जाए।

(३) संयुक्त राष्ट्रसंघ पर आलोचना—संयुक्त राष्ट्रों का संघ पिछले पांच वर्षों से काम कर रहा है, परन्तु इसको अपने उद्देश्यों में अभीष्ट सफलता प्राप्त नहीं हुई। इस का कारण यह है कि पांच बड़े राष्ट्रों के हाथ में अपने लाभों को सुरक्षित रखने का बड़ा शस्त्र निरोध शक्ति (veto power) है। जब कोई योजना इन पाँच बड़े राष्ट्रों में से किसी एक के विरुद्ध जाती है तो वह वीटो शक्ति का प्रयोग करके इसे भंग कर देता है। इस समय तक रूस इस शस्त्र का प्रयोग ४० बार कर चुका है। परमाणु शक्ति का रहस्य अमेरिका और अंग्रेजों के पास है और रूस इस रहस्य को अन्तर्राष्ट्रीय करना चाहता है। इस कारण से रूस एक ओर और अंग्रेज और अमेरिका दूसरी ओर हैं। इनके मध्य रस्सा-कशी रहती है। वैसे भी प्रजातन्त्रात्मक तथा कम्यूनिस्ट राज्यों में संघर्ष जारी है और इसका प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर पड़ रहा है।

संसार भर के देशों में शान्ति स्थापित करने का केवल मात्र साधन अन्तर्राष्ट्रीय संघ हो सकता है जिस में मनुष्य जाति के हितैषी स्वार्थ को त्याग कर केवल सार्वभौम भलाई के दृष्टिकोण से समाज के विभिन्न क्षेत्रों का अध्ययन कर सकते हैं और त्रुटियों को मैत्री पूर्ण वार्तालाप से दूर कर सकते है, और यदि प्रेम और मित्रता से कोई समस्या हल न हो तो अन्त में सैनिक शक्ति का प्रयोग किया जाए। आशा की जाती है कि पांच महान् राष्ट्र जगत की शान्ति के लिए सच्चे मन से काम करेंगे।

Questions (प्रश्न)

1. Differentiate between State and Nation and explain how far they supplement each other.

राज्य और राष्ट्र का अन्तर बताओ और स्पष्ट करो कि ये दोनों किस सीमा तक एक दूसरे के सहायक हैं।

2. Define Nationalism and state clearly how true Nationalism can help in maintaining peace in the world.

राष्ट्रीयता की परिभाषा करो और समझाओ कि किस प्रकार सच्ची राष्ट्रीयता संसार में शांति स्थापित करने में सहायता दे सकती है।

3. One Nation, one State; modern states are Nation-states. Discuss this statement with reference to European Nations and state how far this "self-determination of states" is responsible for World War No2.

"एक राष्ट्र, एक राज्य—नवीन राज्य राष्ट्र-राज्य हैं"। इस वाक्य पर आलोचना करो और बताओ कि यह सिद्धांत किस सीमा तक दूसरे महान् युद्ध का कारण बना।

4. What do you mean by Imperialism ? Describe the merits and demerits of Imperialism

साम्राज्यवाद की परिभाषा करो और इस वाद के गुण और अवगुण वर्णन करो।

5. What do you mean by Inter-nationalism ? Compare it with Nationalism and Imperialism and state clearly the difference of these 'isms'.

अन्तर्राष्ट्रवाद का अभिप्राय क्या है ? राष्ट्रवाद, साम्राज्यवाद और अन्तर्राष्ट्रवाद की तुलना करो और इन वादों का अन्तर स्पष्ट रूप से वर्णन करो।

6. Describe briefly the constitution and functions of the League of Nations and state why it failed in it's object.

राष्ट्र संघ की रचना और उस के उद्देश्य वर्णन करो और बताओ कि क्यों यह संस्था अपने ध्येय प्राप्ति में असफल हुई ?

7. Write a short essay upon the United Nation Organisation, enumerating the various institution working under it.

संयुक्त राष्ट्र संघ पर निबन्ध लिखो और उसके आधीन काम करने वाली संस्थाओं का संक्षिप्त वर्णन करो।

8. Name the big Nations, which are the members of U.N.O. and comment upon their ideologies and co-operation.

उन बड़े राष्ट्रों के नाम बताओ जो यू० एन० ओ० के कर्ता धर्ता हैं, और इन राष्ट्रों के राजनैतिक सिद्धान्तों और पारस्परिक सहयोग पर आलोचना करो ?

9. Write short notes—
a) Right of self-determination.
b) Balance of powers
c) Survival of the fittest.
निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखो--
(क) आत्म निर्णय का अधिकार
(ख) शक्ति की तुलना
(ग) योग्यतमाशेष
10. Comment upon the following—
a) Uniform Law
b) Racialism
c) World Citizen.
निम्नलिखित की व्याख्या करो—
(क) समान विधान
(ख) जातीय विशेषता
(ग) सार्वभौमिक नागरिक